

डॉ. नेमीचन्द जैन :
अवदान और आकलन

सम्पादन

प्रेमचन्द जैन

हीरा भैया प्रकाशन
६५ पत्रकार कालोनी, कनाडिया मार्ग इन्दौर-४५२ ००१ (म प्र)

अनुक्रम

डॉ. नेमीचन्द जैन · अवदान और आकलन - सपादन : **प्रेमचन्द जैन**, © **हीरा भैया प्रकाशन**, हीरा भैया प्रकाशन ६५, **पत्रकार कॉलोनी, कनाडिया मार्ग**, इन्दौर-४५२००१ (म प्र), टाइप सैटिग एव मुद्रण **नईदुनिया प्रिन्टरी**, इन्दौर- ४५२ ००९, प्रथम सस्करण **जून, २०००**, मूल्य **बीस रुपये।**

आयोजन

"डॉ. नेमीचन्द जैन साहित्य (पचास वर्ष : सन् १९४८-'९८) : एक अवलोकन' तथा 'डॉ. नेमीचन्द जैन : व्यक्तित्व और कृतित्व' के अनुक्रम मे तीसरी पुस्तक 'डॉ. नेमीचन्द जैन : अवदान और आकलन' है। इसमे परिचर्चा के माध्यम से उनके विविध/विशिष्ट, उत्कृष्ट/मौलिक अवदान/योगदान के साथ-ही-साथ आकलन/मूल्याकन के अन्तर्गत विशद/विस्तृत विवेचना की जायगी।

साहित्यिक अवदान के अन्तर्गत उनके द्वारा रचित/लिखित पुस्तको एव सम्पादित पत्र-पत्रिकाओ पर परिचर्चा रहेगी। वे किस प्रकार अपनी मौलिकता/प्रखरता/पारदर्शिता की ओर अग्रसर है, इस पर चर्चा रहेगी। 'वीणा', 'तीर्थकर' और उसके विशेषाक, 'शाकाहार-क्रान्ति' के माध्यम से पत्रकारिता के क्षेत्र मे उनके मौलिक अवदान पर चर्चा अपेक्षित है। विविध विषयो की ११० पुस्तको पर भी चर्चा केन्द्रित हो सकती है।

सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक इत्यादि क्षेत्रो मे उनके द्वारा अपनी सशक्त लेखनी से जो वैचारिक क्रान्ति की दिशा मे मौलिक प्रयत्न किये गये है उनका भी परिचर्चा मे समावेश रहेगा।

अनुक्रम

डॉ. नेमीचन्द जैन : अवदान और आकलन - सपादन : **प्रेमचन्द जैन**, © हीरा **भैया प्रकाशन**, हीरा भैया प्रकाशन ६५, **पत्रकार कॉलोनी, कनाडिया मार्ग इन्दौर-४५२००१** (म प्र), टाइप सैटिग एव मुद्रण **नईदुनिया प्रिन्टरी**, इन्दौर- ४५२ ००९, प्रथम सस्करण **जून**, २०००, मूल्य **बीस रुपये।**

आयोजन

"'डॉ नेमीचन्द जैन साहित्य (पचास वर्ष सन् १९४८-'९८) एक अवलोकन' तथा 'डॉ नेमीचन्द जैन व्यक्तित्व और कृतित्व' के अनुक्रम मे तीसरी पुस्तक 'डॉ नेमीचन्द जैन अवदान और आकलन' है। इसमे परिचर्चा के माध्यम से उनके विविध/विशिष्ट, उत्कृष्ट/मौलिक अवदान/योगदान के साथ-ही-साथ आकलन/मूल्याकन के अन्तर्गत विशद/विस्तृत विवेचना की जाएगी।

साहित्यिक अवदान के अन्तर्गत उनके द्वारा रचित/लिखित पुस्तको एव सपादित पत्र-पत्रिकाओ पर परिचर्चा रहेगी। वे किस प्रकार अपनी मौलिकता/प्रखरता/पारदर्शिता की ओर अग्रसर है, इस पर चर्चा रहेगी। 'वीणा', 'तीर्थकर' और उसके विशेषाक, 'शाकाहार-क्रान्ति' के माध्यम से पत्रकारिता के क्षेत्र मे उनके मोलिक अवदान पर चर्चा अपेक्षित है। विविध विषयो की ११० पुस्तको पर भी चर्चा केन्द्रित हो सकती है।

सास्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक इत्यादि क्षेत्रो मे उनके द्वारा अपनी सशक्त लेखनी से जो वैचारिक क्रान्ति की दिशा मे मौलिक प्रयत्न किये जा रहे है उनका भी परिचर्चा मे समावेश रहेगा।

डॉ नेमीचन्द जैन शाकाहार की वैज्ञानिकता, महत्ता, प्रासगिकता और अनिवार्यता को अपनी ओजस्वी लेखनी से प्रतिपादित करते हुए उसे लोकप्रिय/लोकमान्य बनाने की दिशा मे विगत १८ वर्षो से जो अविराम निष्ठापूर्वक समग्र/समर्पित अभियान को गति प्रदान करते आ रहे है, शाकाहार-विषयक उनका मौलिक साहित्य प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। शाकाहार को वे आधुनिक सन्दर्भ/परिप्रेक्ष्य मे अहिंसा के सुलभ/सहज विकल्प जीवन-शैली के रूप मे प्रतिपादित कर रहे है। इस पर व्यापक परिचर्चा की आवश्यकता स्पष्ट प्रतीत हो रही है।

उपर्युक्त विषयो पर जो परिचर्चाएँ प्रस्तावित है वे तथ्यो को रेखाकित करते हुए वस्तुनिष्ठ भी हो इसका विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है। यह परिचर्चा से सबन्धित प्रारभिक रूपरेखा है, इसमे सुझावो के अनुसार परिवर्तन/परिवर्धन किया जा सकता है।

आकलन/मूल्याकन मे समीक्षात्मक/समालोचनात्मक दृष्टिकोण का परिचर्चा मे महत्त्व रहेगा ही। परिचर्चाएँ किसी एक विपय या अनेक विपयो पर अलग-अलग होने पर भी समग्रता/सपूर्णता की दृष्टि से सयुक्त भी हो सकती है।''

पुस्तक की रूपरेखा बना कर उससे सन्दर्भित सामग्री जुटा/जुडा लेना प्राथमिक/प्रारम्भिक कार्य है, लेकिन ऐसा करना इसलिए सरल/सुगम नही है, क्योकि सम्बद्ध महानुभावो की अपनी व्यस्तता/पूर्व निर्धारित कार्य होते है, उन्हे इसके लिए प्रेरित/प्रवृत्त करना आसान नही होता है। सानुरोध निवेदन करने पर वे औपचारिक स्वीकृति देते तो है, लेकिन फिर इतना विलम्ब करते है, या ऐसा-वैसा लिख भेजते है, कि वह पुस्तक के स्तर के अनुरूप नही होता। उनका वह मात्र आश्वासन रह जाता है। सम्पर्क साधने पर वे प्रशसात्मक टिप्पणी करते है, परन्तु सक्रिय सहयोग देने मे पिछड जाते है, उनका 'हाँ-हाँ' आखिर मे 'ना-ना' रह जाता है।

पुस्तक - १ अवदान, २ आशिक आकलन, ३ आरम्भिक आकलन मे प्रस्तुत है। इसमे सहचर्चा/सहचिन्तन की सभावना है ही। जिन्हे इससे सम्बद्ध होना चाहिये था, यदि वे सहभागी/सहयोगी बनते तो इसका स्वरूप भिन्न होता।

प्रस्तावना का प्रयोजन प्रार्थना से परिपूर्ण है, क्योकि सपादन उस व्यक्ति द्वारा किया जा रहा है, जो अधिकारी/अधिकृत नही है। वह आन्तरिक प्रेरणा से इस दिशा मे अग्रसर है। इसमे उसका 'प्रेय' है। 'श्रेय' तो उन सहयोगी मित्रो को है, जिन्होने आत्मीयतापूर्वक सहज लिखा है। आदरणीय भाई रत्नेशजी कुसुमाकर और सुरेशजी सरल के प्रति मै 'मुखर' न हो कर 'मौन' रहना चाहता हूँ।

परिस्थितिवश इसके सपादन/प्रकाशन मे जो उतार-चढाव आते रहे, वह भी ऐसा कारण है, जिससे पुस्तक मे अभाव रह गया है। फिर भी इसमे आयोजन की दशा/दिशा का अप्रत्यक्ष आरम्भ है आकाक्षा अपेक्षा अवश्य है कि आयोजन का इस प्रकार सयोजन हो कि अवदान और आकलन सार्थक हो कर अभाव की पूर्ति हो सके।

— प्रेमचन्द जैन

डॉ. नेमीचन्द जैन का हिन्दी साहित्य को अवदान

❑ रत्नेश कुसुमाकर

हिन्दी साहित्य को अपनी सुदीर्घ/अखण्ड/अनवरत साधना, अध्यवसाय, स्वाध्याय, रचनात्मक गभीर चिन्तन और लेखन से समृद्ध बनाने वाले साहित्यकारो/लेखको/कवियो तथा पत्रकारो की एक लम्बी तालिका है, जिन्हे हम 'युगप्रवर्तक' के विशेषण से सबोधित करते है। इनके प्रदेयो/अनुदानो से हिन्दी साहित्य आज विकास के जिस शीर्ष विन्दु का सस्पर्श कर रहा है, वह एक गरिमा-सम्पन्न उपलब्धि है, जो निरन्तर अनुभूतियो के आकाश को विराट् स्वरूप प्रदान कर रही है। इतना ही नही यह देश की नई पीढी के सारस्वत साधको को भी एक नई गति, एक नई ऊर्जा और एक नई कान्ति से अभिदीप्त कर रही है। स्वामी दयानन्द सरस्वती, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र एव गाँधीजी की गगोत्री-यमुनोत्री से हिन्दी के विकास की जो धारा प्रस्रवित हुई है, उससे कश्मीर से कन्याकुमारी और सौराष्ट्र से असम तक फैला/पसरा यह देश आप्लायित हुआ है।

विकास की इस हरहराती धारा को कई कालखण्डो मे मापा गया है। यथा, साहित्य का आदिकाल/वीर गाथा काल/मध्ययुग का सतसाहित्य काल, स्वतत्रता-सग्राम का सक्रमण काल तथा स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद का काल और आधुनिक काल कहा गया है– इसके भी कई-कई भेद-प्रभेद किये जा सकते है। विश्लेषण-सश्लेषण की बारीकियो की चादरे पहले भी बुनी गई है, आगे भी बुनी जाएँगी। लेकिन साहित्य के मूल तत्त्व का विखण्डन नही हो सकता। यह मूल तत्त्व ही तो साहित्य की आत्मा है, जिसकी भगवत्ता शाश्वत है/चिरन्तर है, जो अभेद्य है। उसकी चमक मे सहस्र सूर्यों की आभा सन्निविष्ट है। अन्तर्निहित है। अभीप्सु/वैज्ञानिक और विवेचक अपने-अपने ढँग से इसके खण्ड-सत्य को हथेलियो मे समेटने का प्रयास करते आये है। यह सिलसिला आज भी जारी है।

सारस्वत साधको को साहित्यकार और कविर्मनीषी की सज्ञा/विशेषण से अभिज्ञप्त किया जाता है। ये समाज के ही अग है। इन्हे समाज से पृथक् नही किया जा सकता। समाज को यदि वृक्ष माना जाए, तो ये उसके फूल ही नही, फल भी है। इन्ही की बदौलत किसी भी देश की अस्मिता और उसकी जीजिविषा का आकलन होता है। यही कारण है कि साहित्यकार अपने वस्तुनिष्ठ अर्थ की व्यापकता के मानदण्ड पर युग-दृष्टा/युग-सृष्टा माना गया है। उसकी महद्‌ता को अस्वीकार नही किया जा सकता– यह असभवनीय है।

डॉ जैन का पारस-स्पर्श इन्दौर से विगत ७२ वर्षो से सतत् प्रकाशित होने वाली श्री म भा हिन्दी साहित्य समिति की मुखपत्रिका 'वीणा' (मासिक) को भी प्राप्त हुआ है। यह उनकी युग्म पत्रिका 'तीर्थंकर' एव 'शाकाहार-क्रान्ति' के प्रादुर्भाव के पूर्व की घटना है। हिन्दी-जगत् मे मासिक 'सरस्वती' के बाद 'वीणा' का अनिरुद्ध प्रकाशन इतिहास की एक पवित्र धरोहर है। डॉ नेमीचन्द जैन भले ही इसके अल्पकालिक (दो वर्ष) सपादक रहे, लेकिन इस अवधि मे उन्होने जिस सूझबूझ, दक्षता, अभिनव क्रान्त दृष्टि और समसामयिक चिन्तन प्रकर्ष का परिचय दिया, वह अपूर्व है। अप्रतिम है। अनन्य है। 'सरस्वती' मे आचार्य श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने सपादक-काल मे जिन गगन-चुम्बी कीर्ति-स्तभो की रचना की और हिन्दी साहित्यकारो की एक नई पीढ़ी का निर्माण कर दिखाया, ठीक उसी नक्शे कदम डॉ नेमीचन्द जैन ने भी 'वीणा' को एक नई ऊँकृति देने का रचनात्मक प्रयास किया है। उनके सपादन-काल की 'वीणा' की सबसे पृथक् अस्मिता है, तेवर है, भाव-भगिमा है और बाह्य-आभ्यतरिक व्यक्तित्व है। इसमे एक शीर्षस्तरीय समग्रता मुखरित हो उठी है।

एक प्रभविष्णु हिन्दी प्राध्यापक के रूप मे डॉ नेमीचन्द जैन ने हिन्दी-जगत् की जो सेवा की है, उसका मूल्याकन होना अभी शेष है, जब भी यह मूल्याकन होगा, निश्चय ही राष्ट्रभाषा-प्रेमियो को एक सुखानुभूति होगी। उन्होने लगभग दो दशक तक हिन्दी साहित्य के हजारो छात्र-छात्राओ को पढ़ाया है, हिन्दी के प्रति अनुरागवान् बनाया है। यह एक कठोर यथार्थ है कि न्यस्त स्वार्थ-साधको ने हिन्दी के मार्ग मे पग-पग पर रोडे अटकाए है, काँटे बोये है, जहर उगला है और उसे हीनग्रथि के सजाल मे लपेटने का दुष्ट प्रयास किया है, ऐसे चुनौतीपूर्ण वातावरण के बीच डॉ नेमीचन्द जैन ने जिस दृढ़ता से हिन्दी के गौरव की रक्षा की है, वह अपने आप मे बेजोड है। उन्होने केवल शब्दो मे नही, ठोस कार्यो/कृतियो से हिन्दी विरोधियो को न केवल निरुत्तर किया है अपितु हतप्रभ स्थिति मे ला पटका है। वे मिताक्षरी है। मितभाषी ी।

एक भाषा-वैज्ञानिक के रूप मे डॉ नेमीचन्द जैन ने भीली भाषा के सबन्ध मे ध-प्रबन्ध लिखा है, वह अपूर्व है। अद्भुत है। इस दिशा मे उन्होने जो कठोर प। है, वह तमिल कहावत 'काय कवै कैलाश' का हिन्दी अनुवाद कहे तो नही होगी- काया (शरीर) से किया गया श्रम (तप) कैलाश (के उच्च क पहुँचा देता है। डॉ जैन ने अपनी इस थीसिस के लिए आदिवासी क्षेत्रो क छानी है– वह एक उदाहरण है शोधार्थियो के समक्ष। आज देश मे पी- ीधारियो की बाढ़-सी आ गई है। जिसे देखकर आश्चर्य होता है। ीचन्द जैन ने अपने भीली भाषा शोध-प्रबन्ध द्वारा हिन्दी साहित्य को कभी भगवान् श्रीराम ने अपने चौदह वर्ष के वनवास-काल मे

लेकिन आने वाले दिनो मे वही सिन्धु-रूप मे दिखाई दे तो हमे किंचित् भी आश्चर्य नही होगा।

भारत के ही नही, सम्पूर्ण विश्व के कालजयी साहित्यकारो ने अपने नश्वर स्वरो मे अविनश्वर गीत गाये है, उसी शृखला की एक कडी के रूप मे डॉ नेमीचन्द जैन ने अपनी कलम से अब तक जो भी उकेरा है, वह असामान्य कोटि का तो ही है, उसमे एक ऐसा प्राणतत्त्व सदर्भित है, जो मरणधर्मा नही है। उसमे लचीलापन है। वह किसी भी वज्राघात पर टूटने/बिखरनेवाला नही है।

पत्रकारिता साहित्य की एक सशक्त विधा है। वह बहुआयामी है। कभी राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक और महर्षि श्री अरविन्द-जैसी लोकोत्तर विभूतियो ने समाज-परिवर्तन के एक अमोघ शस्त्र के रूप मे इसका आश्रय लिया था। डॉ नेमीचन्द जैन ने भी बडी कुशलता से इस दिव्यास्त्र का उपयोग किया। यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि पत्रकारिता को यदि सामाजिक क्रान्ति के लिए प्रभावशील उपयोग करना है तो उसे एक मिशन का मूल रूप-स्वरूप दिया जाना जरूरी है। उसे व्यावसायिकता की सक्रामक बीमारी से बचाना होगा। उसके रक्त मे शुद्धता, ओज और प्रसाद गुणो की उपस्थिति अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त उसकी दिशा, उसका लक्ष्य, और उसके गतव्य स्पष्ट बोध और नक्शा होना जरूरी है। केवल इतना ही पर्याप्त नही है, पत्र (अथवा पत्रिका) के सम्पादक की भूमिका उस चतुर धाय की भूमिका होती है, जिसे अपने गोद मे खेलने वाले पुत्र/पुत्री को ठीक से दूध पिलाना होता है, उसे स्वच्छ, तन्दुरुस्त और वर्धनशील रखना होता है, उसे बुरी नजरो से सुरक्षित रखना उसकी मुख्य जवाबदारी होती है। इस निकष पर डॉ नेमीचन्द जैन 'खरा सोना' सिद्ध हुए है। इस कथन मे जरा भी अतिरजन नही है।

'तीर्थंकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' एक ऐसा दर्पण है उनकी पत्रकारिता की सुनिश्चित साधना का, जिसमे उनके चिन्तन की चिन्तामणि के सहज ही दर्शन हो जाते है। यहाँ वे महात्मा गाँधी की आदर्शोन्मुखी पत्रकारिता के समान्तर चलते हुए दिखते है। उनके द्वारा सम्पादित इन पत्रो मे व्यावसायिकता के धूल-कणो को सराफा बाजार का कोई भी तजुर्बेकार 'धूलधोया' नही निकाल पाएगा। यह एक हकीकत है। इसके पीछे डॉ नेमीचन्द जैन की सतत् साधना, लगन और पुरुषार्थ की पूँजी विनियोजित हुई है।

पत्रकारिता के धर्मक्षेत्र मे डॉ नेमीचन्द जैन का यह एक महत्त्वपूर्ण अवदान है। महाराष्ट्र के प्रबुद्ध बुद्धिजीवियो ने इस अतुलित अवदान की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए उनका अभिनन्दन किया है और उन्हे 'पत्र-महर्षि' के गरिमामय अलकरण से नवाजा गया है। यह केवल उनका ही सम्मान नही है, अपितु पूरे मध्यप्रदेश का और पूरे मालव का सम्मान है, जिसे उन्हे जन्म देने और उन्हे सूरज के प्रथम दर्शन कराने का गौरव प्राप्त है। डॉ नेमीचन्द जैन की जन्मभूमि बडनगर (मालवा) है।

डॉ जैन का पारस-स्पर्श इन्दौर से विगत ७२ वर्षों से सतत् प्रकाशित होने वाली श्री म भा हिन्दी साहित्य समिति की मुखपत्रिका 'वीणा' (मासिक) को भी प्राप्त हुआ है। यह उनकी युग्म पत्रिका 'तीर्थंकर' एव 'शाकाहार-क्रान्ति' के प्रादुर्भाव के पूर्व की घटना है। हिन्दी-जगत् मे मासिक 'सरस्वती' के बाद 'वीणा' का अनिरुद्ध प्रकाशन इतिहास की एक पवित्र धरोहर है। डॉ नेमीचन्द जैन भले ही इसके अल्पकालिक (दो वर्ष) सपादक रहे, लेकिन इस अवधि मे उन्होने जिस सूझबूझ, दक्षता, अभिनव क्रान्त दृष्टि ओर समसामयिक चिन्तन प्रकर्ष का परिचय दिया, वह अपूर्व है। अप्रतिम है। अनन्य है। 'सरस्वती' मे आचार्य श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने सपादक-काल मे जिन गगन-चुम्बी कीर्ति-स्तभो की रचना की और हिन्दी साहित्यकारो की एक नई पीढ़ी का निर्माण कर दिखाया, ठीक उसी नक्शे कदम डॉ नेमीचन्द जैन ने भी 'वीणा' को एक नई झँकृति देने का रचनात्मक प्रयास किया है। उनके सपादन-काल की 'वीणा' की सबसे पृथक् अस्मिता है, तेवर है, भाव-भगिमा है और बाह्य-आभ्यतरिक व्यक्तित्व है। इसमे एक शीर्षस्तरीय समग्रता मुखरित हो उठी है।

एक प्रभविष्णु हिन्दी प्राध्यापक के रूप मे डॉ नेमीचन्द जैन ने हिन्दी-जगत् की जो सेवा की है, उसका मूल्याकन होना अभी शेष है, जब भी यह मूल्याकन होगा, निश्चय ही राष्ट्रभाषा-प्रेमियो को एक सुखानुभूति होगी। उन्होने लगभग दो दशक तक हिन्दी साहित्य के हजारो छात्र-छात्राओ को पढ़ाया है, हिन्दी के प्रति अनुरागवान् बनाया है। यह एक कठोर यथार्थ है कि न्यस्त स्वार्थ-साधको ने हिन्दी के मार्ग मे पग-पग पर रोडे अटकाए है, काँटे बोये है, जहर उगला है और उसे हीनग्रथि के सजाल मे लपेटने का दुष्ट प्रयास किया है, ऐसे चुनौतीपूर्ण वातावरण के बीच डॉ नेमीचन्द जैन ने जिस दृढता से हिन्दी के गौरव की रक्षा की है, वह अपने आप मे बेजोड है। उन्होने केवल शब्दो से नही, ठोस कार्यो/कृतियो से हिन्दी विरोधियो को न केवल निरुत्तर किया है अपितु हतप्रभ स्थिति मे ला पटका है। वे मिताक्षरी है। मितभाषी भी।

एक भाषा-वैज्ञानिक के रूप मे डॉ नेमीचन्द जैन ने भीली भाषा के सबन्ध मे जो शोध-प्रबन्ध लिखा है, वह अपूर्व है। अद्भुत है। इस दिशा मे उन्होने जो कठोर श्रम किया है, वह तमिल कहावत 'काय कवै कैलाश' का हिन्दी अनुवाद कहे तो अत्युक्ति नही होगी- काया (शरीर) से किया गया श्रम (तप) कैलाश (के उच्च शिखर) तक पहुँचा देता है। डॉ जैन ने अपनी इस थीसिस के लिए आदिवासी क्षेत्रो की जो खाक छानी है– वह एक उदाहरण है शोधार्थियो के समक्ष। आज देश मे पी-एच डी डिग्रीधारियो की बाढ-सी आ गई है। जिसे देखकर आश्चर्य होता है!

डॉ नेमीचन्द जैन ने अपने भीली भाषा शोध-प्रबन्ध द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। कभी भगवान् श्रीराम ने अपने चौदह वर्ष के वनवास-काल मे

भीलो/निषादो से जीवन्त सम्पर्क साधा था- यह केवल मिथक कथा नही है, वल्कि एक निर्भ्रान्त सचाई है। इसे डॉ जैन ने अपने इस शोध-प्रवन्ध से ससिद्ध कर दिखाया है।

महापडित राहुल साकृत्यायन, परिव्राजक सत्यदेव और इनके पूर्व स्वामी विवेकानन्द एव महात्मा गाँधी ने अपने ज्ञानवर्धक यात्रा-वृत्तान्तो से लोगो मे एक रुझान, एक अथाह जिज्ञासा और कौतुहल जगाया है। इस दिशा मे डॉ नेमीचन्द ने भी एक स्तुत्य योगदान किया है। उन्होने इस देश के विस्तृत भूभाग की यात्रा की है और उसका दिलचस्प वृत्तान्त प्रस्तुत किया है। इसमे लेखक एक नये 'सहस्राक्ष' रूप मे जो कुछ कहता है, दिखाता है, अनुभव कराता है, उसे पाठक 'गूँगे के गुड जैसे स्वाद' की भाँति ग्रहण करता है। इस स्वाद को वह बनाए रखना चाहता है और इसकी समाप्ति पर एक अजीब-सी अतृप्ति महसूस करने लगता है। उनके यात्रा-वृत्तान्तो मे एक मनोहारी शब्द-चित्रो की माला हमसे सवाद करती है। उनके द्वारा प्रस्तुत वातावरण से हमारा अनायास ही साधारणीकरण हो जाता है। यही वह बिन्दु होता है, जहाँ उनके यात्रा-वृत्तान्तो के कपाट खुलने लगते है और किसी राजप्रसाद के मखमली कालीन पर बैठा हुआ पाते है।

यह सही है कि अभी उन्हे विदेश-यात्रा का सुयोग प्राप्त नही हुआ है, उनकी यायावरी अपने विशाल देश तक ही मर्यादित है, लेकिन जब भी उन्हे यूरोप, अमेरिका या एशिया, अफ्रीका के मुल्को की यात्रा का अवसर प्राप्त होगा, वे अपने जिज्ञासा-तृप्तिमूलक यात्रा-वृत्तान्तो से हिन्दी साहित्य को समृद्धि का गौरीशकर अर्पित करेगे। ऐसा उनके पाठक-समूह का विश्वास है।

डॉ नेमीचन्द जैन के समक्ष चिन्ता और चिन्तन का मुख्य विषय इक्कीसवी सदी के भविष्य को लेकर है। वे नही चाहते कि देश मे हिसा का बहुरगी व्यापार अबाध गति से चलता रहे, आधुनिक यत्रीकृत वध-शालाओ मे प्रतिदिन मूक और मासूम पशुओ का कत्ल होता रहे, विदेशी मुद्रा कमाने के खातिर अरब देशो को माँस का निर्यात होता रहे, देश की पशु-सम्पदा का विनाश हम चुपचाप/निष्क्रिय देखते रहे, आखिर इस सर्वक्षयी चक्र को कौन रोकेगा? हमारी आवाज कब बुलन्द होगी? महावीर, बुद्ध और गाँधी के देश मे क्या हम सब हतवीर्य, शिथिल सकल्प सिद्ध होगे? यह आत्म-पीडन उन्हे झकझोर रहा है/व्याकुल कर रहा है। इसीका यह प्रतिफलन है कि वे अविराम गति से अपनी कलम को चला रहे है। उसे उन्होने 'रुद्र की तीसरी आँख' बना दिया है। फिलहाल यह गाँधी के एक व्यक्ति विनोबा के सत्याग्रह-सा लग रहा है।

डॉ नेमीचन्द ने अपनी तपोज्ज्वल पत्रकारिता के अन्तर्गत समालाप-विधा (वातचीत) को एक नई ऊँचाई पर सम्प्रतिष्ठ किया है। उन्होने अब तक जितने भी महान् व्यक्तियो, नर-रत्नों, मुनियो और क्षेत्र-विशेष की हस्तियो से साक्षात्कार कर

ममालाप को जो सौष्ठव/सौन्दर्य और अन्तरगता का पुट दिया है, वह अपनी एक अनोखी विशिष्टता रखता है। व्यक्ति-विशेष की हृदय-गुफा से रत्नो को खोज निकालने मे उन्हे महारत प्राप्त है। साप्ताहिक/पाक्षिक और मासिक पत्रो की अलग-अलग पहचान, गुण/धर्म/चरित्र को उन्होने जिस कुशलता से रेखाकित किया है, उससे हिन्दी साहित्य की प्राणवत्ता मे अभिवृद्धि हुई है।

डॉ नेमीचन्द भाषा-वैज्ञानिक है। उन्होने हिन्दी भाषा के गठन मे एक ऐसी रवानी विकसित की है, जिसमे हिन्दी-उर्दू भाषाओ के सगम और समन्वय से उसमे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावो को अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य प्राप्त हुआ है। इस दिशा मे आचार्य किशोरीप्रसाद वाजपेयी ने जो प्रयास किये है, उनके बाद डॉ जैन ही ऐसे एकमात्र अनुसधायक के रूप मे सक्रिय है, जिन्होने भारत की समसामयिक सस्कृति के अनुरूप हिन्दी के विकास का बीडा उठाया है। वे आज भी सृजनरत है। सृजन की थकान को उन्होने हमेशा नकारा है। अब तो यह उनकी एक आदत-सी बन गई है।

हिन्दी साहित्य की प्राय सभी विधाओ को उनका सस्पृश्य प्राप्त हुआ है। गद्य-पद्य दोनो मे उनकी समान गति है। उन्होने अपनी साहित्य-साधना के प्रथम चरण मे जितनी भी कविताएँ लिखी है, उनकी बानगी मे एक ताजगी है। उसमे लय है, गति है, ध्वन्यात्मकता है। उन्हे किसी वाद-विवाद की टकसाली मुहर नही लगायी जा सकती। उनका शिल्प मौलिक है।

कविता-सृजन की बनिस्वत गद्यात्मक रचनाएँ कई गुना अधिक है। उनमे विविधता है। ये विपुल मात्रा मे है। उनमे जहाँ जैनेन्द्रकुमार का गाभीर्य है, गहराई है, वही आचार्य रजनीश (ओशो) की तरल तार्किकता के दर्शन होते है। प्रेमचन्द की सादगी/साफगोई उनके साहित्य मे पद-पद पर मिलती है। उनकी वचनभगिमा मे एक लचीली सूत्रवद्धता है। वडी-से-वडी वात सक्षिप्तता से कह देना उनकी एक ऐसी खासियत है, जो विरलो मे ही पायी जाती है।

हिन्दी-जगत् को उनके जैसे समर्थ/वर्चस्वी/मर्मी/धर्मी साहित्यकार, पत्रकार, चिन्तक और विचारक से वहुत कुछ पाने की आशा/अपेक्षा और समुत्सुकता रखना स्वाभाविक है। प्रकृत है। अभी उनके अवदानो की सीमा-रेखा को चिह्नित करना कठिन है, लेकिन यह भूमितिक सत्य है कि डॉ नेमीचन्द जैन के अव तक के और आगत भविष्य के अवदानो से हिन्दी साहित्य-भण्डार समृद्ध होगा। पर्वताकार बनेगा। ऐसे पुलक-पर्वीले क्षण पर उनका विशाल पाठक-सघ उनकी सारस्वत साधना का अभिवन्दन ही करेगा। प्रभु उन्हे सौ वसन्तो का अमृत प्रदान करे। □

डॉ. नेमीचन्द जैन का जैन साहित्य को योगदान

□ सुरेश सरल

कल्पना कीजिए कि आप देश के एक जाने-माने कृषि-पडित हे, आपने अपनी उर्वरा भूमि से उत्तम प्रकार की इच्छु-फसल (गन्ने की खेती) प्राप्त की हे, उसमे-से आप चुने हुए गन्नो को स्वच्छ पानी मे धोकर उनसे भट्टी की ऑंच के सहारे अत्यत मिष्ठ और रुचिकर मिश्री तैयार करते है, फिर आप उसे कांच की शुभ्र चमकती बरनी मे रख देते है, कुछ हरे रग की बरनी मे, कुछ पीले रग की बरनी मे ओर कुछ चीनी मिट्टी की बरनी मे। अब आप से कोई पूछे कि किस बरनी की मिश्री उत्तम हे, या अधिक मीठी है, तो आप क्या उत्तर देगे?

डॉ नेमीचन्दजी जैन की लेखनी से सरजे/रचे साहित्य के साथ भी ऐसा है, एक 'साहित्य-पडित' ने साहित्य की सर्जना की, पचास साल से उनकी तप्त कडाही मे उच्च साहित्य नि सृत होता रहा, वे कडाही को गरम रखने स्वत ईधन बन कर जलते रहे, तैयार हो जाने पर कुछ साहित्य कविता की बरनी मे, कुछ लेख की, कुछ कथा की, कुछ वार्ता की बरनियो मे रख दिया, अब यदि कोई प्रश्न करे कि उनकी किस बरनी (किताब अथवा विधा) का साहित्य उत्तमोत्तम है तो स्वत वे या देश का कोई भी आलोचक-समीक्षक, साहित्य-मर्मज्ञ क्या बतलाएगा?

अत मै यह चर्चा करते हुए भी नही कह पा रहा हूँ कि उनकी कविताएँ अच्छी है या कथाएँ, लेख उत्तम है या कोई अन्य विधा?

डॉ साब ने सही मायने मे विधाओ का उपयोग सीढियो के मानिन्द किया है, वे अपने विचार-मच पर चढने के लिए कभी कविता की सीढ़ी लगाते पाए गए है तो कभी कथा की, कभी गभीर लेखो की तो कभी सार्थक व्यग्यो की। अत उनकी विधाओ को अच्छा-बुरा नाम या सर्वनाम देने के बजाय उन पर रससिद्ध चर्चा करना मेरा उद्देश्य है।

चर्चा करते हुए मै उनकी उन सीढियो को कदापि स्पर्श नही करता जो साहित्य-मच से नही टिकाई गई है और सपादन के उदात्त दायित्व को पूर्ण करने उनकी लेखनी उन सीढ़ियो पर जी-तोड कर चली है, पर वह अनेक बार साहित्य के छत तक नही जा सकी है, विचार-सम्प्रेषण के राजमार्ग पर ही चलती रही है। परतु, उसमे बिलकुल साहित्य नही है, यह भी नही कहा जा सकता है। उनके सपादन वाले कार्य ने पचास सालो मे यह सिद्ध कर दिया है कि सपादन की कुटीर के खभो के रूप मे जो चार सशक्त बल्लियाँ खडी हुई गडाई गयी है, वे साहित्य के वृक्ष ही की लकडियाँ है।

मुझे केवल उनका वह लेखन सामने रखना है जो 'जैन साहित्य' के मदिर मे निर्मित वेदी पर स्फटिक मूर्तियो की तरह प्रतिष्ठा प्राप्त है।

साहित्य का 'मूल' किसी विधा से जुडा रहता है अत साहित्य के धरातल पर 'विधा' की चर्चा/समीक्षा इस आलेख का मुख्य उद्देश्य है। उनके समस्त लेखन को दो भागो मे रख दिया जाए, एक - काव्य प्रखड, दूसरा - गद्य प्रखड। जाहिर है कि इन दो प्रखडो की सीमा मे आने वाले कुछ शब्द-चित्र ही चर्चा मे स्थान पा सकेगे, वे सब नही जो पत्रिकाओ को सजाने-सँवारने के लिए लिखे जाते रहे है। मेरा मतलब यह कि लेख लेख होता है, सपादकीय सपादकीय। तो पत्रिकाओ के मैदानी क्षेत्र मे डॉ माव ने लेखो और सपादकीयो को इतना गड्डम-गड्ड किया है कि उनके सपादकीयो को भी साहित्य की श्रेणी मे धरा जाने लगा। मै इधर कठोरता से चलता मिलूँगा, आम को आम और इमली को इमली कहने का साहस करूँगा।

उनकी ११० पुस्तको मे हजारो पृष्ठो की सामग्री है, पर मै केवल वे पृष्ठ चर्चा मे ला रहा हूँ जो गद्य या पद्य मे, केवल मौलिकता से सरोकार रखते है। ध्यान रखे, पत्रकारिता के धरातल पर उनके द्वारा लिखित समस्त पुस्तके, समस्त पृष्ठ, समस्त पक्तियाँ चर्चा मे लाई जा सकती है, पर साहित्य के धरातल पर यह सभव नही है।

डॉ नेमीचन्द के पद्यात्मक साहित्य को पहले छू रहा हूँ। उन्होने कविताओ की पोथी पृथक् से बनवाई हो ऐसा नही है, वे कविताएँ तो रचते रहे, पर समस्त रचनाओ की एक पृथक् किताब नही बना/बनवा सके। कहे उनके साहित्य का एक पूरा खड 'स्फुट' बन कर रह गया था। हाल ही मे उनकी गद्यागद्य रचनाओ का एक चार सौ पृष्ठीय ग्रथ तैयार किया गया है– 'डॉ नेमीचन्द जैन साहित्य एक अवलोकन' जिसमे काव्य प्रखड के मात्र ४१ पृष्ठ देखने को मिले है। इसका मतलब है कि उन्होने पचास वर्ष मे मात्र ४१ पृष्ठो की काव्य-सर्जना की है, कुछ अभी अप्रकाशित भी मान ले तो वे १०-२० हो सकते है। कहे, कुल ६० पृष्ठ लबी है उनकी काव्य-यात्रा।

इतनी कम कविताएँ लिखने से कोई राष्ट्रीय मच पर चर्चा के लायक बनते नही देखा गया है स्वतत्र भारत मे। परन्तु जब मै उनकी कविताओ मे-से होकर गुजरता हूँ तो लगता है कि कविता का मूल्य पृष्ठ-सख्या से नही, उसकी भावभगिमा से और भीतरी गहराई से बनता है। पढते-पढ़ते उनकी सकलित ४३ कविताओ से सजे-सँवरे समस्त ४१ पृष्ठ मेरी आँखो से होकर मन भूमि तक चले जाते है। तब लगा कि यदि ४१ पृष्ठ की एक लघु पुस्तिका बनाई जाती, तो भी, उसकी रचनाओ के कारण वह एक 'मूल्यवान ग्रथ' का दर्जा प्राप्त करने मे सक्षम रहती। इन पृष्ठो मे उनके काव्यानुवाद शामिल नहीं है।

श्री प्रेमचन्द द्वारा सपादित डॉ साब की एक अन्य पुस्तक जिसका नाम है 'कविताएँ' मेरे समक्ष कुछ बाद मे आती है। ९६ पृष्ठो की इस पुस्तक मे कुछ अधिक

काव्य-सामग्री पढने को मिलती है, माने, उक्त ४१ पृष्ठ तो इसमे है ही, अन्य ५३ पृष्ठो पर भी काव्य के मणि-मुक्ता चमकते मिलते है, जिनमे डॉ साब द्वारा किये गए कुछ काव्यानुवाद/भावानुवाद भी है।

जैन साहित्य को योगदान के कोण पर उनकी समस्त काव्य-रचनाओ को रखता चलता हूँ तो लगता है कि आदि से अत तक, कहे सन् १९४४ से १९९९ के मध्य, वे काव्य लिखते हुए जैन दर्शन को पल-मात्र भी आँखो से ओझल नही कर सके है। अत आचार्य अमितगति-कृत काव्य का अनुवाद 'सामायिक पाठ' हो या आचार्य मानतुग-कृत भक्तामर स्तोत्र का अनुवाद हो या आचार्य कुदकुद के 'समयसार' का छायानुवाद हो अथवा उन्ही (डॉ साब के) द्वारा लिखित मौलिक काव्य 'एक वास-वसन-मुक्त जीवन दर्शन' (सदर्भ आचार्य विद्यासागर) अथवा 'ॐ एक ग्रथ' अथवा 'मै सराक हूँ' आदि शब्द-रचनाएँ, सशक्त ढग से जैन दर्शन का महत्त्वपूर्ण अग बन कर उदित हुई है।

उनकी छोटी-छोटी रचनाओ– 'विश्वास की बात करते हो', नि शब्द कविता 'छुओ नही', 'सोचा बहुत', 'हर दफ्तर' आदि मे वह तत्त्व और वह रसायन घुले मिलते है जिनसे जैनधर्म का विराट् मच लीप-पोत कर पावन किया जाता है। कहे उनमे कुछ चदन-सा भी है, कुछ गगाजल-सा भी।

सपूर्ण रचनाओ मे कुछ ऐसी भी है जो 'जैन' के लिए नही है, या यो कहे– जैन भर के लिए नही है। वे रचनाएँ है- जय जय भारत माता, अय युवक उठो, भारत की स्वातत्र्य वेदी, और दीपमालिके। इनमे वह है जो सार्वभौमिक होता है, जो एक धर्म, एक जाति या इकतरफा चिन्तन से परे है।

अगर मै उनके काव्य का यथार्थ परिचय उन्ही के (डॉ साब के) शब्दो मे दूँ तो आप आश्चर्य करेगे, पर है यहाँ एक ऐसा आधार जो विपय पर साफल्य सूत्र देता है, वह है उनकी कविता 'मेरी पुस्तक मे'।

फिर लिखते है– 'कही अहिंसा बैठी हँसती, कही प्रेम की सुदर बस्ती। कही एकता की है मस्ती। सव वाते है विलकुल सस्ती– मेरी पुस्तक मे।'

डॉ साव का काव्य-प्रखड ही क्या, गद्य-प्रखड का परिचय भी उक्त कविता मे आज मे ५५ साल पहले घोपित कर दिया गया था, उनकी लेखनी द्वारा जो आज पृप्ठ-पृष्ठ पर देखने-पढ़ने को मिल रहा है।

मो परिचय मे कहे गए उनके शव्द, फिर मेरे और उसके बाद आपके (पाठक के) कही भी भ्रम का परिवेश नही वना सकते, डॉ नेमीचन्दजी के काव्यामृत से जैन वाड्मय का स्वास्थ्य, स्वरूप और आकार निखरा है। छवि-सौदर्य बढ़ा है। आधुनिक जेन माहित्य को उनके योगदान का इतिहास, यहाँ से ही वनता है, इस कृति से ही वनता है, जिसका नामकरण किया गया है– 'कविताएँ।'

डॉ नेमीचन्द जैन

मै इस/ऐसे लेखन के लिए डॉ साब को इतिहास-पुरुष कहता हूँ। मगर वे तो साहित्य-ससार के पारस-पुरुष भी है। उनकी हर कविता ही नही, कविता की हर पँक्ति आधुनिक जैन साहित्य को स्थायी मच देती है। क्या इससे बडा योगदान अन्य हो सकता है? यदि होता हो तो आप भी बतलाएँ, बोलने-बतलाने के लिए हम सब स्वतत्र है।

यदि उनकी पुस्तक 'कविताएँ' को अवदान का एक बडा तारा कहे साहित्याकाश का, तो उनकी रचना-प्रक्रिया और दार्शनिक वैभव को किरणावली कहना होगा, कुछ किरणे आप भी अवलोके –

आचार्य अमितगति-कृत सामायिक पाठ के हर श्लोक का अनुवाद मात्र शाब्दिक अनुवाद नही है, उसमे अनुवादकर्ता ने अपने सोच की ऊर्जा और शब्द का धन ऊँलीच कर, उसे हिन्दी का अमरत्व प्रदान कर दिया है। बीसवे पद्य मे शब्दो का प्रयोग देखे, वे तीर्थकर भगवान् को एक पँक्ति मे 'केवलज्ञानमयी' कहते है तो दूसरी मे 'अमरजयी'। यदि कोई साधारण विद्वान्/कवि इसका अनुवाद करता तो वह सीधा-सीधा 'केवलज्ञानी' और 'अमर सैनानी' कह कर अनुवाद और तुक का लाभ उठता और कार्य से मुक्ति पा जाता, परतु डॉ नेमीचन्द ने अनुवाद-कार्य को भी मौलिकता की स्वर्ण सज्जा मे-से होकर, निकाला है, अत अमर रचना का अनुवाद भी अमर कहा जा सकता है। रचना या कार्य की यही अमरता और मौलिकता आज जैन साहित्य की विशिष्ट वस्तु बन कर जैन साहित्य-ससार मे जगमग कर रही है।

यही भावभूमि, यही उद्देश्य और यही तप उन अनुवादो मे डॉ साब ने स्वीकार किया है जिनकी मूल रचनाएँ - आचार्य कुदकुद ने, आचार्य मानतुग ने या अन्य महापुरुषो ने की है। महाकवि रइधू, महाकवि बनारसीदास आदि के साहित्य के साथ भी उन्होने श्रेष्ठ न्याय किया है।

अपनी कविताओ मे भी, वे वही तेवर और वही राह चुनते है, जिनसे 'मौलिकता' नाम का सर्वश्रेष्ठ गुणधर्म पुष्पित-पल्लवित होता है। एक कविता है – शीर्षक 'मेरा जीवन' मे वे अपने माध्यम से ससार के उन समस्त मनीषी जिज्ञासुओ का बोध कराते है जिनके प्रश्नो का आधार सत्यान्वेशी है, वे लिखते है– 'प्रश्नवाचको की एक विराम पक्ति है/शायद यह एक ऐसा बीहड वन है/जिसमे अनबोये/बिन बरखा के/विस्मय के, प्रश्नो के/बिरवे उग आये है'। ऐसा लेखन आधुनिक जैन साहित्य का मील का पत्थर बनता है तो हमे हर्ज क्यो हो? हर्ज उन्हे हो सकता है जो लिखने के नाम पर एक हजार कविताएँ लिख चुके है, पर साहित्य-मार्ग के मील के पत्थर क्या, साधारण ककर नही बना पाये।

लेख की लबाई के भय से मै अधिक उदाहरण नही देना चाहता, पर पाठको से कहना चाहता हूँ कि चलो तो सही रास्ता चलो, लिखो तो मौलिक लिखो, अन्यथा

कलम और कलम चलाते हुए हम दोनो स्थानो पर भटकते ही रह जाएँगे और हमारा [illegible] हुआ पत्र और लिखा हुआ पत्र (कागज) हमे ही चिढाता रहेगा। अत डॉ नेमीचन्द जैन के काव्य से/साहित्य-संसार से सरोकार रखने वाले जन/महाजन तनिक-सा आत्मप्रकाश तो पा ही सकते है। सच वही प्रकाश तो है वह योगदान जो डॉ साब ने [illegible] जैन साहित्य को दिया है। □

उनके गद्य-प्रसंग की चर्चा करें, तो उसे अनेक भागो मे विभाजित कर देखना-समझना-परखना होगा। काव्य-विधा की तरह गद्य साहित्य मे कहानी-विधा और नाटक-विधा प्रमुख स्थान रखती है, जबकि अभी व्यग्य-विधा, वार्ता-विधा – साक्षात्कार-विधा को समीक्षक-संसार की ओर से कोई पृथक् मान्यता नही दी गई है, [illegible] ये तीन या और भी विधाएँ मूल रूप से कहानी-विधा और नाटक-विधा की शाखाएँ उपशाखाएँ ही है। डॉ नेमीचन्दजी का सम्पूर्ण गद्य-साहित्य उक्त दो प्रमुख *विधाओ (कहानी और नाटक विधाओ) के बैनर तले प्रकाशित है, प्रकाश बिखराता* [illegible] है। उन्होंने [illegible] कहानी या नाटक नही लिखे है, पर उनके लेखन को [illegible] और भूमि देने वाली अलग-अलग प्रणालियों पर वे चले है, जैसे बातचीत, वार्ता, परिचर्चा, [illegible], समीक्षाएँ, यात्राएँ, आत्मकथ्य, यात्रा-वृत्तात, पत्र, जीवन-प्रसग आदि [illegible] अपनी सविधा से आधुनिकता के मन पर भारी श्रम और सृजन- [illegible] साथ प्रस्तुत की है, जो न पृथक्-पृथक् [illegible] नही है पर वे सब कहानी, नाटक [illegible] मिल होते है।

अतएव उनके हजारो पृष्ठ के गद्य साहित्य को साहित्य की मुख्य धारा के समानान्तर एक पृथक् प्रशस्त धारा कहा जाए तो अन्यथा न होगा।

निवन्ध-विधा के वे महारथी है, उनके सैकडो निबन्ध ही उनके साहित्य के अस्तित्व के प्रतीक है और है वे साहित्य के प्राण। लगभग सभी निबन्धो की रचना-प्रक्रिया आधुनिक जैन साहित्य की सरचना से जुडी हुई है। फलत प्रेमचन्दजी जैन ने उनके आलेखो को 'सामाजिक, सास्कृतिक, साहित्यिक अनुशीलन के आधुनिकता-बोधक निवन्ध' कहा है जो मेरी लेखनी मे समर्थन पाता है।

डॉ साव निवन्धकार या साहित्यकार से पूर्व एक विराट् दार्शनिक है अत उन्होने दीन-दुनिया और दीनधर्म के रहस्योद्घाटन और यथार्थ स्वरूप की जानकारियाँ देने के निमित्त सहस्त्रो शीर्षको के अतर्गत शताधिक विषयो पर निबन्ध लिखे और जैनधर्म के साथ-साथ जैन साहित्य के सही प्रहरी भी बन सके। ऐसे प्रहरी जो साहित्य, सस्कार और सभ्यता की चौकसी तो करता ही है, सही लालन-पालन भी करता है, इन दो श्रेष्ठ कर्त्तव्यो – चौकसी और लालन-पालन के साथ-साथ वे साहित्य का नवनिर्माण का कार्य भी मुस्तैदी से सभाले रहे है, और ऐसा-ऐसा साहित्य सर्जन करने मे साफल्य पा [illegible] है जो जैन समाज और जन-समाज को समान रूप से ऊर्जा दे सका है।

निवन्ध के साथ-साथ उनकी अन्य स्वरचित/स्वनिर्मित विधाएँ भी [illegible] को अधुनातन जानकारी से लबालब मिली है। जव वे किसी महापुरुष [illegible] वातचीत करते है तो उनके प्रश्न ध्यान देने योग्य होते है, उनकी [illegible] व्यक्तित्व को आत्ममथन कर डालने की स्थिति तक ले जाती है [illegible] सागर मे वे-वे मोती-माणिक निकलवा लेती है जिनकी [illegible] साहित्य की होती है। बस उनके प्रश्नो का ही वह [illegible] रहा महामानव आधुनिक जैन साहित्य की झोली [illegible] है।

इतना ही नही, मौलिकता की दृष्टि से उसे सन् १९६२ तक प्रस्तुत किये गए अनेक अधिनिवन्धो के मध्य सर्वश्रेष्ठ निरूपित किया गया था।

आदमियो/व्यक्तियो से साक्षात्कार करने वाले डॉ साब सन् १९६० से अव तक शब्दो से साक्षात्कार कर रहे है, उन्होने १९६२ के आसपास, भीली शब्दो से साक्षात्कार करने कई माहो तक भील (लोगो) से साक्षात्कार किया और भारी श्रम के पश्चात् चार हजार पाँच सौ शब्दो के गले मे माला पहिना कर, उन्हे अपने 'भीली शब्द-कोश' मे प्रतिष्ठित किया। आज यह शब्दकोश शोधार्थियो के मार्ग पर दीपक का कार्य कर रहा है। उनके ये दोनो कार्य (भी) जैन साहित्य के भण्डार के उस कक्ष मे स्थान पा रहे है जो सहयोग और 'आधुनिकता' के बोध के लिए चर्चित है।

१९६२ के किसी एक माह मे उन्होने उक्त शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया था और उसी वर्ष नवबर मे उन्हे पी-एच डी की उपाधि से नवाज दिया गया था, बाद मे उन्होने डी लिट् के लिए 'भीली का व्युत्पतिक शब्दकोश' का मन वनाया, पर सपादन-कार्य मे अवसर ही न मिला, अत ग्रथ का कार्य, आज भी शात पडा है। सपादन मात्र का कार्य उन पर नही था, उसी दौर मे उन्होने अन्य शोधार्थियो के लिए ग्यारह लघु शोध-प्रबन्धो का निर्देशन भी किया था।

मैने कहा था कि वे शब्द से साक्षात्कार करते है, इस विषय पर उन्होने एक बडा कार्य किया आधुनिक जैन साहित्य के खेत (क्षेत्र) मे, उन्होने शब्दो को परखना शुरू किया, उनमे शब्दानुशासन देखा, उनके भीतर छुपा शब्द-सयम विलोका, शब्द की सत्ता का नगी आँखो से दर्शन किया, शब्द के अर्थ और शब्दार्थ तक पेगे भरी, शब्द की पहचान निर्धारित की, शब्द की अस्मिता पर प्रकाश डाला, शब्द का जीर्णोद्धार किया, शब्दो मे अर्थ-परिवर्तन की गुंजाइशो पर ध्यान दिया, शब्द के सही अर्थ से लेकर उसकी माया (जाल) तक यात्रा की और शब्द के सार्थक उपयोग पर बहस की। इतना सब कर डाला तो वे ही नही, जैन साहित्य भी समृद्ध हुआ।

शब्द के बाद उन्होने शब्दकोशो की रचना तो की ही, ससार के अनेक शब्दकोशो का परिचय जनसामान्य के समक्ष लाए। उनके योगदान का आकलन क्लिष्ट कार्य है क्योकि जो विद्वान 'शब्दधर्म' और 'शब्दकोश' जैसे कठिन कार्यो को लेकर चल रहा हो, वह अपनी 'आकाशवाणी-वार्ताओ' को लेकर आकाशवाणी से भी सराहना पाता गया है। डॉ साब ने आकाशवाणी से सैकडो वार्ताएँ पढी, परन्तु हर वार्ता के लेखन और हार्द ने आधुनिक जैन साहित्य का योगदान दिया, कोई भी वार्ता यहाँ-वहाँ से नही फिसली, उनके लक्ष्य को निनादित करती ही मिली।

हाँ, उन्होने उपन्यास नही लिखे है, पर उपन्यास से बडे कुछ ऐसे लेखन-कार्य किये है जिनके समक्ष उपन्यास मायने नही रखते, तो भी आलोचकगण उन्हे उपन्यासकार क्या कहेंगे? डॉ साब ने अन्यान्य उपन्यासो पर अपनी दृष्टि डाली है, कथा-साहित्य से जुडा है, आलोचना निबन्ध लिखे है, सास्कृतिक साहित्य के आधार की

डॉ नेमीचन्द जैन

चर्चा की है, महात्मा गाँधी और विवेकानद सहित, गणेशप्रसाद वर्णी, आचार्य शान्तिसागर, आचार्य विद्यानन्दजी आदि की जीवनियाँ गहराई से पढ़ी है, उन पर लिखा है, विवेचन किया है। हिन्दी की प्रथम आत्मकथा प बनारसीदास कृत 'अर्द्धकथानक' पर तो उन्होने काफी कुछ प्रकाश डाला है, कहने का तात्पर्य यह कि वे उपन्यासकार, कथाकार, कहानीकार व्यग्यकार, कवि, नाटककार, वार्ताकार की पृथक्-पृथक् तख्तियाँ अपने व्यक्तित्व पर नही टाँगने देते, अत उन्हे 'साहित्यकार' कहकर उक्त सभी स्वरूपो का 'एकत्व' उनमे देखते है हम। एक सफल साहित्यकार, एक आचार्य-साहित्यकार, हाँ एक महान् रचनाकार कह कर भी लगता है कि उन्हे कुछ और-और कहा जाए, क्योकि उनकी लेखनी ने मात्र डॉ नेमीचन्द का व्यक्तित्व बुलन्द नही किया, समग्र जैन साहित्य को बुलन्दियाँ दी है। आधुनिकता-बोध का सोच दिया है। वैचारिक ओढ़नी दी है, शब्द-ज्ञान का आँचल दिया है।

आपने सुना होगा कि जब कोई वरिष्ठ और सिद्धहस्त शास्त्रीय सगीत का गायक शास्त्रीय राग अलापता है, तब बीच मे यदि उसे खाँसी आ जाए तो वह खाँसी भी एक नया राग बनकर निकलती है श्रोताओ के समक्ष, यही स्थिति मे साहित्य के चक्रवर्ती डॉ नेमीचन्द जैन मे देख रहा हूँ, वे एक छोटी-सी चिट्ठी भी लिखते है तो उसमे-से साहित्य झाँकता दीखता है।

उनकी यात्राओ को ही ले ले, वह एकदम साहित्य नही है, पर पढ़ने के बाद वे साहित्य के एक हिस्से के रूप मे अपना परिचय दे जाती है। यात्राओ को साहित्यकार कभी-कभी एक हल्की उपेक्षा से देखते-पढते है, पर डॉ साब, जिन्हे साहित्य का आचार्यत्व प्राप्त है, की दृष्टि से देखे तो ज्ञात होगा कि– (१) यात्राएँ ज्ञान और गति से जुडा साहित्य है। (२) हर बार वे कुछ नया-नया जोड जाती है जीवन से, चिन्तन से। (३) यात्राएँ साहित्यीय दौलत की खरी मुद्राराशि है। (४) सबन्धितो को खोजते-खोजते यात्राएँ खुद को ख़ोज लेने मे सहायक सिद्ध होती है। (५) यात्राएँ अनुत्तरित प्रश्नो का अभिषेक करती है और उत्तर का गधोदक प्रदान करती है। (६) वे साहित्य और आदमी मे छुपी मौलिकताओ को उद्घाटित करती है। (७) अकेले रहने (पढ़ने-लिखने-कहने) का बल देती है। (८) यात्राएँ ही धीरे-धीरे तीर्थयात्रा बनने लगती है। (९) यात्रा सास्कृतिक, साहित्यिक और धार्मिक प्रवास है।

उनकी यात्राओ के वृत/वृतान्त पढ़ने के बाद हमे लगता है कि हमने जैन साहित्य का एक पाठ अभी-अभी पूरा कर लिया है, जिसमे धर्म भी गुम्फित था। डॉ साब का लेखन सरिता की तरह बहता है और उसके किनारे बातचीत, जैन विद्या के पाठ, शोध-प्रबध, शब्दावलोकन, शब्दकोश, कविता, कहानी, बोधकथा, जीवन-प्रसग, आकाशवाणी-वार्ताएँ, सपादित पुस्तको की भूमिकाएँ, पुस्तको और पत्र-पत्रिकाओ की समीक्षाएँ, यात्राएँ आदि नाम के प्रशस्त और पावन 'घाट' मिलते-बनते जाते है। उनके दो घाट और है दैनदिनी लेखन और पत्र।

दैनदिनी-लेखन मे उनका अपना आत्मकथ्य ही पढ़ने को मिलता है, पर वह साहित्य के जैन धरातल पर होता है। कहे गत अर्धसदी की अवधि मे जो डायरियाँ लिखी गई है, उनमे, अधिकाश पन्नो मे जीवन के अनुभव उतारे गए है शेप मे सामान्य विवरण। वे कहते है कि डायरी-लेखन एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, वह मात्र व्यस्तताओ अथवा स्मरणीय कार्य-सूची का निर्जीव ब्यौरा नही है। यदि व्यक्ति के साथ हमारा धार्मिक, सामाजिक, सास्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रो से जुडा नेतृत्व डायरी लिखना शुरू कर दे और बाद मे, कुछ माह बाद, उसे पढ तो जीवन के अनेक समाधान स्वत के बलबूते प्राप्त किये जा सकते है।

डॉ साब की पुस्तिका-'डायरी मै ऐसे लिखता हूँ' जो जन पढेगे वे डायरी और डायरी-साहित्य/चिन्तन को समझ सकेगे। यो उनकी डायरी का हर पन्ना जैन साहित्योन्मुखी पाया गया है।

डायरी बडी बात है, उनकी एक चिट्ठी, मै पत्र नही कह रहा क्योकि वह बडा हो सकता है, चिट्ठी की बात कर रहा हूँ जो पोस्टकार्ड पर है, होती है, को पढ ले, लगेगा कि एक निबन्ध पढ़ने का लाभ मिल गया है। तात्पर्य यह कि उनकी चिट्ठी-पत्री भी, साहित्य और धर्म का सदेश कहती मिलती है।

तो जिस पुरुष ने पूरे जीवन को पचास वर्षों से साहित्य के अर्क मे डुबो कर रखा हो, उसके किसी भी पोर से अन्य बाते नही आ सकती, बस साहित्य की सुबास ही आती मिलेगी। अत डॉ साब को, सूँघ कर, थथोल कर (स्पर्श कर) या अन्य किसी तरीके से देखे-पहिचाने, वे जैन साहित्य का एक महमहाता उद्यान के रूप मे ही मिलेगे। बहुमुखी प्रतिभा-सपन्न, बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी डॉ नेमीचन्द जैन वर्तमान भारत मे, भाषा-ज्ञान के महाचार्य, महामनीषी कहे जाएँ, पुकारे जाएँ तो मेरे साथ-साथ उनके हजारो पाठक गौरवान्वित होगे। एक सौ दस पुस्तको को सार्थक जन्म देने वाले वे देश के महान् रचनाकार, जीवन के आदि से अब तक, आधुनिक जैन साहित्य के कर्ता और प्रणेता कहे जाते रहेगे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और आचार्य महावीरप्रसाद के बाद निबन्ध के आकाश के दिवाकर के रूप मे वे हमारे सामने आये है।

इतना सव लिखने के वाद मुझे आश्चर्य है कि मै उनके गद्य-लेखन मे-से कोई एक उदाहरण न रख सका, उसका कारण है कि उनके द्वारा लिखित समस्त साहित्य ही उदाहरण है, एक पक्ति या एक कडिका (पैरा) मात्र नही।

इस निवन्ध मे मैने उनके उन हजारो पन्नो पर राज्य कर रहे 'शाकाहार' विपयक साहित्य की चर्चा नही की है जिसका शव्द-शव्द जैन साहित्य की नूतन भगिमाओ को समर्पित है। वे 'शाकाहार-दर्शन' के मात्र लेखक नही है, एक आदोलनकर्ता भी है। सो उनके इस दिशा मे किये गये श्रम को भी भुलाया नही जा सकता। □

डॉ नेमीचन्द जैन

डॉ. नेमीचन्द जैन की 'शाकाहार' को मौलिक देन

□ डॉ मदन मोहन बजाज

(दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी एव खगोल भौतिकी विज्ञान के सुख्यात प्रोफेस डॉ मदन मोहन बजाज 'डॉ नेमीचन्द जैन . शाकाहार का मसीहा' नामक विशद पुस्त लिख रहे है। इसमे वे राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य मे शाकाहार की व्यापक च करते हुए डॉ नेमीचन्द जैन का शाकाहार को वैज्ञानिकता के साथ-ही-साथ गुणवत्ता प्रद करवाने मे जो मौलिक अवदान है, उसका विवेचन कर रहे है॥ व्यस्तता के कारण लेखन मे विलम्ब हो रहा है। यहाँ उनके पत्रो मे-से कतिपय अंश प्रस्तुत किये जा रहे है– अत्यन्त सक्षिप्त अश साकेतिक रूप मे। वे अपने शोध-कार्य/अपने सिद्धान्त : बिसोलॉजी को प्रतिपादित और विकसित करने मे डॉ नेमीचन्द जैन के शाकाहार-विषयक मौलिक विचारो को अपना प्रेरणा-स्रोत मानते हैं और उन्हें श्रेय देते हैं। इसमे डॉ जैन को अपना सहयोगी मान कर उनका नाम भी जोड़ लिया है। -सं.)

डॉ नेमीचन्दजी का मुस्कराता चेहरा हम सबके लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है, पर इस मुस्कराहट के पीछे एक मनीषी के दर्द का दरिया बहता नजर आता है। कत्लखानो की बढती सख्या जहाँ हमे हतोत्साहित कर रही है, वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनके महान् कार्य की सफलता को देख कर मै अभिभूत हो उठता हूँ। भारत मे शाकाहार को समर्पित प्रथम गौरवशाली पत्रिका प्रारभ करने का श्रेय उन्हे ही है। 'शाकाहार-क्रान्ति' का प्रत्येक अक मौलिकता को लेकर आता है। (पूरी पत्रिका) उनकी कलम से जनमती और पल्लवित होती रहती है।

डॉ नेमीचन्दजी का सबसे बडा अवदान शाकाहार की गुणवत्ता पर जोर देना है। उसे वैज्ञानिक एव तर्क-सम्मत आधार पर स्थापित करता है। शाकाहार को केन्द्र मे रख कर विभिन्न विषयो की १०० तथ्यो के अन्तर्गत उजागर करने की उनकी अपनी मौलिक और मार्मिक शैली है, जैसे अण्डे के बारे मे १०० तथ्य, मासाहार सौ तथ्य, शाकाहार १०० तथ्य, कत्लखाने १०० तथ्य, मास-निर्यात १०० तथ्य, धूम्रपान १०० तथ्य, शराब १०० तथ्य।

डॉ नेमीचन्दजी के लेखन, चिन्तन और मनन को मेडीकल साइस- आयुर्विज्ञान मे एक जबरदस्त, उपयोगी एव विश्वस्वीकार्य नव-चिकित्सा-पद्धति को जन्म दिया है। उनका कथन है कि एलोपैथी का भारतीयकरण होना चाहिये। ('शाकाहार-क्रान्ति' का सपादकीय, 'विटामिन-ई समीक्षा और समाधान, अक्टूबर-नवम्बर, '९९)। उनके शाकाहार-विषयक समग्र साहित्य से जो नया विषय चिकित्सा-शास्त्र के क्षितिज पर उभरा है उसे हम बिसोपैथी (Bisopathy) अथवा बिसोथैरेपी (Bisotherapy) कह सकते है। बिसोपैथी वह चिकित्सा-पद्धति है जो पूर्णरूपेण अहिंसक स्तम्भो पर खडी हुई है। BIS Effect (हिंसा अथवा एकीकृत तत्र विभग प्रभाव) को निराकरित

करने वाली पद्धति को विसोथैरेपी कहते है और अहिसक/शाकाहारी जीवन-दर्शन से रोगो को दूर करने की पद्धति को बिसोपैथी कहते है। BIS प्रत्यय उनके समूचे दर्शन को सन्निहित करना है।

Anti BIS मे शाकाहार, मद्य-निपेध, अचौर्य वृत्ति, वेश्यावृत्ति-निपेध, मत्कार्य ऐसी सभी प्रवृत्तियाँ अन्तर्निहित है। मुझे लगता है, उनकी शाकाहार-विपयक सारी किताबो को हम विसोथैरेपी/विसोपैथी का घोपणा-पत्र (Manifesto) मान मकते है। अब हमे वेक्सीन (Vaccine) का विरोध करना चाहिये या विकल्प खोजना चाहिये।

Nemichandian Compassion Waves (NC waves) के रूप मे डॉ नेमीचन्द एक विषय (Subject) बन गये है। अब EP waves और NC waves की तुलना पढी जाएगी। EP waves महान् वैज्ञानिक अल्बर्ट आइस्टाइन के नाम पर 'पीडा-तरगो' से है।

डॉ नेमीचन्द के शब्दो मे 'बिस सिद्धान्त' कोई नैतिक या सास्कृतिक या वाणिज्यिक अभियान या आन्दोलन नही है, वरन् धरती को बचाने और उसे सुखी/समृद्ध बनाने का एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है।

डॉ नेमीचन्द के चिन्तन और मनन से विज्ञान की पचास से अधिक नवीन ज्ञानधाराएँ- (Disciplines/Branches) शाखाएँ प्रस्तुत हो रही है और अब समृद्धता प्राप्त कर रही है। उनके महान् कार्य को विज्ञान की विशिष्ट भाषा मे 'बिसोलॉजी' कहते है। इस शब्द का पुस्तक-रूप मे प्रथम प्रयोग उन्होने अपनी किताब 'भूकम्प की वजह कत्लखाने, युद्ध, क्रूरता, हिंसा, हत्या' मे किया है। 'शाकाहार-क्रान्ति' के कई अको मे वे बिसोलॉजी को प्रतिपादित करते रहे है। यह विज्ञान की वह शाखा है जो एकीकृत तत्रो के विभगन अथवा विछिन्नीकरण से सबन्ध रखती है। अग्रेजी मे Breakdown of Integrated Systems या Butchering and Intense Slaughtering या Butchering and Indiscriminate Slaughtering अथवा Bonding of Infinitesimal Signals Effect इसी प्रभाव को कहते है। BIS Cosmology, BIS Traumatology, BIS Astronomy, BIS Physics, Nephro BISophysics, Quantum BISO Physics, Uro BISO Physics, BISO Cardialogy कतिपय नवीन विषय है, जो डॉ नेमीचन्द की शाकाहार-विषयक साहित्य के गहन अध्ययन से उभर रहे है। चडीगढ़ का एक छात्र U K Plant Biotechnology मे Ph D करने जा रहा है। यही है वह विषय जिसे हम पल्लवित करना चाहते है Small pox का Vaccine घोडो की हत्या से बनता है। अधिकतर Vaccine जीव-हत्या के परिणाम है। हमे इन्हे बन्द करवाना होगा, इसके लिए हमे सार्थक/सफल/ सरल/सस्ते विकल्पो के शोध करना होगी।

'शाकाहार' को जनसाधारण से प्रबुद्ध और वैज्ञानिक समुदाय की विचार एव आचार का विषय बनाने मे डॉ नेमीचन्द जैन का जो अवदान/योगदान है जिसे मै उनकी मौलिक देन (Contribution) कहना चाहता हूँ, इसके दूरगामी परिणाम हो रहे है। □

डॉ नेमीचन्द जैन

आधुनिक साहित्य मे नेमी साहित्य का स्थान

□ प्रेमचन्द जैन

नेमी साहित्य को मै किस दृष्टि से देखता हूँ, उसके सवन्ध मे किस तरह सोचता हूँ, उसको क्यो उपयोगी मानता हूँ, वह मुझे क्यो आकर्षित कर रहा है, मै क्यो इस दिशा मे अपनी सपूर्ण शक्ति लगा रहा हूँ। ये सब और ऐसी बाते विचारणीय है।

जैसा कि मैने माना या कहा कि नेमी साहित्य है। उसकी अपनी अलग पहचान है। उसकी अपनी अलग दृष्टि है। उसकी अपनी विशेषता है। उसकी अपनी शैलीगत विशिष्टता है। जैसा श्री रत्नेश कुसुमाकर ने लिखा है कि डॉ नेमीचन्द जैन भीड मे आसानी से पहचाने जा सकते है। इसी प्रकार उनकी अपनी पहचान है। यहाँ भीड का अर्थ व्यक्तियो की भीड से नही है। यदि वह है भी तो लेखको/सपादको की भीड मे है। यह भी अप्रत्यक्ष रूप मे ही पहचान की ओर सकेत है कि किसी भी विषय पर बहुत से लेखको ने लिखा है और उन लेखो मे किसी भी लेखक का उल्लेख न हो तो विचार और शैलीगत विशिष्टता के कारण, अपनी मौलिकता और पारदर्शिता के कारण भी लेख किसने लिखा है, सपादकीय किसका है– यह पता लगाया जा सकता अनाम (वेनाम होने पर भी) यदि डॉ नेमीचन्द जैन द्वारा लिखा गया होगा तो की पहचान अप्रत्यक्ष रूप से भी की जा सकती है।

साहित्य मे अनेको/सैकडो लेखको/विचारको की पुस्तके है और रहेगी। साहित्य समृद्ध/सपन्न वनाने मे सवका अपना-अपना योगदान है। प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से ऐसा करते आ रहे है या उनके द्वारा सहज होता जा रहा है। वह मात्रात्मक और गात्मक दोनो हो सकते है। उनके द्वारा किया गया हो या सपादित करके किसी ने समे समाविष्ट किया हो। आशय यह है कि साहित्य मे अपनी पहचान वनाना इतना आसान काम नही है। समीक्षक/आलोचक यह कह कर मेरे कथन को महत्त्वहीन वता सकते है– यह सव वकवास है, भावुकता है, निरर्थक चर्चा है। इसमे कोई दम नही है, सकी कोई आवश्यकता भी तो नही है। उदाहरण देकर कहेगे, देखिये, हिन्दी मे सैकडो/हजारो लेखक है, सपादक है, साहित्यकार है, सव लिखते आ रहे है। यह उनका 'रूटीन'-सा है। जैसे कोई सपादक है, तो उसे तो प्रतिदिन लिखना ही है। क्या उसके सपादकीय लेख साहित्य के अन्तर्गत मान्य हो सकते है? या उनका समावेश साहित्य मे होना चाहिये? इसमे विशेषता क्या है? आप कहेगे कि हजारो सपादको के ऐसे सपादकीय लेख साहित्य की रचनाएँ है, तो फिर साहित्य की अवमानना ही यह होगी। साहित्य इतना सस्ता, हल्का, सामान्य स्तर का नहीं है। यदि सपादको के ऐसे लेखो

की पुस्तके तैयार की जाये, तो अम्बार लग जाये और उन्हे साहित्यकार माना जाने लगे। इसी प्रकार आप यह भी कह सकते है कि भाषण/व्याख्यान जो दिये जाते है, उन्हे भी लिखित रूप मे प्रस्तुत किया जाये तो यह भी साहित्य के अन्तर्गत आ सकता है। तो हर लिखित बात/वार्ता साहित्य के अन्तर्गत आने लगेगी। हजारो अखबार/प्रचार-सामग्री से युक्त पुस्तको को साहित्य मे स्थान मिल गया या दिया तो यह साहित्य की मूल अवधारणा/आदर्श के बिल्कुल विपरीत है। हर लिखित बातचीत (वार्तालाप)/विचार/लेख साहित्य के अन्तर्गत नही आ सकता। हर कोई लेखक/सपादक को साहित्यकार माना ही नही जा सकता, और फिर आपकी बात कोन सुनता/मानता है?

आप होते कौन है? आपकी अपनी क्या हैसियत है, औकात है? आप तो मात्र एक सामान्य/साधारण पाठक/वाचक है। आपकी समझ साहित्य को लेकर है भी कितनी? क्यो अपनी शक्ति/समय इसमे व्यर्थ कर रहे हो? आपकी बात न तो कोई सुनने वाला है, न मानने वाला। जिसका कोई अस्तित्व ही नही है, उसे व्यर्थ ही मोहवश अस्तित्व मे ला रहो और कहना चाहते हो कि उसका भी 'सहअस्तित्व' है। यह सब चलने वाला/होने वाला नही है।

इससे भी तीखी/तीव्र प्रतिक्रिया मुझे आदरणीय भैया (डॉ नेमीचन्दजी जैन) से सुनने को मिली थी कि मैने ऐसा-वैसा कुछ नही लिखा है। मेरे लेखन मे ऐसा कुछ भी नही है, जो मौलिक और विशिष्ट माना जा सकता है, जो चर्चा का विषय बन सकता है। नेमी साहित्य जैसा कुछ है ही नही, जब है ही नही, तब उस पर चर्चा का प्रश्न ही कहाँ उठता है? तुम्हारी यह भ्रामक धारणा है। अपना मोह भग करो और इस दिशा मे सोचना बन्द करो। साहित्यकार तो मै हूँ नही। थोडा-बहुत लिखा है, लिखता हूँ वह भी दबाव मे। उसमे ऐसा कुछ नही है, जिसे साहित्य मे समावेश किया जाए। यह तुम्हारी निरी बकवास है, फिजूल की बात है। अपनी औकात को पहचानो/मोहवश ऐसा कुछ भी नही करो, जिससे मेरी भावना को ठेस पहुँचे। मै तुम्हारे इस लिखने-लिखवाने के कार्य से दु खी हूँ, असतुष्ट हूँ, परेशान भी हूँ। मुझे यह सब बिल्कुल/कतई पसन्द नही है। अब आगे से न तो लिखोगे/लिखवाओगे। प्रकाशन की बात तो है ही नही-- वह भी अपने प्रकाशन के अन्तर्गत!

ये सब सुन कर मै सहम गया/स्तब्ध रह गया हूँ, निरुत्साहित भी हुआ हूँ। लम्बे समय तक अनमना/उदास भी रहा हूँ। मै उनके हठी/क्रोधी स्वभाव से परिचित भी हूँ। उनकी आज्ञा का उल्लघन असहनीय भी हो सकता है, जोखिमभरा तो है ही। मेरी स्थिति कुछ किकर्तव्यविमूढ़-सी हुई। मैने इतर कार्यो मे अपने को सलग्न भी कर लिया, जिन्हे मुझे इसके लिए स्थगित करना पड रहे थे, लेकिन अन्तर्धारा/अन्तर-प्रवाह मे 'नेमी साहित्य' अस्तित्वहीन नही हुआ।

डॉ नेमीचन्द जैन

मेरी मान्यता/धारणा इससे भिन्न है। मै स्वय को बहुपठित, बहुत पढने वाला मानता हूँ। मैने पढ़ने मे कमी नही की है। खूब पढ़ा है। सत्साहित्य ही मेरा अपना प्रिय विषय रहा है। मेरा मन-मस्तिष्क/दिल-दिमाग सत्साहित्य के पढ़े गये विचारो/भावनाओ से ओतप्रोत होते रहे है। मैने प्रभावित होकर नोट्स भी तैयार किये थे। जो-जो विचार मुझे जीवनोपयोगी लगे, उनको नोधता भी गया हूँ। मैने उन्हे अपने चिन्तन का विषय भी बनाया है। डायरीनुमा उन्हे सग्रहीत भी किया है। अपने चिन्तन को क्रमबद्ध व्यवस्थित करने का प्रयास भी किया है। इसमे मेरी अपनी मौलिकता नही है। प्रभावित विचारो को जुगाली-मात्र इसे माना जा सकता है। यह सब मै अपने लिए करता रहा हूँ– स्वान्त सुखाय कहिये। स्वाध्याय के अन्तर्गत भी माना जा सकता है, विचारो को सुव्यवस्थित करने का व्यक्तिगत प्रयास भी कहा जा सकता है।

विगत पाँच वर्षों से इस दिशा मे एक परिवर्तन हुआ। 'तीर्थंकर' के सपादकीय मेरे लिए पठनीय रहे है। शायद ही कोई सपादकीय रहा हो, जो पढने से छूट गया हो। अक हाथ मे आते ही सरसरी निगाह से देखने के बाद 'सपादकीय' को आद्योपान्त पढ़ने का प्रयास रहा है– व्यस्त होने पर भी। सपादकीय लेखो को सकलित करने का प्रयत्न मैने किया। बीस वर्षों मे प्रकाशित लेखो को सकलित करने के साथ-ही-साथ उन्हे काल-क्रम मे या विषय-क्रम मे कैसे व्यवस्थित किया जाए, इसके लिए विशेष कोशिश भी मेरी रही। वे पुस्तकाकार हो सकते है– कैसे, कब, क्यो– कई प्रश्न भी आये। यह सुझाव बराबर आता रहा कि सपादकीय लेखो को अवश्य ही पुस्तक/ग्रन्थ के रूप मे एक नही, खण्डो/भागो मे प्रकाशित किया जाना चाहिये। इस पर गभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिये, ऐसे सुझाव आते रहे।

यह मै इसलिए लिख रहा हूँ कि नेमी साहित्य की परिकल्पना मेरे मन-मस्तिष्क मे सपादकीय लेखो से भी परिपुष्ट होती आई है। सपादकीय लेखो को मैने इस दृष्टि से भी लिया है कि उनमे मात्र सामयिकता/प्रासगिकता को ही प्रधानता नही दी गई है, उनमे शाश्वतता/दूरदर्शिता की भी प्रमुखता है। वे मात्र समय-सीमित नही है, उनमे समय-असीमित भी है। 'वे जैनधर्म/दर्शन/साहित्य/समाज और श्रमण सस्कृति ही क्यो, भारतीय सस्कृति के साथ मानव-सस्कृति, विश्व सस्कृति के शाश्वत मूल्यो पर आधारित है। इनमे अहिंसा का उद्घोष है, वही विश्व-शान्ति का प्रतिपादन है। इन्हे सास्कृतिक आलेख के साथ ही ऐतिहासिक दस्तावेज भी माना जा सकता है, क्योकि विगत २५ वर्षों का उनमे सिंहावलोकन है, आधुनिकता-बोध है, विज्ञान और अध्यात्म की समन्वयशील भूमिका का समर्थन है। वे चेतावनी और चुनौती के मध्य सुदृढ़ स्थिर है, वही इक्कीसवी शताब्दी की अगवानी/स्वागत के लिए तत्पर/तैयार है।' ये विचार मैने डॉ नेमीचन्द जैन के 'तीर्थंकर' के सपादकीय लेखो के चयनित अशो वाली 'चयनिका' मे जनवरी १९९७ मे व्यक्त किये थे।

'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' के मपादकीय लेखो को मै नेमी माहित्य का अभिन्न अग मानता हूँ। ये ऐमे आलेख है जिनमे-मे अनेको पुस्तको का जन्म हुआ है। 'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' मे प्रकाशित लेखमालाओ ने पुम्तकाकार प्राप्त किया है। ये पुस्तके एक साथ नही लिखी गई, लेकिन लेखक की अन्तर-धारा सतत्/अविराम प्रवाहित होती रही, धारावाहिकता वनी रही हे। अव उन्होने नेमी साहित्य मे अपना स्थान बना लिया है।

विगत वर्षो मे 'साहित्य सचयनिका' के अन्तर्गत जो वारह सेट प्रकाशित हुए है, जिनमे १०० पुस्तक-पुस्तिकाओ का समावेश हुआ है, वह भी नेमी माहित्य है। कुल मिलाकर अवलोकन किया जाए तो नेमी साहित्य लगभग आधा प्रकाशित हुआ है। वर्तमान/आधुनिक साहित्य के व्यापक सन्दर्भ/परिप्रेक्ष्य मे नेमी साहित्य चर्चा का विपय बन सकता है।

डॉ नेमीचन्द जैन साहित्य के अन्तर्गत उनके द्वारा लिखित/सपादित सामग्री जो एकत्रित/सकलित/सपादित है, उस पर समग्रता/सपूर्णता मे विचार किया जाना आवश्यक है, इसके लिए सर्वप्रथम नेमी साहित्य की उपलब्धता सुनिश्चित की जाना विचारणीय है।

मै अन्त प्रेरित हो कर प्रवृत्त हूँ। मेरी अपनी धारणा है, जो अव मान्यता भी बनती जा रही है कि आधुनिक साहित्य के सन्दर्भ मे नेमी साहित्य अपना स्थान बना सकता है, क्योकि उसकी अपनी मौलिकता/विशिष्टता उसे ऐसा स्थान दिला सकती है। यह समीक्षा का विषय तो है ही, शोध का विषय भी है।

नेमी साहित्य की परिकल्पना, अस्तित्व और स्थान पर सुधीजनो/साहित्यकारो, शोधार्थियो का ध्यान आकृष्ट करना इसलिए आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि मेरे कथन/मान्यता मे कहाँ तक गभीरता/समसामयिकता है– या यह भावुकता ही है। इसे वे ही बता सकते है, समझा सकते है।

आधुनिक साहित्य लिखने का अर्थ यह है कि नेमी साहित्य आधुनिकता-बोध से ओतप्रोत है, उसमे वर्तमान को यथार्थ रूप मे प्रस्तुत करते हुए आदर्श को नये आयाम देने का मौलिक प्रयास किया गया है। जैन साहित्य को तो निश्चित रूप से एक नई दिशा/नया आयाम दिया है। शास्त्रीयता/पडिताऊपन से हट कर/उठ कर उसे हिन्दी के आधुनिक साहित्य मे लाने का प्रयास किया है। जैन समाज/जगत् मे 'तीर्थकर' को शीर्षस्थ पत्र के रूप मे इसलिए मान्यता मिली है और उन्हे श्रेष्ठ सपादक माना जाता है। उन्हे इसके लिए 'पत्र-महर्षि' की उपाधि से भी सम्मानित किया गया है – इतर भाषाओ के प्रबुद्ध साहित्यकारो ने भी उनकी लेखनी को मान्यता दी है।

अब समय का तकाजा है कि इस विषय पर गभीरता से विचार किया जाए और नेमी साहित्य के विषय मे विचार-विमर्श किया जाए। □

डॉ नेमीचन्द जैन

आंशिक आकलन

- ☐ डॉ नेमीचन्द जैन व्यक्तित्व और कृतित्व
- ☐ डॉ नेमीचन्द जैन की सारस्वत साधना एक झलक
- ☐ डॉ नेमीचन्द जैन के साहित्य-सिन्धु मे-से कुछ अमृत बिन्दु

से सबन्धित समीक्षात्मक लेखन मे उनके साहित्य का जो प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष आकलन हुआ है, उसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। -स

व्यक्तित्व और कृतित्व का एक अनूठा आईना

'डॉ नेमीचन्द जैन व्यक्तित्व और कृतित्व' का प्रकाशन हिन्दी-जगत् की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। वह इस मायने मे कि इस पुस्तक के माध्यम से देश की युवा पीढ़ी को एक महामानव को समझने/जानने का दुर्लभ अवसर प्राप्त होता है। जो साधारण होते हुए भी असाधारण है, जो ऊपरी स्तर पर तो गृहस्थ/सासारिक लगते/दीखते है, किन्तु वस्तुत ऐसे नही है। सूक्ष्मत. वे ससारातीत है। उन्होने मिथिला नरेश जनक जैसा विदेहत्व ससिद्ध कर दिखाया है और आज तक के जीवन को एक सारस्वत साधक के रूप मे द्युतिमत वनाया है। उनकी साधना अभग/अखड गति से चल रही है। ऐसे आलोकधर्मी मानव के व्यक्तित्व और कृतित्व पर ३४ लेखको ने सम्यक् प्रकाश प्रक्षिप्त किया है। ये वे लेखक है जो निर्मल प्रज्ञा के धनी है। जिन्होने डॉ नेमीचन्द जैन को अत्यत नजदीक से देखा है/परखा है। उन्हे निरपेक्ष भाव से/पूर्वाग्रहो से मुक्त होकर समझने का प्रयास किया है। यही कारण है कि समीक्ष्य पुस्तक एक ऐसा आईना वन गयी है, जिसे किसी भी दिशा, किसी भी कोण से देखा जाये, उसमे केवल और केवल सत्य के ही दर्शन होगे। यह सत्य मधुर हो सकता है/कटु भी/सौम्य भी/तिक्त और कसैला भी। इतना सब कुछ होने के वावजूद इसमे एक ऐसी समग्रता की उपस्थिति का एहसास होता है, जो इसकी विशिष्टता का पर्याय है।

प्रस्तुत पुस्तक मे श्रीमती राजकुमारी वेगानी, श्रीमती कमलाबाई जैन, श्रीमती रत्नप्रभा जैन, श्री विजयकुमार भारतीय, डॉ सुरेन्द्रकुमार जैन, श्रीमती विजया जैन एव डॉ (श्रीमती) सध्या जैन के आलेखो मे एक ऐसी निजता मुखरित हुई है, जिसके कारण पुस्तक श्रद्धा-सुमनो की गधवाह से प्राणवत हो उठी है, जो प्रत्येक प्रबुद्ध पाठक को मुग्ध कर देती है। इनमे कही भी अतिरजन नही है। आपको लिजलिजी भावुकता का विस्फोट ढूँढे भी नही मिलेगा। जो मिलेगा, वह रजत सीप का सच्चा मोती होगा, जिसे किसी भी असाधारण व्यक्ति के जीवन-समुद्र को खँगोलने पर प्राप्त किया जा सकता है। ऊपर उल्लेखित सभी नाम डॉ नेमीचन्द जैन के पारिवारिक सदस्य है– इनमे उनकी वहिने है, वहू है, पुत्री है, और अनुज है। इन सभी ने निरपेक्ष भाव से, सत्यनिष्ठ दृष्टि से और यथार्थपरक भगिमा से डॉ जैन के वहुआयामी व्यक्तित्व को उजागर किया है।

पारिवारिक परिवृत्त से जुडे सदस्यो के अलावा सर्वश्री सुरेश सरल, कन्हैयालाल सेठिया, डॉ जयकुमार जलज, डॉ सरोजकुमार, डॉ अनिलकुमार जैन, प्रा रावसाहेब पाटिल, जे के सघवी, सूर्यकात नागर, मानवमुनि, माँगीलाल कोठारी, डॉ ब्रजविहारी निगम, डॉ राममूर्ति त्रिपाठी, लक्ष्मीचन्द जैन, डॉ विलास गुप्ते, डॉ प्रकाशचन्द्र जैन, मन्मथ पाटनी, हस्तीमल झेलावत, ईश्वरचन्द्र बडजात्या, डॉ चिरजीलाल बगडा, दुलीचद जैन, विश्वनाथ आचार्य, डॉ मदन मोहन बजाज, राकेश पाडे, डॉ शशिकात भट्ट, श्रीराम आगार एव रत्नेश कुसुमाकर जैसे लेखको की लवी तालिका है जिन्होने डॉ नेमीचन्द जैन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अपनी-अपनी अनुभूतियों को एक विराट् फलक पर उकेरा है। इन सब लेखको की सस्मरणात्मक अभिव्यक्तियो के आकाश-तले एक ऐसी इन्द्रधनुषी आभा का प्रस्फुटन हुआ है, जो पाठको को उस समय तक बाँधे रखती है जब तक वह इस पुस्तक को आद्यान्त पढ नही लेता।

प्रायः सभी लेखकों ने, जिनमे पत्रकार, साहित्यकार, प्राध्यापक, शिक्षक, साहित्यानुरागी, समाजसेवी, व्यवसायी, शास अधिकारी, मुद्रा-विज्ञानवेत्ता, विचारक-चिन्तक शामिल है। डॉ नेमीचन्द के व्यक्तित्व पर अपने मौलिक उद्‌गारो के बादलो को बरसाया है। उनकी यह बरसात अनोखी है। अनूठी है। इसमे कही-कही बिजली की गडगडाहट है। जिसमे कही भय नही उत्पन्न होता। सिहरन अवश्य महसूस होती है।

पुस्तक मे डॉ नेमीचन्द जैन के कृतित्व की बहुचर्चित/बहुपठित/सरल/ तरल/लय अनुलयवती नवीनतम रचनाओ के महत्त्वपूर्ण अश भी जोडे गए है, जिससे यह समीक्ष्य कृति अपने पूरे कलेवर मे अनुपमता के सिंहासन पर आसीन है। यही इसकी श्रेष्ठता का प्रमाण है। इस कृति के सपादन मे श्री प्रेमचन्द जैन की सपादन-कला की प्रस्तुति सराहनीय है। उन्होने एक ऐसे सतुलन को साधित किया है जिसके कारण पुस्तक के चरित्र-नायक डॉ नेमीचन्द जैन की सारस्वत साधना के प्रत्येक स्तर से पाठक जहाँ रू-ब-रू होता है, वही उनके जीवन के हर पहलू से – बचपन से लेकर उनके अब तक के यात्रा-पडाव से – वह अपना ज्ञान विवर्धन करता है। इसमे शक नही कि हिन्दी-जगत् मे प्रस्तुत कृति लोकप्रिय और समादृत होगी। यह सही है कि पुस्तक व्यक्ति केद्रित है, लेकिन यह व्यक्ति साहित्य/धर्म/दर्शन/अध्यात्म के पुनीत क्षेत्र का एक जाज्वल्यमान नक्षत्र है, एक असाधारण कोटि का व्यक्तित्व है, जो इक्कीसवी सदी मे एक ऐसे कुशल कुभकार की भूमिका निभा रहा है जो एक नये मनुज की सृष्टि करने को तत्पर है/सकल्पशील है। अपने गुण-समुच्चय की मिट्टी से वह एक अभिनव सर्जना कर रहा है – जो इस देश ही नही, समग्र ससार के लिए एक उपलब्धि होगी– यह तय है।

–रत्नेश कुसुमाकर

(दैनिक भास्कर, इन्दौर, २ जुलाई '९९, तीर्थंकर, जुलाई '९९)

डॉ. नेमीचन्द जैन व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचय

वर्ष १९८० मे जब मैने जैन विद्याओ के अध्ययन के क्षेत्र मे कदम रखा था तब ही स्तरीय पत्र-पत्रिकाओ की खोज मे 'तीर्थंकर' से साक्षात्कार हुआ। मै नही जानता था कि डॉ नेमीचन्द जैन कौन है? किन्तु 'तीर्थंकर' के अध्ययन से यह तो स्पष्ट हो ही गया था कि इस पत्रिका का सम्पादक बहुआयामी व्यक्तित्व का धनी एक कुशल भाषाविद् है। 'तीर्थंकर' जितनी साहित्यिक है उतनी ही सामाजिक। भाषा की दृष्टि मे तो वह इतनी सम्पन्न है कि यदि किसी शब्द का प्रयोग एव उसका शुद्ध पाठ देखना है तो 'तीर्थंकर' को देखा जा सकता है। वर्षों तक मै 'तीर्थंकर' का नियमित पाठक रहा एव आज भी हूँ, किन्तु जैन जैविकी तथा जैन भौतिकी विशेषाक एव जैन भूगोल अक आदि पढ़ने के बाद तो मै चमत्कृत हो उठा। ये अक भाषाविद् द्वारा सम्पादित होते हुए भी हर पग पर एक कुशल वैज्ञानिक के कृतित्व प्रतीत होते है। 'तीर्थंकर' के अब तक प्रकाशित ४०-५० विशेषाक अपने-अपने विषय के सन्दर्भ ग्रन्थ है।

ऐसी पत्रिका के सम्पादक डॉ नेमीचन्द जैन स्वभाव से सरल, विचारो मे क्रान्तिकारी तथा स्पष्टवादी, धुन के पक्के एव समर्पित साधक है। 'तीर्थंकर' उनके जीवन का मिशन है, किन्तु विगत लगभग १० वर्षों से आपने अपने मिशन को एक नया मोड देते हुए शाकाहार के लिए समर्पित किया है। 'शाकाहार-क्रान्ति' शाकाहार के बारे मे आज भी सर्वाधिक लोकप्रिय, प्रामाणिक एव सर्वाधिक सूचना-सम्पन्न पत्रिका है। आरम्भ मे द्विमासिक रूप से प्रारम्भ हुई यह पत्रिका सम्प्रति लगभग १० वर्षों से नियमित प्रकाशित हो रही है। शाकाहार एक समग्र जीवन-पद्धति है। जिस पर किये जाने वाला अनवरत चिन्तन डॉ जैन के इस अवधि मे प्रकाशित 'तीर्थंकर' की सम्पादकीय टिप्पणियो मे भी स्पष्टत परिलक्षित होता है। १९९४ मे 'तीर्थंकर' मे प्रकाशित अहिंसा के अर्थशास्त्र पर लिखी लेखमाला इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

श्रेष्ठ पत्रिकाओ का नियमित प्रकाशन अत्यन्त श्रमसाध्य, कष्टसाध्य एव पीडादायक कार्य है, लेकिन इसके बावजूद भी डॉ जैन ने लगभग १०० छोटी-छोटी पुस्तके जैन समाज एव हिन्दी साहित्य को प्रदान की। पत्रिकाओ के सम्पादन की एक लम्बी यात्रा मे 'वीणा', 'समय' तथा अंग्रेजी 'तीर्थंकर' भी उनके पडाव रहे। देश के विभिन्न अचलो मे विविध साहित्यिक एव शाकाहार-प्रवृत्तियो के लिए अनेको पुरस्कार से सम्मानित डॉ नेमीचन्द जैन का जन्म ३ दिसम्बर, १९२७ को मध्यप्रदेश के बडनगर कस्बे मे हुआ था। १९५२ मे हिन्दी तथा १८५३ मे अर्थशास्त्र विषय से एम ए परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ ही आपने 'भीली के भाषाशास्त्रीय अध्ययन' पर विक्रम विश्वविद्यालय से पी-एच डी की उपाधि प्राप्त की। म प्र शासन की महाविद्यालयीन शिक्षा-सेवा मे रहते हुए इन्दौर, गुना, बडवानी, नीमच, जावरा,

देवास मे हिन्दी विपय के प्राध्यापक एव विभागाध्यक्ष के रूप मे कार्य किया। यदि हम उनके ५० वर्षो के साहित्यिक अवदान पर दृष्टिपात करते है तो हम पाते है कि जीवन के प्रथम २० वर्प अध्ययन, तदुपरान्त २० वर्प हिन्दी साहित्य एव सस्कृति की सेवा, अगले २० वर्ष जैन धर्म, दर्शन, साहित्य, सस्कृति और समाज को समर्पित किये, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पष्ठिपूर्ति के उपरान्त उन्होने अपने जीवन को पूर्णत शाकाहार एव आचार-शुद्धि के अभियान को समर्पित कर दिया है। ऐसे विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न, बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, महान् साहित्यकार की सेवाओ का समीचीन मूल्याकन नही हो सका है।

किसी भी व्यक्ति को वही व्यक्ति ठीक से समझ सकता है जो अधिकाधिक समय उसके सम्पर्क मे रहे। उनकी साहित्यिक, सामाजिक यात्रा मे अहर्निश सहभागी होने के कारण प्रेमचन्दजी को उन्हे बहुत नजदीक से देखने का अवसर मिला। उनके सम्पादकत्व मे प्रकाशित २ कृतियाँ हमारे सम्मुख है। 'डॉ नेमीचन्द जैन साहित्य – एक अवलोकन' के अन्तर्गत १८ विन्दुओ के माध्यम से अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ उनके द्वारा सृजित पुस्तको, सपादकीय आलेखो, विशेपाक, पत्राचार-पाठ्यक्रम हेतु सृजित इकाइयो का विवेचन किया गया है। बातचीत, कविता, कहानी, समीक्षाएँ, यात्रा-विवरणो, पत्रो एव दैनिक डायरी के शीर्षको के अन्तर्गत उनके जीवन के विभिन्न पहलुओ को स्पर्श करने का आपने सफल प्रयास किया है। एक भेट मे श्री प्रेमचन्द जैन ने बताया कि इस ४०० पृष्ठीय पुस्तक मे उनके द्वारा सृजित विशाल सम्पदा के १/५ भाग का ही अवलोकन हो पाया है।

द्वितीय कृति 'डॉ नेमीचन्द जैन व्यक्तित्व और कृतित्व' जैन समाज एव हिन्दी साहित्य के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। वस्तुत यह कृति अलग-अलग दृष्टियो से डॉ नेमीचन्दजी को जानने और समझने के लिए अत्यन्त प्रासगिक है। इसमे डॉ नेमीचन्दजी पर जिन ३४ लेखको के आलेख प्रकाशित हुए है उनमे उनके सगे-सबन्धी तो है ही, सर्वश्री सुरेश सरल, कन्हैयालालजी सेठिया, डॉ जयकुमार जलज, डॉ सरोजकुमार, डॉ अनिलकुमार जैन, डॉ जे के सघवी जैसे प्रतिष्ठित हस्ताक्षर भी सम्मिलित है। पुस्तक के उत्तरार्द्ध मे डॉ नेमीचन्द जैन के कृतित्व के बहुचर्चित अशो को समाहित कर श्री प्रेमचन्द जैन ने अपने सम्पादकीय कौशल का सक्षम प्रयोग किया है।

मुझे विश्वास है कि जैन धर्म, दर्शन एव साहित्य ही नही, अपितु पत्रकारिता और हिन्दी भाषा के प्रति अभिरुचि रखने वाला प्रत्येक पाठक इन दो कृतियो को अवश्य ही पढ़ेगा। पुस्तक प्रत्येक पुस्तकालय हेतु अपरिहार्य है। ४०० पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य मात्र १०० ०० रुपये रखा जाना अत्यन्त उचित है। मुद्रण भी आकर्षक एव निर्दोष है।

–डॉ अनुपम जैन, मानद् सपादक

(अर्हत् वचन, इन्दौर, जुलाई, '९९)

आत्मीयता की अनुपम सौगात

डॉ नेमीचन्द जैन अब व्यक्ति न रह कर स्वय मे एक सस्था हो गये है। डॉ रामभूर्ति त्रिपाठी के अनुसार डॉ जैन सारस्वत सेवा के अनेक आयामो के अनावरणकर्ता है। डॉ विलास गुप्ते उनके कृतित्व को 'साहित्य' से 'वाङ्मय' तक विस्तारित मानते है। किसी ने उन्हे हिन्दी साहित्य का सशक्त हस्ताक्षर (डॉ शशिकान्त भट्ट) निरूपित किया है तो डॉ मदन मोहन बजाज के कथनानुसार वे 'शाकाहार के मसीहा अहिंसा की डगर पर चलते फकीर' है। श्री रत्नेश कुसमाकर की दृष्टि मे वे 'आध्यात्मिक पत्रकारिता के सुमेरु' और डॉ जयकुमार जलज के शब्दो मे 'जैन पत्रकारिता के सिरमौर' है। डॉ सरोजकुमार ने उन्हे 'शास्त्रीय पृष्ठभूमि मे सुगम सगीत' माना है और श्रीमती कमलाबाई जैन उन्हे 'फूल की पँखुडी पर ओस की बूंद' निरूपित करती है। किसी ने सर्जक, विशाल साहित्य के प्रणेता, मौलिक चिन्तक, वाग्मी/व्याख्याता/ वक्ता के रूप मे देखा है यानी एक व्यक्ति मे अनेक गुण सिमट कर स्मृति फलक पर जिस व्यक्तित्व को उभारते है उसका नाम है डॉ नेमीचन्द जैन। कहीं नजर न लग जाए इसलिए काजल की एक बिन्दी भी है- 'बहुत खराब है डॉ साब' (सुरेश सरल)।

मैने डॉ जैन को नसियावासी अध्येता, अध्यापक प्राध्यापक, पत्रकार, 'वीणा'-सपादक और आत्मीय 'बन्धु' के रूप मे बहुत निकट से देखा-परखा है एव उनके अनुसधान-काल से लगा कर सजग भाषावैज्ञानिक मुद्रण-सपादन-कला विशेषज्ञ के रूप मे उनका लोहा माना है। इन सपूर्ण सफलताओ का रहस्य है– सतत् समर्पित साधना। थोडे मे कहा जाए तो डॉ नेमीचन्द जैन की विकास-यात्रा, गृहस्थ से लगा कर सत श्रेणी तक की विकास-यात्रा है। उनके अनुज श्री प्रेमचन्द जैन ने बडी लगन और निष्ठा के साथ, अपने अग्रज के प्रति अपनी श्रद्धा-भावना को जो स्वरूप दिया है, यह ग्रथ अभिनन्दन-ग्रन्थो की कतार मे, आत्मीयता की अनुपम सौगात बन गया है।

–'निशक' (डॉ श्यामसुन्दर व्यास), सपादक

(वीणा इन्दौर अगस्त, १९९९)

प्रेरणास्पद/पठनीय

प्राणिमित्र शाकाहार-प्रिय, सपादक-शिरोमणि, पत्र-महर्षि आदि उपाधियो से अलकृत साहित्यकार, पत्रकार, समीक्षक, प्रकाशक, भाषा-विज्ञानी, चिन्तक व दार्शनिक डॉ नेमीचन्द जैन के विराट् व्यक्तित्व को ४०० पृष्ठो की परिधि मे समेट पाना कोई सरल कार्य नही है, पर इस पुस्तक मे सकलित लेखो मे उनके निकट सपर्क मे आए मनीषियो ने अपने-अपने दृष्टिकोण से उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के विभिन्न पहलू और आयतन

पहलुओ पर सफल प्रकाश तो डाला ही है। पुस्तक के सपादक श्री प्रेमचन्द जैन तो डॉ साहब के अनुज ही है, जो प्रारभ मे ही उनके निकट सान्निध्य मे रहे है। सत्य, अहिंसा व शाकाहार-प्रचार को समर्पित डॉ नेमीचन्द सादगी व सरलता की प्रतिमूर्ति है। वयोवृद्ध तो उन्हे कहना उचित नही लगता, क्योकि इस ७२ वर्ष की वय मे भी वे युवकोचित उत्साह के साथ निरन्तर देश के एक अचल मे दूसरे अचल की यात्रा मे सलीन रहते है तथा अभी भी अथक श्रम करने की क्षमता रखते है। हाँ, ज्ञान-वृद्ध तो वे है ही जिसका लाभ उनके लेखो व सपादकीय से 'तीर्थकर' के पाठको को भी मिलता रहता है। यत्र-तत्र 'समयसार' की कालजयी गाथाओ के सुरुचिपूर्ण पद्यानुवाद दिये जाने से पुस्तक की शोभा व उपयोगिता मे उल्लेखनीय अभिवृद्धि भी की गई है। पुस्तक प्रेरणास्पद व पठनीय है।

—अजित प्रसाद जैन, सपादक

(शोधादर्श-३०, लखनऊ, नवम्बर १९९९)

एक महान् साहित्यकार का परोक्ष परिचय

प्रस्तुत पुस्तक मे डॉ नेमीचन्दजी जैन के बहुआयामी व्यक्तित्व को उजागर करते ३१ साहित्यकारो, समाजसेवियो तथा परिजनो द्वारा लिखित लेखो के साथ ही डॉ सा के आत्मकथनो से पुस्तक को सजाया/सँवारा गया है। पुस्तक को पढ कर साहित्य-प्रेमी एक महान् साहित्यकार, चिन्तक, अन्वेषक और अपने आप मे चलती-फिरती सस्था से परोक्ष रूप से परिचित हो सकते है। प्रत्यक्ष मिलने पर तो उनसे बहुत कुछ सीखने को मिल सकता है।

—जे के सघवी, सपादक

(शाश्वत धर्म, थाने (महाराष्ट्र) जुलाई, '९९)

व्यक्तित्व और कृतित्व को उजागर करने वाला ग्रन्थ

डॉ नेमीचन्दजी एक सफल सपादक, पत्रकार, विचारक एव अहिंसा-प्रेमी के रूप मे प्रसिद्ध है। उक्त क्षेत्र मे उनका समर्पित जीवन आकर्षण का केन्द्र है। उनके विचारो एव उनके साहित्य ने सदाचारी जीवन का सन्देश दिया है। उन्होने शिथिलाचार और विकृत विचारो के विरुद्ध सशक्त विचार प्रस्तुत किये है। वर्तमान मे बढती हुई हिंसा को रोकने के लिए जिहाद छेडा है। उनका क्रान्तिवाद कुछ सोचने को प्रेरित करता है। कुछ मनीषियो ने उनके प्रति अपने उद्गार प्रकट किये है, वे उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को उजागर करते है।

—प्रकाश हितैषी शास्त्री, सपादक

(सन्मति-सन्देश (मासिक), दिल्ली, अक्टूबर '९९)

वहुआयामी व्यक्तित्व की सशक्त/सफल अभिव्यक्ति

भावपूर्ण चिन्तन मे खोये, पैनी दृष्टि वाले विराट् व्यक्तित्व के व्यक्ति का आवरण चित्र सहज ही पुस्तक के शीर्षक को सार्थक करता है। अनेक प्रतिष्ठित लेखको ने उनके प्रति शुभ उद्गार व्यक्त किये है, उनके व्यक्तित्व को अभिव्यक्त किया है। वे सभी वधाई के पात्र है कि उन्होने उन्हे निकट से देखा है, परखा है, फिर अपने विचार व्यक्त किये है।

डॉ नेमीचन्द जैन के महान् कृतित्व को मैने भी खुली किताव की तरह लम्वे अर्से तक देखा है, स्वय अनुभव किया है, मन से चाहा है। प्रशसा की है, भाव से मात्र शब्द मे ही नही।

वे परिश्रमी, धैर्यवान्, विद्वान्, सुलझे लेखक, सपादक और सयोजक है। वे वैचारिक अहिंसक क्रान्ति के मसीहा है, जिनमे प्रेरणा (मोटीवेशन) का असीम सागर है, न खत्म होने वाला ईधन है। उनमे सैनिक की भाँति मैदान मे भी कार्य करने की अद्भुत क्षमता है। अग्रेजी मे He is crusador for the cause of Ahimsa, non-violence, compassion, animal protection and vegetarianism

उनके मस्तिष्क मे एकसाथ कार्य करने के जितने विकल्प है, वे अपने मे अपूर्व है। अहिंसा की व्यापक प्रतिष्ठा, व्यावहारिक स्तर पर ले जाने की, व्यवहार मे लाने की जो तडप है, वह वेमिसाल है। उनका चिन्तन, सपादन-कार्य सभी कुछ अहर्निश उसी को समर्पित है। कहाँ मिलेगा ऐसा व्यक्ति जिसकी हर धडकन मे जीव-दया, अहिंसा साँस ले रही है, धडक रही है।

कैसे व्यवस्थित कर लेते है डॉ नेमीचन्द जैन लेखन, सपादन, पत्र-व्यवहार, आयोजन, सयोजन, साक्षात्कार, प्रेस-सचालन, पत्रिकाओ-पुस्तको के प्रकाशन की व्यवस्था, दूरस्थ देश-भ्रमण का लगातार कार्यक्रम, वह भी वढ़ती आयु मे भी सव कुछ अपूर्व, जादुई-सा लगता है।

कितना व्यापक/विशाल उनका लेखन है! कितनी गजव की निडर, सशक्त, सार्थक, सटीक, तथ्यपरक, अन्वेषणपूर्ण अभिव्यक्ति है लेखो मे, 'तीर्थंकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' मे। कर्मठता मे वे व्यक्ति व सस्था ही नही, सस्थाओ के महासघ है निडर स्वाभिमानी एव नि स्वार्थी। व्यवहार मे खरे, सहृदय, स्नेही। उनके विराट् कृतित्व से उनका व्यक्तित्व विराटतर है।

अभी दूसरो ने ही उन पर लिखा है। 'आत्मकथ्य' भी वे करे, उसका मजा ही और है। उनके स्वलिखित अनुभव उन्हे तो आनन्दित करेंगे ही पाठको के लिए भी एक सरस कृति बनेगी।

सब मिला कर पुस्तक वहुत पसन्द आई। इसमे उनके वहुआयामी जीवन के

सशक्त/सफल अभिव्यक्ति लेखो के माध्यम मे हुई है। प्रस्तुत पुस्तक के निमित्त ये है कम्पित हाथ से लिखे गये कतिपय उद्गार/विचार।

—सतीशकुमार जैन, नई दिल्ली

अनुपम/मर्मस्पर्शी

'डॉ नेमीचन्द जैन व्यक्तित्व और कृतित्व' के समस्त ४०० पृष्ठो पर बारीकी से ध्यान दे सका हूँ। ३१ विद्वानो ने अपनी सतुलित लेखनी मे पुस्तक के १३० पृष्ठ समृद्ध किये है, जिन पर डॉ साब के कार्यो और परिचयो की धूप बिखरी हुई है। कुछ ऐसे गोपन-सूत्र भी उद्घाटित किये गये है, जो अनेक लोगो की पकड मे बाहर थे। लेख बार-बार पठनीय है।

पृष्ठ १४१ से १६२ तक दी गई २९ महानुभावो की सम्मतियाँ/समीक्षाएं भी उतना ही प्रकाश उत्सर्जित कर सकी है, जितना उक्त १३० पृष्ठो ने किया है। इनका भी 'रग' और 'स्वाद' निराला है।

सभी ६० लेखको ने भारी सोच-विचार के बाद अपने शब्द लिखे है, बडी बात यह है कि एक भी शब्द ऐसा न मिला जो दिल से न लिखा गया हो। जिन्होने लिखा है वे समस्त जन लेखन के वैभव ओर साफल्य मे अभिमडित है।

साहित्य-सार को 'समयसार' की तर्ज पर यहाँ स्वीकार करे, तो पृ १६३-४०० तक डॉ साब के प्रकीर्ण शब्द-समूह आधुनिक समयसार के द्योतक तो है ही, उनके विषय मे पृथक् से क्या लिखूँ?

—सुरेश सरल, जबलपुर

पुस्तक की सार्थकता

यह एक ऐसी पुस्तक है, जिसके पढने से सहज ही भैया नेमीचन्दजी के जीवन के दर्शन होने लगते है। वे ज्ञान-रूपी गगा मे इतने वर्षो से स्नान करते आ रहे है और अब वे उस मोड पर आ रहे है, जहाँ हम सबको भी आना ही है। उनका लेखन-कार्य इतना गभीर और व्यापक है, जिसे आसानी से पढना/समझना हँसी-खेल नही है। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ' की उक्ति अपना कर ही उन्हे समझा जा सकता है।

इस पुस्तक मे अपने भाई का व्यक्तित्व और कृतित्व इतने बडे पैमाने पर उजागर हुआ है, जिसे निकटता और घनिष्ठता के कारण देखना/समझना सभव नही था। इस पुस्तक की सार्थकता इसी मे है कि हम स्वजन/परिजन सभी उनके विचारो को आत्मीयतापूर्वक अपना कर उनके मिशन को आगे बढाने मे सहयोगी बने/बनाएँ।

—**रत्नप्रभा जैन**, इन्दौर/श्रीमहावीरजी

सुन्दर/प्रेरणादायक

बन्धुवर 'नेमीचन्द जैन : व्यक्तित्व और कृतित्व' पुस्तक बहुत सुन्दर और अत्यन्त प्रेरणादायक है। इसमें बड़ी सारगर्भित सामग्री संग्रहीत की गई है। इसके अध्ययन से शिक्षित पाठकों को बड़ा लाभ होगा।

—यशपाल जैन, संपादक, 'जीवन साहित्य' नई दिल्ली

बहुत खुशी

'व्यक्तित्व और कृतित्व' ग्रन्थ पढ़कर बहुत खुशी हुई। भाई प्रेमचन्दजी की धुन लगन है, यह वर्ना डॉ. नेमीचन्दजी कहाँ हाथ आने वाले थे?

—डॉ. जयकुमार जलज, रतलाम

बहुत अच्छी

पुस्तक बहुत अच्छी बन पड़ी है। कम समय में ही बनी यह इतनी बड़ी दूसरी पुस्तक। मैंने लगभग सभी लेख पढ़े हैं। लेख अच्छे हैं।

—डॉ. अनिलकुमार जैन, साबरमती-अहमदाबाद

धर्म-ग्रन्थ

पूज्य भाई साहब के व्यक्तित्व और कृतित्व का धर्म-ग्रंथ प्राप्त कर अति प्रसन्न हूँ। मुखपृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक पढ़ गया हूँ। इसका संयोजन/संपादन बहुत बढ़िया हुआ है। लेकिन मैं इसे अभी प्रथम पुष्प मानता हूँ। यह मात्र प्रारंभिक है, क्योंकि इसमें बहुत-थोड़ा आ गया है, थोड़ा-बहुत रह गया है। अभी काफी गुँजाइश है।

—लक्ष्मीचन्द जैन, छोटी कसरावद

मेरा सपना साकार

'व्यक्तित्व और कृतित्व' पुस्तक को बहुत रुचि के साथ शब्द-शब्द पढ़ना शुरू किया। पढ़ने में इतना मगन हो गया कि दूसरे कार्य भूल-सा गया। जितना भी पढ़ा, उससे लाभान्वित हुआ और डॉक्टर साहब के प्रति श्रद्धावनत हुआ हूँ। यह मेरे मन का कार्य हुआ है। उनके व्यक्तित्व/कृतित्व/जीवनी के बारे में पहले से एक सपना मेरे मन में भी था, लेकिन परिस्थितिवश अन्य सपनों की तरह वह एक सपना ही बना रहा। इस पुस्तक ने उस सपने को साकार किया है।

—दिलीप धींग, [illegible]

यह पुस्तक : अब सर्वोपरि

पढ़ने के लिए जो छपी हुई पुस्तकें मेरे सामने हैं उनमें अब यह पुस्तक सर्वोपरि हो गयी है।

—[illegible]

सारस्वत साधना की मार्मिक विवेचना

प्रस्तुत पुस्तक के आवरण पर डॉ नेमीचन्द जैन का चित्र वार्ता रिकॉर्ड करते हुए– यह उनकी सतत् यात्रा का दर्शक है। 'तीर्थकर', 'शाकाहार-क्रान्ति' और न जाने किन-किन प्रसगो मे विद्वानो, सतो, समाजसेवियो, राजनेताओ और आम आदमी से चर्चा/बातचीत ही उनकी मुहिम हे। डॉ सा के उस चित्र मे न केवल उनका मिशन बल्कि समूचा जीवन रू-ब-रू होकर बातचीत करता हे।

आवरण-पृष्ठ २ पर उनके नाम एक गद्यगीत है, जो बची-खुची कसर भी पूरी कर देता है। इसमे उनका सम्पूर्ण जीवन-दर्शन, चिन्तन, जीवन-शेली ही नही दिखती, बल्कि वे प्रकृति से सतत् जुडे रहते है। इस ऊर्जावान् व्यक्तित्व को प्रकृति से सतत् अखूट ऊर्जा प्राप्त होती है।

आरभ मे 'अपनी बात' के अन्तर्गत लेखक ने पुस्तक के नामकरण के आधार की चर्चा करते हुए स्पष्ट किया है कि इसकी प्रेरणा उन्होने प जवाहरलाल नेहरू की विशाल कृति 'विश्व इतिहास की एक झलक' से ली है। उन्होने यही अपनी कृति की विषय-वस्तु का सकेत देते हुए लिखा है कि इसमे उन्होने डॉ नेमीचन्द जैन के पाँच दशको की सारस्वत साधना पर सम्यक् प्रकाश डाला है। यहाँ साधना के पूर्व प्रयुक्त 'सारस्वत' शब्द अपना विशिष्ट अर्थ रखता है। वे ऐसे-वैसे साहित्यकार नही, सरस्वती के वरदपुत्र है, जो पचास वर्षों से सतत् माँ भारती की सेवा मे रत है और यह कृति भी कोई सामान्य समीक्षा-मात्र नही है, बल्कि डॉ सा की विराट् साधना की एक सम्यक् झलक है। यहाँ 'झलक' और 'सम्यक्' शब्द देखने मे भले बहुत छोटे हो, पर उनका अपना विशिष्ट अर्थ है। इस कृति मे कुसुमाकरजी ने डॉ सा की अर्द्धशती की साधना की एक झलक मात्र देने का ही उपक्रम किया है, पर वह 'सम्यक्' है। उसमे कही भी किसी प्रकार की कोताही नही की है।

'कुसुमाजलि' के अन्तर्गत पुस्तक के सपादक ने यह सकेत दिया है कि लेखक और उनके सम्मिलित प्रयास ने किस तरह शीघ्र ही इस पुस्तक को आकृति प्रदान की। डॉ सा के साहित्य पर समीक्षात्मक पुस्तक के रूप मे यह सर्वप्रथम है। पुस्तक की विषय-वस्तु को लेखक ने दस शीर्षको मे विभाजित किया है १ वे भीड मे आसानी से पहचाने जा सकते है, २ कविता-सृजन प्रथम चरण, ३ सप्त सिन्धुओ का सन्तरण, ४ आध्यात्मिक पत्रकारिता के सुमेरु, ५ कुशल शब्द-शिल्पी/पारखी, ६ 'बातचीत' को नया आयाम, ७ वर्तमान के परिप्रेक्ष्य मे महावीर, ८ अर्द्ध शताब्दी के भारतीय चिन्तन-धारा के सहयात्री, ९ प्रश्न मेरे उत्तर उनके, १० जी हाँ, वे मेरे अग्रज है।

डॉ सा की सारस्वत साधना का शुभारभ कविता मे है। उनकी कविता सादगी पसद है अर्थात् वह अलकारो के वस्त्राभूषण नही पहनती, न उसमे अभिव्यक्ति के आभिजात्य की ठसक है और न ही उसे नखराली कहा जा सकता है। लेखक जो स्वय कवि भी है, के अनुसार उनकी कविताओ मे जहाँ जैन अध्यात्म मुखरित है वही उनमे युग-काल और इतिहास का स्पदन है, लोक जीवन की समीक्षात्मक बिम्बावली भी सन्निमग्न है। उनमे प्रयोगधर्मिता की आण्विक ऊर्जा भी है। उनका एक सकलन 'रचिताएँ' नाम से प्रकाशित हुआ है, जिसमे ४५ कविताएँ सग्रहीत है।

लेखक के अनुसार डॉ सा ने धर्म, अध्यात्म, सस्कृति/दर्शन, परिवेश/पर्यावरण से छनने से मूल मनुष्य को छान कर उसे शुद्ध/खालिस स्वरूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वे शब्द-शिल्पी के साथ भाषा-विज्ञानी भी है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि उनकी भाषा एक नई रवानगी देती है। उन्होने देशज बोलियो के शब्द समुच्चय से हिन्दी को शक्तिशाली बनाया है। 'प्रश्न मेरे उत्तर उनके' के अन्तर्गत डॉ सा से पूछे व्यक्तिगत/चिन्तनपरक प्रश्नो के उत्तर से लेखक ने उनके सोच और जीवन-लक्ष्य को सामने लाकर उनके व्यक्तित्व को उजागर किया है। उदाहरणार्थ, डॉ सा 'वीणा' से 'तीर्थंकर' तक की यात्रा का हेतु बताते हुए कहते है 'मै किसी प्रकार का अनावश्यक हस्तक्षेप सहन नही करता।' 'जी हाँ, वे मेरे अग्रज है' शीर्षक लेख मे कुसुमाकरजी ने पाँच दशको मे डॉ सा से प्राप्त अपने सामीप्य का इजहार किया है।

आवरण-पृष्ठ ३ पर कविवर रत्नेशजी कुसुमाकर की ये पक्तियाँ डॉ नेमीचन्दजी पर अग्रसर है 'मै भूल चला दु ख-दैन्य सभी,/'जीवन-चक्रनेमी' के पथ पर/रोक सके ये क्रूर कभी?/आज निराशा आश्रयहीना/पतझर की गोदी मे सोयी/मधुर वातायन से झाँके/आमत्रण देता है कोई।'

इस मिला कर रत्नेशजी कुसुमाकर-जैसे वरिष्ठ साहित्यकार ने डॉ नेमीचन्दजी- जैसे श्रेष्ठ साहित्यकार की सारस्वत साधना की विश्लेषण-सश्लेषणात्मक पर्यालोचना कर जो मार्मिक विवेचना की है, वह सक्षिप्त होने पर जिज्ञासुओ, पाठकजनो और शोधकर्ताओ के लिए दिशाबोधक भी है।

—डॉ प्रकाशचन्द्र जैन, इन्दौर

सुन्दर चर्चा से पूर्ण

माननीय रत्नेशजी कुसुमाकर के शब्द-बोध श्रद्धेय डॉ साब के कृतित्व और व्यक्तित्व की सुन्दर चर्चा से आपूर्ण है किन्तु वे अपनी ओर से उनकी कोई अनदेखी और अनपेक्षित नही कर सके है। फिर भी उन्होने जो भी लिखा है, वह मुझसे प्रेमादर [illegible] है। उन्होने अपनी पुस्तक मे प्रश्न मेरे उत्तर उनके जोड कर एक पृथक और

निराला कार्य अवश्य किया है। उन्होने हिन्दी साहित्यकारो का ध्यान आकृष्ट कर एक अभाव की पूर्ति की है।

—सुरेश सरल, जबलपुर

सारस्वत साधना के द्वार का उद्घाटन

हमारे भारतीय जीवन के शाश्वत मूल्यो-आदर्शों का ह्रास होता दिखाई दे रहा है, आवश्यकता इस बात की है कि सत-पथ के पथिक चारो ओर से मँडराते हुए काले बादलो को छाँटने का प्रयास करे, एक दिन अवश्य ही सफलता हस्तगत होगी, अधकार भागेगा और प्रकाश की विजय होगी।

डॉ नेमीचन्द जैन सत-पथ के ऐसे ही पथिक है, जो हजार विघ्न-बाधाओ का साहसिक सामना करते हुए निरन्तर आगे बढ रहे है। वे केवल एक प्राध्यापक, पत्रकार, भाषाविज्ञानी और चिन्तक मात्र न रहते हुए एक ऐसी रचनात्मक सस्था बन गए है, जो हमे आधुनिकता-बोध की रोशनी से परिचित करा रही है।

श्री रत्नेश कुसुमाकर के शब्दो मे – 'इस रोशनी के व्यापक क्षेत्रफल मे धर्म, अध्यात्म और दर्शन के नूतन, अभिनव और मौलिक स्वरूपो की रजत वीथिकाएँ निर्मित हो रही है'। उन्हे नजदीक से जानने-समझने और उनके साहित्य को पढने, अध्ययन करने की जरूरत है। इस उद्देश्य-प्राप्ति की सुगमता हेतु ही श्री कुसुमाकर ने डॉ नेमीचन्द जैन की 'सारस्वत साधना एक झलक' नामक पुस्तक लिखी है।

श्री रत्नेश कुसुमाकर भी भाव-भाषा के धनी है। उन्होने अपनी सशक्त लेखनी से डॉ जैन के ग्रथवार भावो, विचारो, अनुभूतियो का और तदनुसार उनके क्रिया-कलापो का ऐसा प्रभावी वर्णन किया है कि पाठको को उन्हे हृदयगम करने मे तनिक भी कष्ट नही होता है। उन्होने डॉ जैन की सारस्वत साधना के कपाट के द्वार ऐसे खोल दिये है कि जिज्ञासु पाठक सहज ही उनके अतस्थल की गहराइयो मे पहुँच सकते है और अनेक रहस्यो का उद्घाटन कर सकते है।

डॉ नेमीचन्द जैन के लेखन की किलाबदी भावपक्ष एव कलापक्ष दोनो दृष्टियो से सुदृढ है। श्री कुसुमाकर का यह आकलन बिलकुल सही है कि डॉ जैन ने भाषा को एक नयी रवानी दी है। उन्होने प्राकृत और अन्य देशज बोलियो के शब्द-समुच्चय से हिन्दी को शक्तिदायी बनाया है। उन्होने हिन्दी-उर्दू का गगा-जमना-सगम, समन्वय को साधकर उसे व्याकरण के अनुशासन मे निबद्ध कर नया स्वरूप प्रदान किया है।

डॉ जैन के विचारो पर जैन साहित्य के अतिरिक्त कबीर एव सत साहित्य का विशेष प्रभाव है, इसलिए उनके कथन मे स्पष्टता और निर्मलता की छाप स्वय दृष्टिगोचर होती है। वे विगत तीन दशको से 'तीर्थंकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' (मासिक) के माध्यम से सद्विचार, सदाचार और दिन-प्रतिदिन बढते जा रहे मासाहार और उससे उत्पन्न देश की पशु-सपदा के विनाश के प्रतिरोध मे क्रान्ति का

ग्राम-ग्राम रंग रहे है। उसका प्रभाव भी शनै शनै जनमानस पर पड रहा है। अवश्य ही एक दिन यह व्यापक रूप धारण करेगा।

—जगन्नाथ चौधरी 'इच्छुक',

(सपादक, 'मजदूर-सदेश', इन्दौर)

सारस्वत साधना को रूपायित ही नहीं किया, सजीव बनाया है

श्री रतनेश कुसुमाकर सुकवि ही नही शब्द-शिल्पी और सुहृदय साहित्यकार है। समय-समय पर उन्होने शब्द-चित्रो के माध्यम से जिन विद्वानो एव आत्मीयजनो की छवि को उकेरा है, वह भाव-भगति गरिमा और उनकी शाब्दिक पच्चीकारी का प्रमाण है। प्रस्तुत पुस्तक के अन्तर्गत उन्होने डॉ नेमीचन्द जैन की सारस्वत साधना की जो सादर कुसुमाजलि के रूप मे अर्पित की है उनकी दस पाँखुरियो मे भाव-भाषा और भावकला का अदभुत सम्मिश्रण है। 'वे भीड मे आसानी से पहचाने जा सकते है, कविता-सृजन प्रथम चरण, सप्त-सिन्धुओ का सतरण, आध्यात्मिक पत्रकारिता के सुमेरु, कुशल शब्द-शिल्पी/पारखी, बातचीत को नया आयाम, वर्तमान के परिप्रेक्ष्य मे महावीर, अर्द्ध शताब्दी के भारतीय चिन्तन धारा के सहयात्री, प्रश्न मेरे उत्तर उनके, भाभा जी हाँ, वे मेरे अग्रज है' -जैसे शीर्षको के अन्तर्गत डॉ जैन की सारस्वत साधना को रूपायित ही नही किया है, सजीव बनाया है। इस कुसुमाजलि मे केवल शाब्दिक पराग ही नही, आत्मीयता और निष्ठा-आस्था की गध भी है।

—निशक (डॉ श्यामसुन्दर व्यास),

(सपादक, वीणा , मई, २०००)

सुन्दर प्रस्तुतीकरण

अमृत बिन्दु'– पूरी पुस्तक को देखने मे, उसकी आवाज को सुनने मे– दो घंटे से अधिक का समय दिया। अभी इसे कई दिनो तक देखना है।

मुखपृष्ठ पर सादगी और गरिमा की 'तस्वीर' देख कर मन-कमल खिल गया। कवर (आवरण) के भीतर, आखिरी मे जो चित्र है, वह गम्भीरता का है। तो यह कि ... आप के रूप मे थे या चित्र मे– उनकी नही सादगी, गरिमा और गम्भीरता की ... तस्वीर देख रहा हूँ। सम्पादक के लिए बधाई! (पुस्तक) इतना सुन्दर आकार ... मैं नही जानता था।

—सुरेश सरल, जबलपुर

'कुछ अमृत बिन्दु' : एक परिचयात्मक अवलोकन

इस छोटी-सी ६४ पृष्ठ की पुस्तक मे 'तीर्थंकर' मासिक के लब्ध-प्रतिष्ठित सपादक डॉ नेमीचन्द जैन की दीर्घकालीन साहित्य-साधना का मूल्याकन किया है सुलेखक सुरेश सरल ने। लेखक के अनुसार डॉ नेमीचन्दजी ने विगत तीन दशको से 'तीर्थंकर' के सपादन के साथ-साथ लगभग एक सौ दस पुस्तके भी लिखी है। जिनमे-से अब एक सौ पुस्तके उपलब्ध है।

किताब के जन्म की सचाई मे लेखक ने लिखा है 'प्रस्तुत पुस्तक मे मैने डॉ साहब की वे छुपी हुई ऊँचाइयाँ और औदार्य अनावृत्त किये है जो आम पाठको और विद्वानो तक सहज ही नही पहुँच पाते। मेरे इस लेखन-कार्य मे श्रद्धा-तत्त्व आधार का कार्य करता रहा और साहित्य-तत्त्व भवन का। पर सत्य से एक पल मात्र भी दूर नही हो सका, जो उनके लिए उचित था वह लिख रहा हूँ। कही भी अतिशयोक्ति नही है।'

लेखक ने डॉ नेमीचन्दजी की १०० पुस्तको का वर्गीकरण दस कुलको मे करके एक-एक पुस्तक की विशेषता को सक्षेप मे दर्शाने का सफल प्रयास किया है। कहा जा सकता है कि लेखक ने डॉ साहब के समग्र वाङ्मय का आत्मीय भाव से आलोडन और मथन करके सार तत्त्व पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया है। पुस्तक का लेखक स्वय सधा हुआ, प्राँजल एव ग्राह्य शैली का सवाहक है। उसमे कल्पना-शक्ति भी है, चिन्तन-माधुर्य भी है। डॉ नेमीचन्दजी के व्यक्तित्व वैदुष्य की झाँकी सक्षेप मे अल्पतम शब्दो मे लेकिन सपूर्ण रूप मे इस तरह व्यक्त कर दी है ' इनके भीतर मनीषियो की एक पूरी बेच है। तभी तो उसका एक मनीषी बाहर(और घर) से आने वाले ग्रथो की समीक्षा करने मे जुट गया। २८ वर्ष से वे समीक्षा कर रहे है, समीक्षित ग्रन्थ १६ से लेकर १६०० पृष्ठ तक के रहे है। पर हर एक के साथ पूरा-पूरा न्याय किया जाता रहा मनीषीजी द्वारा। विश्व कीर्तिमान बना है। अब तक वे ७९८ ग्रथो की समीक्षा कर चुके है, जिनमे-से ६९० 'तीर्थंकर' मे, ७९ 'शाकाहार-क्रान्ति' मे, ८ तीर्थंकर (अग्रेजी) मे, ३० 'वीणा' मे और १ 'ऋतुचक्र' मे प्रकाशित हुई है।'

'व्यक्तित्व' के विषय मे लेखक के शब्द है वे आत्मदर्शन मे लोकदर्शन के साधक है। उनके विचार मोम-जैसी सुकुमारिता से प्रारभ होते है और इस्पाती परिवेश बना देने मे सक्षम रहते है। वे इस्पात के नही है, पर उनके सिद्धान्त इस्पाती है।'

'३ दिसम्बर १९२७ को बडनगर मे जन्म लेने वाला यह व्यक्ति अपनी मेधा के बलबूते सारे देश के साहित्य-संस्कृति के प्रेमियो का दुलारा बन गया।' 'देश भर मे उनकी सपादन एव लेखन-कला विशिष्ट है। तभी तो उनकी पत्रिकाओ मे कभी

समरांगण' गुम्फित होता है, तो कभी 'ज्ञानोदय', 'धर्मयुग', 'नवनीत', और 'कादम्बिनी' के गरिमापूर्ण शिखरों की प्रतीति, वही ऊँचाई।'

मैं प्रारम्भ से ही 'तीर्थंकर' पत्रिका का प्रिय पाठक रहा हूँ। मैंने स्वयं अनुभव किया है कि समग्र जैन समाज में 'तीर्थंकर' ही एक उच्च स्तर की पत्रिका है, जिसमें क्रान्तिकारी की आत्मा बोलती है। मैं भी मन-प्राण से इसके साथ जुड़ गया। मैं अपने लेखन आदि के प्रति गर्व या गौरव का दावा नहीं करता, न मैं उच्च स्तरीय विचारक ही हूँ, फिर भी मुझे लगा कि इस पत्रिका के द्वारा लीक से हट कर अपने विचार प्रकट किये जा सकते हैं। यानी 'तीर्थंकर' का सकारात्मक/सुझावात्मक विद्रोही स्वर मेरे मानस का अंग बन गया।

डॉ. नेमीचन्द जैन का बीसवीं शताब्दी के चौथे चरण में जैन समाज, संस्कृति, सभ्यता के प्रति जो अवदान है, जितना विपुल साहित्य उन्होंने सिरजा है, उनका महत्त्व आज की परम्परा-प्रिय मानसिक रूप से थकी और वृद्ध पीढ़ी भले ही स्वीकार न करे, पर इक्कीसवीं शताब्दी अवश्य उनकी चेतावनियों को स्वीकार करेगी।

अहिंसा, शाकाहार, अपरिग्रह, अनेकान्त, अध्यात्म, सत्य आदि पर उन्होंने विविध रूपों में पर्याप्त सामग्री प्रदान की है। मैं समझता हूँ कि पत्रकारिता के क्षेत्र में डॉ. नेमीचन्द का नाम मंदिर के कलश के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। 'डॉ. नेमीचन्द जैन साहित्य (पचास वर्ष : सन् १९४८-'९८) : एक अवलोकन' में 'तीर्थंकर'/'शाकाहार क्रान्ति' के अंकों तथा पुस्तकों के चयनित अंशों से पता चलता है कि यह मनीषी भावना-प्रधान या भावुक होते हुए भी गणितज्ञ है, सावधान है और कण-कण का लेखा-जोखा रखने में परिपक्व वणिक भी है। मेरे देखने में, पूरे समाज में यह प्रथम प्रयास लगता है कि अपने लेखन को कोई कितना महत्त्व और आदर दे सकता है। मुझ-जैसे कुछ लोग तो ऐसे भी हो सकते हैं जो आज के लिखे को कल भूल जाएँ या उसकी परवाह तक न करें। इसका मतलब यह है कि डॉक्टर साहब हर शब्द को सरस्वती की आराधना का सुमन मानते हैं।

डॉक्टर साहब अब वृद्ध-से लगने लगे हैं, शायद थक भी गये हैं, लेकिन यह तो शारीरिक विवशता है। 'जुझारू' और 'तिलक', 'मनीषी' भीम या हनुमान-जैसा [illegible] बन सकता है? उसकी मानसिक स्थिति ही दुर्बल रहने की है। लेकिन [illegible] उनकी आत्मा और भी प्रखर और क्रान्ति की ज्वाला उगलने वाली बन [illegible] है। [illegible] हटाता हुआ अपना रास्ता बनाकर [illegible] की [illegible] है। शाकाहार-आंदोलन को वे क्रान्ति मानते हैं। [illegible] के विरोध में उनकी छोटी-मोटी [illegible] [illegible] है। शाकाहार-क्रान्ति [illegible]

[illegible]

पर क्या उनकी निष्ठा भी असफल रही? इतना तो हुआ कि उनके कारण मास की प्रतिष्ठा मिट गई।

जहाँ तक 'तीर्थकर' के माध्यम से मै उन्हे या उनकी दृष्टि को समझ पाया हूँ वे पारम्परिक जैन परिधि से ऊपर उठना तो चाहते है, पर इस परिधि की जकड शायद इतनी मजबूत है कि वे उससे मुक्त नही हो सकते। उन्होने 'तीर्थकर' का 'जैन भूगोल विशेषाक' प्रकाशित किया है। सामग्री अच्छी जुटाई, श्रम भी किया पर मुझे लगा कि एक विद्वान् सपादक इस फेर मे कैसे उलझ गया? क्या भूगोल भी जैन, हिन्दू हो सकता है? कोई पर्वत, नदी, सागर, वनस्पति जैन, ईसाई या किसी धर्म की हो सकती है?

पुस्तिका सुन्दर छपी है, शब्दाकन व्यक्तित्व का पारदर्शी परिचायक बन पडा है। अन्त मे लेखक से एक निवेदन अवश्य है कि वे किसी व्यक्तित्व की विशेषता व्यक्त करते समय तुलना मे ' जिन्हे (अतिशयोक्ति) लगे, समझो वे जलते है, उनके लिए एक ही पक्ति है– 'ऊँच कि वास नीच करतूती, देख सकहिन पराई विभूति।' जैसी अनेकान्त के उपासक को कटूक्तियो से परहेज करना चाहिये। कम-से-कम दूसरो के प्रति वाणी का सयम तो बरता ही जाना चाहिये, क्योकि हरएक की अपनी दृष्टि और मान्यता होती है। मुडे-मुडे मतिर्भिन्ना। विरोध और प्रतिक्रिया का भी उदार मन से स्वागत करना चाहिये और अन्तरतम की गहराई मे अपनी तथाकथित विनम्रता, सत्यता, अहिंसा पर पैनी नजर रखनी चाहिये – आत्मश्लाघा से प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, यह सब जानते है।

भाई प्रेमचन्दजी ने श्रद्धा और भावना-प्रेरित होकर अपने ज्येष्ठ बन्धु डॉक्टर साहब के आतमसम्मान के लिए जो प्रयास किया है, वह सर्वथा श्लाघनीय है। इस छोटी-सी पुस्तिका से आम पाठक डॉक्टर साहब को युग-मनीषी और जागरूक प्रहरी के रूप मे स्वीकार करेगा इसमे सदेह नही। लेखक-प्रकाशक को इस अवदान के लिए बधाई!

–जमनालाल जैन, सारनाथ-वाराणसी (उ प्र)

कन-कन का वजन मन-मन का

पुरा-मिथक काल मे देव और दानवो ने मिल कर कभी समुद्र-मथन किया था। इस मथन मे उन्हे चौदह रत्नो की प्राप्ति हुई थी। इनमे अमृत भी शामिल है। यह वह अमृत है, जिसका पान कर देवताओ को अमरत्व और अजरत्व की प्राप्ति हुई। वे सब मृत्युजयी बन गए और 'अमृत-सतान' कहलाये। ठीक इसी भाँति समर्थ लेखनी के धनी श्री सुरेश सरल ने साहित्य के कालजयी हस्ताक्षर डॉ नेमीचन्द जैन के साहित्य सिन्धु का मथन कर, अपने हिन्दी समाज के प्रबुद्ध पाठको के समक्ष कुछ 'अमृत बिन्दु प्रस्तुत कर, एक स्तुत्य कार्य सपन्न किया है। इन कुछ अमृत बिन्दु को जो भी पाठक पाठिका/साहित्यानुरागी पान करेगा/चखेगा/जज्ब करेगा, निश्चित मानिये, उसे

सत्यानन्द की अनुभूति तो होगी ही, किन्तु इसके साथ ही आप यह महसूस करने लगेगे कि किसी अगोचर शक्ति ने किसी वरदायी हाथ की कोमल शलाका से आपकी आँखो मे अनेकान्त का अजन आँज दिया है, इसके शीतल प्रभाव मे आप जहाँ धर्म/अध्यात्म/दर्शन के सभी लोक-लोकातरो को देख रहे है, उनमे रू-ब-रू हो रहे है, वही आप उस चिदाकाश को भी माप लेने के लिए समुत्सुक हो रहे है, जिसमे महाप्रभु तीर्थंकरो की वाणी आज भी अभिगुँजित है। श्री सरल ने अपनी इस अनूठी पुस्तक के माध्यम से डॉ. नेमीचन्द जैन के उस पावन साहित्यिक तप से सर्वसामान्य जन को परिचित कराया है, जिसके वन मे ब्रह्मा, विष्णु और शिव 'सृजन, चिन्तन और सहार' की अपनी-अपनी भूमिका अदा करते है।

लेखक ने अपनी 'किताब के जन्म की सचाई' को आठ शीर्षको, यथा १ १०० पुस्तको के १० कुलक, २ व्यक्तित्व और कृतित्व के आईने मे उनके कतिपय बिम्ब, ३ उनके साहित्य-सागर मे आधुनिकता-बोध के कमल खिलते है, ४ उनकी काव्य-यात्रा एक सिंहावलोकन, ५ जैन पत्रकारिता को उनका अवदान, ६ शाकाहार-मार्ग पर गाँधीवाद के चरणधर, ७ गाँधीजी की शाकाहार-क्रान्ति के दो अनुवर्ती व्यक्तित्व, ८ बहुत सरल है वे, — मे बाँट कर अपनी इस किताब को समग्रता के शिखर चढाया है। बड़ी कुशलता से रोम-प्रहर्षक बनाया है।

लेखक ने पुस्तक के प्रस्थान-बिन्दु को उकेरते हुए, बड़े निःसंग भाव से कहा है—'जो भगवान् से निष्कपट रूप से जुड़ा रहता है जीवन भर, वह व्यक्ति ही पढ़ना पसद करता है। शेष तो जीवन-भर, भवन, दुकान, मदिर, पुस्तकालय इत्यादि मे बैठकर पाठ या अभिनय करते है।' इस कथन मे लेखक का कठोर यथार्थ मुखरित हुआ है। '१०० पुस्तको के १० कुलक' (सेट) के सम्यक् परिचय मे जैनधर्म के सभी दार्शनिक अंगो पर डॉ. नेमीचन्द जैन के वचनो/उद्धरणो का हवाला दिया है, जिससे प्रस्तुत समीक्ष्य पुस्तक एक ऐसी उपयोगी कुंजी बन गई है जिसकी सहायता से पाठक जैनधर्म, अध्यात्म और दर्शन के गूढातिगूढ रहस्य को समझ सकता है। एक दिगम्बरी सरोवर मे ये सब तत्त्व पाठको के हाथ के आँवले बन जाते है जिन्हे समझने और हृदयगम करने मे आत्मार्थी को/मुमुक्षु को/शोधार्थी को वर्षो तक स्वाध्याय की तप-साधना की ओर को झेलना/सहना पड़ता है। तब कही उसे समाधान-सूत्र की प्राप्ति होती है।

श्री सुरेश सरल ने बड़ी मनोग्राही, सम्प्रेषणीय शैली मे डॉ. नेमीचन्द जैन के व्यक्तित्व और कृतित्व को रूपायित किया है। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

और प्रस्तुतीकरण की– ये ही वे सब कारण समुच्चय है, जिनके कारण 'कुछ अमृत बिन्दु' हिन्दी-ससार मे समादृत/लोकप्रिय हो, तो हमे तनिक भी आश्चर्य नही होगा।

हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर ने इस पुस्तक का प्रकाशन कर हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया है। श्री प्रेमचन्द जैन ने इसके सम्पादन और सयोजन मे जिस श्रेष्ठता/गुणवत्ता का परिचय दिया है– इसके लिए हिन्दी का पाठक-जगत् उनका सदा आभारी रहेगा।

–रत्नेश कुसुमाकर, इन्दौर

विभिन्न आयामो का विश्लेषण/उद्घाटन

'डॉ नेमीचन्द जैन व्यक्तित्व और कृतित्व' मे जहाँ अनेक लेखको ने एक बहुआयामी साहित्य-सृजनरत व्यक्तित्व का आकलन किया था। वही 'कुछ अमृत बिन्दु' मे एक लेखक ने उसी व्यक्तित्व के विभिन्न आयामो का विश्लेपण/उद्घाटन किया है और इसमे नेमीचन्दजी के व्यक्तित्व का एक समग्र चित्र निर्मित होता है। सरलजी ने बहुत परिश्रम और प्रामाणिकता के साथ नेमीचन्दजी के व्यक्तित्व को विभिन्न कसौटियो पर कसा है। उन्हे खरा पाया है। बेहद स्नेह, आत्मीयता और आदर से उन्होने उनके बारे मे एक के बाद एक अनेक प्रश्न खड़े किये है और उनके उत्तर भी दिये है। कृपया सरलजी को मेरी ओर से बधाई दें।

–डॉ. जयकुमार जलज, रतलाम

एक स्थायी दस्तावेज

भाई सुरेश सरल ने जो यश-प्रकाश और समीक्षा की है, अत्यन्त निष्पक्ष और अनूठी है। बडे भाई डॉ नेमीचन्द के मित्रो की शृखला अनगिनत है। उन्हे कूपमण्डूकता और कच्छप्रवृत्ति की मानसिकता बिलकुल नही जमती, इसलिए चापलूसी/चापलूसो से वे कोसो दूर रहते है। मै उन्हे बहुत करीब से १५ या २० वर्षो से जानता/पहचानता हूँ। उनकी अदम्य कर्मठता, जैन जागरण की भावना और बहुआयामी सशक्त चिन्तन को देश का कौन बुद्धिजीवी नही जानता? उनकी आत्म सस्फूर्णा मनीपा और भाषा-शैली अनूठी है। उनसे मेरा गहरा आत्मीय पत्राचार रहा है और तीखे प्रहार भी हुए, लेकिन विनम्र आदरणीय स्वरूप पर कभी कोई आँच नही आई। उनकी जिद और कभी-कभी हठी स्वभाव मन को कही भीतर तक छू जाता है और अत्यन्त अपनेपन के पास ले आता है। यह सब कुछ मै इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए श्रद्धा-सहित लिख रहा हूँ। वे मेरे निकटस्थ परिजन है। सुरेश सरल का प्रयास स्तुत्य है।

मेरे भाग्य मे भी इस मनीषी के कुछ अमृत बिन्दु पत्रो के माध्यम से पहुँचे है। उन अमृत शव्दो मे मुझे सहज किया है इसलिए सहेज रखे है। यह मेरी पूँजी और धरोहर है।

'अमृत बिन्दु' एक स्थायी दस्तावेज है। बेबाक साहित्यिक समीक्षा है और आगे समय का आकलन करने वाली अनूठी कृति सिद्ध होगी।

—डॉ अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर

समुद्र-मंथन

सचमुच ही श्री सुरेश सरल ने समुद्र-मथन करके ही यह अमृत प्राप्त किया है और एक सच्चे साहित्यकार की तरह उन्होने उस अमृतकलश को खूब छलकाया है ताकि कोई अतृप्त न रह जाए। आलोच्य कृति आठ खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड मे लेखक ने १०० पुस्तको पर प्रकाश डालने का उपक्रम किया है। इस तरह यह पुस्तक अपने आप मे ही 'गागर मे सागर' भरने का प्रयास है। सरलजी ने उस सिन्धु का मथन करके जो अमृत चर्चा के रूप मे इस पुस्तक के माध्यम मे परोसा है, वह उनकी कृति के नाम को सार्थकता प्रदान करता है।

'तीर्थंकर महावीर' सेट की सात पुस्तको पर अच्छा प्रभाव डाला है। साथ ही स्थापित समीक्षकों की उन पर समीक्षा के अश देकर अपने पक्ष की पुष्टि का स्तुत्य प्रयास किया है। जहाँ उनका अपने बडो के प्रति आदर भाव तो है ही, समीक्षा के प्रति उदार दृष्टिकोण भी।

जहाँ अपनी पुस्तक के प्रथम खण्ड मे सरलजी ने डॉ साहब की उपलब्ध-अनुपलब्ध कृतियो पर रोशनी डाली है। वहाँ दूसरे खण्ड मे उनके सपादक, प्राध्यापक, विचारक, वार्ताकार, शाकाहार-पथ के ययावर, कवि, आलोचक, शब्दकोशकार, भाषा-वैज्ञानिक, अनुवादक, कहानीकार, प्रकाशक, सूत्रधार, आदि कई रूपो मे खुल कर चर्चा की है। तीसरे खण्ड मे साहित्य के आधुनिकता-बोध की तलाश करते हुए सरलजी इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि वे जो भी लिखते है वह सत्य के करीब तो [illegible] है, आधुनिकता के आसन पर भी पाया जाता है। चौथे खण्ड मे उनकी काव्य-[illegible] क्रम म एक उद्धरण ही काफी है। 'समुद्र मे भी/अपना अस्तित्व बनाये रखने [illegible] नदी।

पाँचवे खण्ड मे पत्रकारिता को उनके अवदान की चर्चा मे क्रम पहले अवदान [illegible] करते हुए सरलजी कहते है 'वह (अवदान) पदार्थ की तरह न दिखता [illegible] भी आभासित [illegible] होता है। वह धूप की तरह कोने-कोने मे जाने मे सक्षम होता है। [illegible] आगे वे अवदान को रेखांकित करते हुए वे लिखते है कि 'उन्होंने [illegible] जो बातचीत की [illegible] वर्तमान सभ्यता को दी है, वही तो [illegible] अवदान। वे आगे लिखते है 'उनका जीवन तो [illegible] [illegible] भाव ही तो है अवदान [illegible] (सापुओ [illegible]) ने अपनी भाषा और [illegible]

वे अपने हार्द मे भी सशोधन कर सके है। उनका अवदान पत्रिका को सजाने मे नही है, एक पूरे समाज को सजाने मे है।'

पुस्तक के छठे और सातवे खण्ड मे शाकाहार के प्रति उनके त्याग और समर्पण की चर्चा की है। आठवे/अन्तिम खण्ड मे अपने भीतर बैठे एक ईमानदार साहित्यकार के होने का प्रमाण देने के लिए सरलजी ने 'बहुत खराब है वे' शीर्षक मे बिन्दुवार उनकी कुछ बुराइयाँ बताने का विफल प्रयास किया है। जो विष्णु-भक्त राष्ट्रकवि स्व मैथिलीशरण गुप्त के साकेत मे राम को मानव के रूप मे विफल प्रस्तुतीकरण की तरह ही है। वे कहते है 'राम तुम मानव हो, ईश्वर नही हो क्या?' पुस्तक के अन्त मे 'अन्तिम पृष्ठ' शीर्षक से इस पुस्तक के प्रसव पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

—डॉ प्रकाशचन्द्र जैन, इन्दौर

उत्कृष्ट कोटि की उपयोगी रचना

सरल किन्तु सक्षम एव सफल अक्षर/सैनिक सुरेशजी द्वारा लिखित कुछ 'अमृत बिन्दु' का अवलोकन कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। सरलजी भले ही इसे कुछ अमृत बिन्दु कहे, किन्तु मै तो इस लघु पुस्तिका को अमृत कुभ ही कहना चाहूँगा।

'तीर्थंकर' के जन्म से ही मै 'तीर्थंकर' के प्रखर लौह पितृपुरुष के शीर्षस्थ व्यक्तित्व का प्रशसक हूँ। उन्होने भारतीय सस्कृति के सजग एव सशक्त प्रहरी की भाँति श्रुत के वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण, रक्षण एव सवर्द्धन मे अप्रतिम योगदान किया है। भारतीय मनीषा के वरिष्ठतम साधक एव आराधक डॉ नेमीचन्दजी ने अनेक अनछुए एव अपरिचित विषयो के प्रस्तुतीकरण मे प्रोन्नत मानदण्ड स्थापित किये है। अपनी सतत् प्रशासकीय व्यस्तताओ मे भी मैने 'तीर्थंकर' के साथ-ही-साथ डॉ नेमीचन्द द्वारा लिखित प्राय प्रत्येक पुस्तक को पढने का प्रयास किया है। 'तीर्थंकर' और उनके विशेषाको ने मेरी ज्ञानपूँजी मे सतत् वृद्धि की है।

सरलजी ने डॉ नेमीचन्दजी के साहित्य-सिन्धु मे-से अमृत का घट भरकर हमारे सामने मनोरम ढग से प्रस्तुत किया है। निश्चित ही उनकी यह पुस्तिका उत्कृष्ट कोटि की अत्यधिक उपयोगी रचना है। —सुरेश जैन, भोपाल

संपूर्ण साहित्य की सुन्दर रूपरेखा

पुस्तक का शीर्षक देखकर मुझे लगा कि डॉ नेमीचन्दजी के अब तक प्रकाशित लेखो/पुस्तको की कुछ प्रमुख पक्तियो को यहाँ सयोजित किया होगा। अत मुझे प्रसन्नता हुई कि उनके विचार एक स्थान पर ही मिल पाएँगे। लेकिन पुस्तक को पूरी पढने पर कुछ अलग बात नजर आई। वस्तुत इस पुस्तक मे लेखक ने नेमीचन्द के साहित्य का परिशीलन (सक्षिप्त परिचय) प्रस्तुत किया है। लेखक ने डॉक्टर साहब के सपूर्ण साहित्य की सुन्दर रूपरेखा प्रस्तुत की है। पुस्तक का गेटअप भी सुन्दर है।

[illegible] या यह सिद्ध करना कि डॉ नेमीचन्द खराब नही है (पृ ६२-६३) या यह सिद्ध करना कि उनकी सबसे पटती नही है। (पृ ५३) कुछ कम जँचा। यह सब सिद्ध करने की या सफाई देने की कोई आवश्यकता नही होनी चाहिये। एक दार्शनिक ने कहा है 'यदि सारे लोग तुम्हारी बात मे सहमत है, तो समझ लीजिए कि आप कही कुछ गलती कर रहे है।' सत्य की आलोचना तो होती रही है। सत्य सत्य है इसका लक्षण आलोचना ही तो है। नही पटती है तो इसमे भी क्या बुराई है? हाँ, इतनी बुराई अवश्य है कि आत्म-प्रशसा सुनने को नही मिलती है।

पुस्तक का अन्तिम पृष्ठ भी कम महत्त्वपूर्ण नही है।

—डॉ अनिलकुमार जैन, साबरमती-अहमदाबाद

आकाश को मुट्ठी मे समेटने का प्रयास

हिंसा के झझावात मे अहिंसा की मशाल लिये बाट जोहते व्यक्तित्व की तीखी निगाह खोज रही है 'उसे' जो मशाल को चरम लक्ष्य पाने तक प्रदीप्त रख सके। कौन थामेगा हिंसा के ताण्डव मे अहिंसा का दामन? कालजयी महापुरुष के व्यक्तित्व एव कृतित्व को गुणानुवाद के शब्दो की पोषक नही वरन् उस थाती को सहेजने वाले हाथ चाहिए। यदि आज हम डॉ नेमीचन्दजी की भावना को साकार रूप देने का उपक्रम कर सके तो उनके जीवनभर के अनथक श्रम-साधना की सार्थकता होगी।

मानवीयता को हृदयगम करने वाले डॉ साहब मूक पशुओ से लेकर अहिंसा-प्रेमी साधको के हृदय की धडकन बन चुके है। मै सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि जब भी हिंसा के दामन पर विरोध की कील ठोकी जाएगी उसकी नोक डॉ साहब होगे तथा अहिंसा का जो भी दीप जलाया जाएगा उसकी किरण डॉ साहब होगे।' डॉ साहब ने हिंसा की छाती पर कालजयी हस्ताक्षर अकित किये है जो अहिंसा-पथ [illegible] आलोकित करेगे।

[illegible] अमृत बिन्दु मे धर्म/दर्शन/अध्यात्म के साथ ही शाकाहार-साहित्य को [illegible] का आधार देने का सफल प्रयास किया है। शाकाहार को जीवन-शैली [illegible] डॉ साहब की कथनी एव करनी मे भेद नही रहा। आदरणीय श्री सुरेश [illegible] लिखा कि वे 'जो कुछ' लिखते है सत्य के करीब होता है, मै सहमत [illegible] डॉ साहब जो भी लिखते है अद्भुत लिखते है। यही कारण है साहित्य-[illegible] उनके लिए 'कुछ' मिल ही जाता है। अनुभूत लेखन से [illegible] सर्वोदय [illegible] राजचन्द्र एव गाधी जैसे सर्वमान्य है। जैन [illegible] ने अपनाया है। [illegible] तक पहुँचने की प्यास [illegible] डॉ साहब के साहित्य ने [illegible] किया है। [illegible]

[illegible]

करके जीवन मे उतारने को किया गया है। यह निश्चित है कि डॉ साहब के साहित्य से समाज मे चेतना आई है पर कितने दिन रहेगी?

वहुआयामी डॉ साहब एव उनका साहित्य उस अनन्त आकाश की तरह है जो क्षितिज पर धरा से मिला नजर आता है पर मिलता नही है। 'कालजयी शिखर व्यक्तित्व' को शब्दो मे बाँधने का जो श्रम सरलजी ने किया है वह आकाश को मुट्ठी मे समेटने- जैसा है। इस प्रयास मे कितना कुछ छूट गया है इसे श्री सरलजी समझ सकते है या उनके साहित्य का स्वाध्यायी साधक।

साहित्य-सृजन अमरत्व की यात्रा है, डॉ साहब निरन्तर कदम-दर-कदम गतिशील होकर 'मृत्युजयी' हो गये है।

ईसुरी की पक्तियाँ हृदय को झँकृत कर गई, धर्म/दर्शन/अध्यात्म के मनीषी/साहित्यकार/कवि/चिन्तक/शाकाहार गाँधी के जीवन-चरित्र की इससे श्रेष्ठ/सटीक शब्दाजलि और नही हो सकती। श्री सरलजी को साधुवाद!

'कागज पर लिखा होता तो मिटा देते लोग,
दिल पर जो लिखा नाम कोई कैसे मिटाये।'

—ब्र जय 'निशान्त', टीकमगढ (म प्र)

विस्तार से परिचय

जैन जगत् के जाने-माने साहित्यकार, पत्रकार श्री सुरेश सरल ने अपनी सशक्त लेखनी से डॉ नेमीचन्द जैन द्वारा विगत ५० वर्षो मे सृजित ११० लघु पुस्तको के विविध विषयक विशाल साहित्य का विस्तार से परिचय प्रस्तुत करते हुए उसमे परिलक्षित डॉक्टर साहव के साहित्यकार, कवि, विचारक, चिन्तक, समीक्षक, पत्रकार, सपादक, शाकाहार-प्रचारकरूपी वहुआयामी व्यक्तित्व पर विशद प्रकाश डाला है।

सादगी की जीवन्त मूर्ति, कन्धे पर लटके झोले मे ही अपना सभी दैनन्दिक आवश्यक परिग्रह सँजाये, सूखी दुर्वल देहधारी फिर भी सदा नई यात्राओ के लिए तत्पर ७२ वर्षीय डॉक्टर साहव को मै वयोवृद्ध तो नही कहूँगा, क्योकि उनमे अभी भी युवकोचित उत्साह से काम करने की लगन व क्षमता है और आयु मे मुझसे दस वर्ष छोटे भी है, पर वे अनुभव-वृद्ध और ज्ञान-वृद्ध तो है ही। सरलजी ने उन्हे महासपादक कहा है और मै उन्हे वर्तमान के जैन सपादको मे शिरोमणि मानता हूँ। जैन पत्रकारिता को उनका अवदान अनूठा है। सरलजी की यह पुस्तक डॉक्टर साहब के सम्पूर्ण साहित्य को पढ़ने की उत्सुकता जागृत करती है और यही इसकी सार्थकता है।

—अजित प्रसाद जैन, सपादक
(शोधादर्श, लखनऊ, नवम्बर '••)

'कुछ अमृत विन्दु' : एक दृष्टिकोण

[illegible] की अलौकिक शक्ति न होती तो मानवीय इतिवृत का समग्र हो पाना ही [illegible] नही होता, तब न तो चिन्तन-मथन होता न ही अमृत विन्दु आकार लेते।

[illegible] 'सग्गन' होकर भी वह सचय सामर्थ्य नही पाते जिससे नेमीचन्द की [illegible] आस्था का अक्षर-पर्व मनाना सम्भव होता। किन्तु यह सम्भव ही नही [illegible] था। फलतः [illegible] बना कर 'अमृत विन्दुओ को साहित्य सिन्धु' से सचयित कर ही लिया गया। इस पुरुषार्थ मे जो कुछ उभरा वह 'शाकाहार के सुकरात' [illegible] नेमीचन्दजी जैन का विराट् लेखकीय 'व्यक्तित्व' है। कुछ अमृत विन्दु [illegible] की परिचयात्मक प्रस्तुति, तो सम्पूर्ण को परखने की, अवगाहन करने की अतृप्ति जगाती है।

इस पुस्तिका मे डॉक्टर साहब के विचार वाङ्मय का विन्दुवत् आना ही सम्भव था किन्तु उनके मननीय सृजन सरोकार का विस्तृत ससार इस सकलन मे व्यवस्थित होकर प्रकट हुआ है, यह सरलजी की विलक्षण प्रतिभा का ही प्रमाण है।

विचार के जन्म की सच्चाई मे लेखक का यह कहना लेखन-कर्म मे रत रचनाकारों के लिए सार्थक आग्रह है कि "पत्थर बनी अहिल्या के उद्धार की कल्पना तो की जा सकती है पर चापलूसी की नही।"

बड़ी सतोषजनक बात यही है कि अतरग मे झाँकने के बाद भी इस प्रवृत्ति मे लेखक ने अपने आप को जकड़ा रखा है। वही सगर्व सरलता से इस बात को भी स्वीकार किया है कि "आध्यात्मिक सन्दर्भो मे परमपूज्य सत /महात्माओ ने सृजन [illegible] और उसे प्रभावक पाठको तक लाने का कार्य करने मे डॉ. नेमीचन्दजी जैन का जैन पत्रकारिता मे अद्वितीय योगदान है।

यही कारण है कि सच्चे अर्थो मे जैन पत्रकारिता का रूप-स्वरूप डॉक्टर साहब के लेखन मे [illegible] प्रयोगो के साथ निखर कर स्थापित हो गया है। इसे जैन पत्रकारिता मे बड़े नामो को गभीरता से स्वीकार करना चाहिये।

हमारी जानकारी मे जिन महानुभावो ने 'जैन जगत्' के विचार विश्व को [illegible] बनाया है उनमे लेखक के रूप मे स्व. अगरचन्दजी नाहटा, श्री [illegible] जैन, डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, श्री चन्दनमलजी 'चाद' एव [illegible] जैन के नामो के साथ ही डॉ. नेमीचन्दजी जैन का नाम भी [illegible] लिया जाता है। डॉक्टर साहब तीर्थंकर के जैन पत्रकारिता [illegible] है।

[illegible]

की स्वार्थान्धता, हिंसा, क्रूरता और व्यसनो के विरुद्ध निष्कामिता, अहिंसा और करुणा से जोडकर निर्मल रचनापरक वातावरण का पर्यायवाची या प्रतिनिधि रहन-सहन कहते है।

इसी शाकाहारी जीवन-शैली को एक तथ्य के रूप मे मान्य करवाने मे डॉ साहब सफल हुए है। उनके तर्को मे पूर्वाग्रह या हठ नही विश्वस्तरीय तथ्य है। उनकी शाकाहार-यात्राएँ जैन जगत् मे जागृति का जन-आन्दोलन वन रही है, वन चुकी है।

'जैनधर्म इक्कीसवी शताब्दी' मे उठाये गये प्रश्न और आधुनिक माध्यमो के उपयोग का आग्रह निश्चित रूप मे प्रेरक है। अहिसा हमारी माँ, अहिंसा का अर्थशास्त्र, जैन आहार विज्ञान एव कला, शाकाहार का विज्ञान, मासाहार सौ तथ्य, क्या खाएँ क्या न खाएँ?, क्या पहने, क्या न पहने, आदि पुस्तको/लेखो का आगमिक आधार और आधुनिक बोध दोनो ही सामान्य धर्म-चर्चा से हट कर प्रेरक चेतना से लबालब ऐसे आलेख है जिन्हे असहमति की गुजाइश रहते हुए भी समाज स्वीकार कर रहा है। यह डॉ नेमीचन्दजी का जैन पत्रकारिता को अनूठा अवदान है। आदरणीय डॉ सा इसके हेतु अभिनन्दन के पात्र है।

—**हुकमचन्द जैन 'मेघ'**, सपादक

(मुनि निर्भय आलोक, दिल्ली, सितम्बर, '९९)

विद्वत् परिवार की भावनाओ का रूपांकन

डॉ नेमीचन्दजी सर्वोदय चिन्तन को जीने वाले 'कर्म पुरुष' (कर्मयोगी) है। उनका पारदर्शी व्यक्तित्व पत्रकारिता-जगत् के लिए स्पृहणीय है ही। खादी के धवल परिवेश से जहाँ गाधी-दर्शन मुखरित है, वही स्वदेशी और मिट्टी से जुडे रहने की सुगन्ध उनके व्यक्तित्व से सुरभित है।

उनके साहित्य-सिन्धु मे-से कुछ बिन्दु सुरेश सरल की प्रणामाञ्जलि ही नही, वरन् विद्वत् परिवार की भावनाओ का रूपाकन है।

—**प निहालचन्द जैन**, बीना (म प्र)

चिन्तन-स्फूर्त करने वाली कृति

प्रस्तुत पुस्तिका मे डॉ नेमीचन्दजी जैन की साहित्य-शृखला के सौ पुष्पो से चुन-चुन कर भ्रमर की तरह लेखक ने पराग के माध्यम से रस एकत्रित किया है। यह इतनी सुसज्जता के साथ सजायी गयी है कि पढ़ने वाले के ठेठ दिल मे उतर कर उसे चिन्तन करने को मजबूर कर देती है और मन पढते-पढते अपने आप चिन्तनशील बन जाता है।

—**जे के सघवी**, सपादक

('शाश्वत धर्म', थाने (महाराष्ट्र), जुलाई '९९)

'अमृत विन्दु' का प्राशन

अमृत विन्दु प्राशन किये। उस माह मे जो आपाधापी रही, उस माहौल मे दो [illegible] बिन्दु सचमुच संजीवनी प्रदान करने वाले रहे। सच कहती हूँ परिचय-ग्रंथ ([illegible]) वृहद होने के कारण केवल पन्ने ही पलट पायी थी, 'अमृत बिन्दु' ने सागर मे सागर भर दिया है। डॉ नेमीचन्दजी द्वारा जीवनभर जो लेखनी से झरता रहा है, वह सागर बन गया है और भी सागर मे जल समाहित होता रहा। इसमे कोई शक नही है। —प्रा सौ लीलावती जैन, संपादिका

('धर्ममंगल' पुणे)

अछूती जानकारियो से भरपूर

भाई सुरेश सरलजी की प्रस्तुति 'डॉ नेमीचन्द जैन के साहित्य सिन्धु मे-से कुछ अमृत बिन्दु' मे बहुत कुछ अछूती जानकारियाँ भी है। सरलजी ने वास्तव मे 'अमृत बिन्दु' बिखराये है, चखाये नही/चखाने के लिए हाथ बढ़ाकर भी वापस खींच लिया [illegible] है। सागर जो पहले ही कुछ मे-से 'कुछ' चख चुका हो उसे वे क्यो चखाए, और जो अब तक [illegible] भी छका न जाए उसे चखाने से लाभ ही क्या? प्रस्तुत पुस्तिका [illegible] के समान है कि देखो-देखो यह अजूबा देखो पर उस अजूबे को छूना मत।

डॉ नेमीचन्द जैन उन व्यक्तित्वो मे-से एक है जो अपने जीवन-काल मे ही [illegible] बन जाते है। वे जितने प्रकट है मेरे खयाल से उससे कही ज्यादा अप्रकट है। [illegible] विशाल वृक्ष खड़ा हो, फल और छाया देता हो तो यह तो मानना ही होगा कि [illegible] गहरी है।

[illegible] होते है जो अन्धेरे मे भी उजाला देने की लगातार कोशिश करते है। [illegible] कुछ लोग है जो इस कोशिश मे सफल होते है। डॉ नेमीचन्द जैन [illegible] सफल व्यक्ति है।

[illegible] मे जिन-जिन पत्रिकाओ से मै जुड़ा हुआ रहा [illegible] प्राप्त होता था। जिन पत्रिकाओ से मै मानसिक तौर से अनुबन्धित [illegible] सबसे सफल प्रखर पत्रिका है।

[illegible]

'तीर्थकर' तथा अन्य पुस्तको से कई पृष्ठो मे-से कई अश अपने अन्तर्गत की पत्रिकाओ मे साभार ग्रहण किये है, पर जो ग्रहण नही किये है वे भी आन्दोलित करते रहे है।

–राजेन्द्र नगावत, सपादक

('तपोधन', रत्नराज, इन्दौर)

सरलता-सहजता से अथक/अविराम साहित्यिक यात्रा का वर्णन

सरलजी ने श्रद्धेय डॉ नेमीचन्द जैन के साहित्य-सिन्धु मे गहरे पैठकर हमे 'अमृत बिन्दु' दिये है, उसके लिए मै श्रद्धावनत् हूँ एव साधुवाद प्रेषित करता हूँ। इस पुस्तक पर सम्मति/समीक्षा लिखना मेरे वश मे नही है। साहित्य पढने का शौक है। कभी लिखा नही। विद्युत् इजीनियर हूँ, बिजली के तारो को सही जगह बैठाने/लगाने का कार्य कुछ-कुछ कर लेता हूँ। शब्दो को सही जगह देने मे सफल नही हो पा रहा हूँ। सोचता हूँ कि जैसे बिजली के तारो के गलत सयोजन से भारी विस्फोट हो जाते है, कही मेरे द्वारा किसी शब्द का गलत सयोजन किसी को आहत न कर दे।

पूज्य बडे मामाजी के साहित्य-सिन्धु मे मै भी गोते लगा रहा हूँ। जितने गहरे पैठ रहा हूँ उतने ही अनमोल रत्न पा रहा हूँ।

आदरणीय सरलजी ने जिस सरलता-सहजता से उनकी लम्बी अथक/अविराम साहित्यिक यात्रा को वर्णित किया है, उससे मै अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ।

श्रद्धेय डॉ नेमीचन्दजी जैनकी लेखनी से मै अत्यन्त प्रभावित रहा हूँ। विशेपत जैन सिद्धान्त का विज्ञान से तादात्म्य बैठाना, 'जेन पत्राचार पाठ्यक्रम', 'वहुआयामी महामन्त्र णमोकार, 'ॐ १०० तथ्य' आदि बार-बार पढता हूँ। हर बार नया ही पाता हूँ। सरलजी ने डॉ साहव के जीवन के प्रत्येक आयाम को वहुत गहराई से जाना, पढा है। मे तो अभी प्रायमरी के छात्र-जैसा हूँ।

–सन्तोषकुमार फुसकेले, जवलपुर (म प्र)

स्वाध्याय-प्रेरक

भाई सुरेशजी ने सरल-सहज ढग से १० कुलको (सेटो) मे डॉक्टर साहव की १०० पुस्तको का नीर-क्षीर परिचय दिया है। यह नि सन्देह इन पुस्तको को पाठको को स्वाध्याय के लिए प्रेरित करेगा। **–दिलसुखराय अजमेरा,** भीलवाडा

लेखन और संयोजन सुन्दर

सुरेश सरलजी की किताब आदि से अन्त तक पढी। लेखन और सयोजन दोनो वहुत सुन्दर वन पडे है। डॉ नेमीचन्दजी मे पाठक को बाँधने की अद्भुत क्षमता है। उन्हे अभी वहुत काम करने है। मै उनके दीर्घ जीवन की कामना के साथ इस सुन्दर लेखन के लिए सरलजी की सराहना करता हूँ।

–नीरज जैन, सतना (म प्र)

[illegible] आयत्तन - एक/दो □ ग्लेश कुसुमाकर
[illegible]' और 'शाकाहार-क्रान्ति'
[illegible] आलोक मे डॉ नेमीचन्द जैन

'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति'

[illegible] नन्ही-सी चिडिया क्या निस्सीम/अनन्त आकाश को माप सकती है? एक [illegible] समुद्र के तट पर फैली बालुका राशि मे लोट, और कुछ बालुका-कण अपने [illegible] श्रीराम के सेतुबन्ध की निर्माण-प्रक्रिया मे रचनात्मक सहयोग प्रदान कर [illegible] हमारा उत्तर है– हाँ, यह सब हो सकता है। सभवनीय है। सकल्प-[illegible]/जीजिविषा/लगन और समर्पण की वीर-वृत्ति के आगे 'असभवनीय' शब्द [illegible] नही है। जब वामन विराट् बनकर धरती-आकाश और पाताल को [illegible] तो [illegible]-वासी नन्ही-सी चिडिया और श्रीराम के कर-पल्लवो मे दुलराई [illegible] तथा वामन कुलोत्पन्न मनुष्य भी यह सब पुरुषार्थ ससिद्ध कर सकता [illegible]/करना रहेगा। महाबली नेपोलियन का वचन है 'दुनिया मे [illegible] नाम की कोई चीज नही है।' ठीक यही बात मै 'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' के सपादक, गभीर चिन्तक, साहित्य-मनीषी, हँस-प्रज्ञा-समन्वित डॉ नेमीचन्द [illegible] मे कहना चाहूँगा। वे जिस निस्पृह/अनासक्त भाव से अपनी अनूठी [illegible] के माध्यम से महावीर, गौतम बुद्ध और गाँधी की उपस्थिति का दीपक [illegible] रहे है, वह सचमुच विस्मयकारी है। है आह्लादक भी। नयी सहस्राब्दी [illegible] मे उनके आत्मोन्वेषी सृजन से परिचित होना आज समय की [illegible], जिसे अनसुना/अनदेखा नही किया जा सकता।

[illegible] जगत् ने कुछ तमाम [illegible] को [illegible] [illegible] बनाया है। उसमे [illegible] है। [illegible] नही है [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] किया है। डॉ नेमीचन्द जैन भी [illegible] [illegible] और [illegible] के [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] है। [illegible]

की धरती पर वे तप लीन है। यह लक्ष्य-सिद्धि के लिए अनिवार्य/अपरिहार्य
'रामचरित-मानस' के प्रणेता महाकवि सत तुलसीदास का कथन है – 'बिना तप वि
ब्रह्मा न ससार की रचना कर सकते है, न विष्णु पालन कर सकते है और न श
सहार करने मे समर्थ है। अत जो सारस्वत साधक है, विचारक है, पत्रकार है, चिन्त
है, जो सोद्देश्य लेखन के पक्षधर है, उन्हे तप की अग्नि मे तप कर, पहले स्वय
स्वामी श्री रामतीर्थ के शब्दो मे – 'कुन्दन के डले प्रथमत बनना पडता है, तभी सस
के समक्ष यह घोषणा कर पाते है 'जी चाहे जब आजमा ले, हम तो कुन्दन के
है।'

डॉ नेमीचन्द जैन को श्रमण सस्कृति के सस्कार उनकी जन्मघूँटी के साथ प्राप्त हुए है। इसके फलस्वरूप एक जागतिक सवेदन का सागर उनमे सदैव हिल्लोलित होता रहता है। यह एक नैसर्गिक प्रक्रिया है जो नैरन्तर्यधर्मी है। प्रकार विराट् सवेदन के कारण प्रणिमात्र की पीडाओ को सहन कर पाने मे सम सहिष्णु नही हो पाते। इस कारण, वे उन यत्रीकृत अत्याधुनिक कत्लखानो के वि आवाज बुलन्द करते आ रहे है, जहाँ प्रतिदिन हजारो बेजुबान पशुओ को कत्ल कर दिया जाता है और उनका गोश्त डिब्बाबन्द कर उन गोश्तखोर मुल्को को निर्यात किया जाता है जो हमे विदेशी मुद्राएँ उपलब्ध कराते है। इस देश की पशु-सम्पदा का ह्रास जिस तेजी से हो रहा है – यह एक गभीर चिन्ता का विषय है। **अल-कबीर और देवनार जो यत्रीकृत वधशालाओ का अस्तित्व हमारी पशु-सम्पदा के विनाश का पर्याय बन चुका है- इस जमीनी सच्चाई को जो तत्त्व स्वीकार नहीं करते, वे देशभक्त और प्राणिमित्र नहीं हो सकते। सहअस्तित्व और सहजीवन के आत्म-विधान को अस्वीकार करने वाले निहित स्वार्थ-पोषको को जीव-हिसा का लायसेन्स कदापि नहीं दिया जाना चाहिये।** इस दिशा मे आज लोक-चेतना जाग्रत करने का युग-धर्म डॉ नेमीचन्द-जैसी हस्तियाँ निभा रही है। यह एक सतोष की बात है, लेकिन सतोष चिकने कदली-पत्र पर चमकने वाली प्रभातकालीन उस बूँद के समान है जो सूरज की तीखी किरणो की आँच से पल भर ही ढुलक/सूख जाती है। समय की पुकार है कि हमारी पशु-सपदा को नष्ट होने से बचाया जाए। इसके लिए सामूहिक लोक-चेतना का ज्वार जगाना जरूरी है।

डॉ नेमीचन्द जैन बहरहाल कवीन्द्र रवीन्द्र के मत्र-वचन– 'यदि तोर डाक केउ शुने ना तबे एकला चलोरे' का जिस अचल/अटल विश्वास के साथ अनुपालन कर रहे है, वह सराहनीय है। स्तुत्य है। लेकिन अब उन्हे समाज के विभिन्न वर्गो और समूहो के प्रबुद्ध लोगो का सक्रिय सहयोग चाहिये, तभी उनकी इस पशु-हिंसा-विरोधी मुहिम का गुणात्मक परिणाम प्राप्त हो सकता है। यहाँ हमारी आँखो के सम्मुख एक द्वापरयुगीन पौराणिक बिम्ब उच्छलित हो उठता है, जिसमे श्रीकृष्ण देवराज इन्द्र के

[illegible] गोकुल मे जो जन-प्रलय होता है, उससे रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण [illegible] और सभी गोकुलवासियो के सहयोग से, जिनमे सभी युवा, प्रौढ, बालक [illegible] महिला-पुरुष वृन्द शामिल है, पूरा गोवर्धन पर्वत उनकी हथेलियो और [illegible] उंगलियों पर थाम लेते है। अन्तत इन्द्र को पराभूत और नतमस्तक होना पडता [illegible] के आगे। ठीक यही प्रसग एक दिन डॉ नेमीचन्द जैन के इस [illegible] अभियान के साथ भी घटित हो, तो हमे किंचित् भी आश्चर्य नही होगा, [illegible] दिवस की इतजारी मे हमे अपने असीम धैर्य और तितिक्षा [illegible] परिचय देना होगा।

[illegible] के निमत्रण के वक्त जो तीर खडे होकर केवल दर्शक की भूमिका अदा [illegible], वे केवल विशुद्ध पलायनवादी होते है। ऐसे सकट-भीरुजन कभी किसी भी [illegible] का पथ नहीं बुहार सकते। हमे यहाँ सन् १९२० का एक प्रसग स्मरण हो आया [illegible] साहित्य के शलाका पुरुष प माखनलाल चतुर्वेदी बम्बई जा रहे थे। वे [illegible] (अग्रेजी दैनिक) पढ रहे थे। उसके विज्ञापनो मे उन्होने 'सेन्ट्रल प्रॉविन्सेस [illegible] कम्पनी' का विज्ञापन पढा। इस कम्पनी का कसाईखाना सागर जिले [illegible] ग्राम मे खुलने वाला था। उन्होने आगे बढना अनुचित समझा और [illegible] स्टेशन पर उतर पडे। थोडे ही घटे प्रतीक्षा करने के बाद वे नयी टिकट [illegible] होकर कलकत्ता की ओर जाने वाली बम्बई मेल मे बैठ गये और [illegible] उन्होने पहला अग्रलेख इस गोवधशाला के खिलाफ १७ जुलाई, [illegible] लिखा। उस समय 'कर्मवीर' मे एक अग्रलेख लिखा जा चुका था। स्व [illegible] 'कर्मवीर' के सहायक सम्पादक थे। उन्होने यह सब व्यवस्था की। [illegible] प्रसन्नता हुई कि 'कर्मवीर' मे गोवध के खिलाफ चर्चा आ [illegible] 'कर्मवीर' के जुलाई, १९२० से लेकर दिसम्बर, १९२० तक के अक इसी [illegible] से भरे पडे है। उस समय जबलपुर के मौलाना ताजुद्दीन ने अपने [illegible] 'ताज' मे लिख कर इस आन्दोलन को बल पहुँचाया। इस आन्दोलन [illegible] लिए चतुर्वेदीजी लाला लाजपतराय के पास लाहौर भी गये, क्योंकि [illegible] कलकत्ता मे होने वाले विशेष अधिवेशन के अध्यक्ष होने [illegible] चतुर्वेदीजी ने उक्त अग्रेज कम्पनी की रचना-लीला का कच्चा चिट्ठा [illegible] लालाजी के सामने रख दिया। परिणामस्वरूप लालाजी ने अपने [illegible] मे इस कम्पनी के खिलाफ अग्रलेख लिखे और सितम्बर मे [illegible] अधिवेशन मे अपने भाषण मे इसका उल्लेख किया और [illegible] की चर्चा होने लगी कि इतने ही मे स्व प विष्णुदत्त [illegible] का नाम आ गया कि रतौना का कसाईखाना

आज आवश्यकता है कि सारे देश मे इस प्रकार के कसाईखानो के खिलाफ राष्ट्रीय स्तर पर लोकमत का दबाव निर्मित किया जाए और जब तक ये कसाईखाने बन्द नहीं हो जाते, चैन न ली जाए। इस दिशा मे शकराचार्यो, धर्माचार्यो, मुनियो, महन्तो और मठाधीशो को भी अपनी आवाज बुलन्द करनी होगी। इस ज्वलन्त प्रश्न पर अब चुप्पी साधना, केवल मूक दर्शक की भूमिका निवाहना अथवा कि तटस्थ/निष्क्रिय बने रहना एक राष्ट्रगत अपराध मानना होगा।

भारत शेष दुनिया के साथ नयी सहस्राब्दी के आगन मे चहलकदमी कर रहा है। वह स्वय अपने भाग्य का निर्माता और सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, सम्प्रभु राष्ट्र है, अत यहाँ की पवित्र धरती पर विशाल यत्रीकृत पशु-वधशालाओ का अस्तित्व किसी मूल्य पर बर्दाश्त नही किया जा सकता, नही किया जाना जाहिये।

डॉ नेमीचन्द जैन विगत एक दशक से अपने 'शाकाहार-क्रान्ति' पत्र के माध्यम से इस अमर्यादित पशु-हिंसा के विरुद्ध अकेले जूझ रहे है। अव उचित समय आ गया है कि उनके इस आन्दोलन को अधिकाधिक रूप से सगठित और प्रभावशाली बनाया जाए।

डॉ नेमीचन्द जैन ने अपनी पत्रकारिता-दर्शन मे 'न्यूज' - समाचार/ खबर को एक मूल्यपरक धरातल पर प्रतिष्ठत किया है। अग्रेजी का 'न्यूज' शब्द चार अक्षरो का योग- NEWS से गठित होता है। एक विद्वान् के मतानुसार 'एन' नार्थ (उत्तर), 'इ' ईस्ट (पूर्व), 'डब्ल्यू' 'वेस्ट' (पश्चिम) और 'एस' साउथ (दक्षिण) दिशा का बोधक है। इन चार दिशाओ मे निखिल ससार समाविष्ट है। इस ससार की जितनी भी गतिविधियाँ/कार्यकलाप और क्रिया-प्रतिक्रियाएँ है, वे सब पत्रकारिता के अग-उपाग बनकर समय-समय पर उजागर होती रहती है। वे दबती नही, उछलती रहती है। उनकी ध्वनि-प्रतिध्वनि ईथर मे तैरती रहती है। जो पत्रकार जागरूक है, कर्मसन्नद्ध है, इन तरगो को अपनी कलम की नोक से बाँध लेता है और ममाचार के रूप मे ससार के सामने प्रस्तुत कर देता है। इस प्रकार समाचार अस्तित्व मे आता है, लेकिन इतना ही पर्याप्त नही होता, किसी भी समाचार के गर्भ मे जो तथ्य छिपा रहता है, उसके अन्तर्निहित/प्रच्छन्न सत्य को प्रबुद्ध पत्रकार उघाड कर अपने पाठको के सम्मुख निर्लिप्त भाव से रख देता है। इसी बिन्दु पर उसकी वीतरागता निकष पर चढाई जाती है। यही उसकी परीक्षा की घडी भी होती है। डॉ जैन की पत्रकारिता इसी किस्म की है। उसमे प्रामाणिकता है। विश्वसनीयता है। उसे किसी भी कोण से चुनौती नही दी जा सकती।

डॉ नेमीचन्द जैन ने महात्मा गॉधी की उस पत्रकारिता के आदर्श को अगीकृत किया है, जिसे उन्होने दक्षिण अफ्रीका और बाद मे भारत मे पल्लवित और सपोषित किया। खड्ग की तीक्ष्ण धार पर चलना होता है, इस किस्म की पत्रकारिता को। वह

विज्ञापनो की शृखला से विहीन, साफ-सुथरी, सीधी, सादी, सपाट, चमक-दमक-शून्य, निरहकारी, किन्तु आपादमस्तक विनम्र होती है। उसमे मस्तिष्क की नहीं, हृदय की भाषा होती है। उसमे कोई तथ्य गोपनीय नही होता। इसीलिए उसमे समग्र सत्य की उपस्थिति होती है। विभिन्न हितो और स्वार्थो के रेलमपेल मे आज ऐसी आदर्शोन्मुख पत्रकारिता के दर्शन दुर्लभ होते जा रहे है।

अपने सम्पादकीय अग्रलेखो की एक सुदीर्घ शृखला मे डॉ जैन ने सामाजिक क्रान्ति की अलख जगाई है, वह दूर-सुदूर तक सुनी जा रही है। वे चेतावनी देते है 'जो लोग परिवर्तनशीलता के जीवन-दर्शन को नही जानते या उसे अस्वीकार करते है, और पुरानी जमीन को नयी खाद देने की आकुलता नही बनाते, वे सामाजिक और सास्कृतिक प्रगति को अवरुद्ध करते है, उसका रास्ता रोकते है। ऐसे तमाम लोग अपनी तो कहते है, लेकिन दूसरो की नही सुनते। माना, ये लोग अपनी जडे पाताल मे उतारते रहते है, लेकिन परिवर्तन-के-फलसुफे को जानने की कोई कोशिश नही करते।' (तीर्थकर, सितम्बर, १९९९, सपादकीय)

डॉ जैन भाषाविद् होने के साथ-ही-साथ भाषा–विज्ञानी भी है। वे अपने पाठको को शब्दो की आत्मा से रू-ब-रू कराते हुए अपनी बात कहते हुए चलते है। उनके सम्पादकीय लेखो मे वैचारिक स्पष्टता, तथ्य-कथ्य की पारदर्शिता के दर्शन होते है। वे अपने एक सम्पादकीय लेख मे एक महत्त्वपूर्ण मुद्दे की ओर ध्यानाकर्षण करते हुए कहते है – 'क्या कभी आपने सोचा है, कि यदि श्रावक साधु की और साधु श्रावक की भूमिका मे उतर आए तो क्या होगा – वही न, जो आज घटित है, अर्थात् बर्बादी के तमाम रास्ते खुल जाएँगे और हम मखमली दूब से ढँकी भयानक खाइयो पर चलने लगेगे यानी क्रमश बर्बाद होने लगेगे। समीक्षा करे और देखे, कि आज यही हो रहा है अर्थात् सब एक-दूसरे की भूमिकाएँ झपटने मे लगे है, एक भी अपनी निज की भूमिका करने की स्वच्छ मन स्थिति मे नही है।' (तीर्थकर, सपादकीय-२, सितम्बर, १९९९)

धर्म, अध्यात्म, नैतिकता इत्यादि कुछ ऐसे सवेदनशील क्षेत्रो मे व्याप्त निराशा का काली प्रालेय घटाओ को चीर कर, उन्होने जो कुछ पाया, देखा, महसूसा उस सब को अपनी विवेचना की छलनी मे छानकर, नि सग भाव से अपने प्रबुद्ध पाठको को परोस दिया है। यहाँ उनमे एक ऐसी तडप बिजली चमक बन कर कौध उठती है। जिसकी प्रतिक्रिया मे व्यक्ति-समूह आत्म-परिष्कार की दिशा मे पग उठाने का सकल्प लेता है। यह प्रतिक्रिया युवा सिद्धार्थ गौतम की उस प्रतिक्रिया का अनुवाद (रूपान्तर) मानी जा सकती है, जो उन्होने प्रथम बार एक मृतक की अर्थी को श्मशान की ओर ले जाते हुए और एक वृद्ध को, एक रोगी को विह्वल होते हुए देखा था। अपनी अनुभूतियो के आरण्यक मे विचरते/परिक्रमण करते पाया था।

'तीर्थकर' के अन्तिम कवर पेज पर पाठको को जैन-जगत् के भक्त-कवियो, यथा श्री बनारसीदास, श्री भूधरदास, श्री द्यानतराय के भक्ति गीतो का माधुर्य प्राप्त होता है, जिसे पढ-सुन कर पाठकगण निर्वेद (परम शान्ति) की भाव-समाधि मे पहुँच जाते है। भक्ति-गीत-गगा का ऐसा पवित्र जल, जिससे आत्मा का स्नान कर हम एक दिव्य लोक की ओर ऊर्ध्वगमन करने की मनोदशा मे स्वय को पाते है।

इसी तारतम्य मे हम जब डॉ नेमीचन्द जैन की शाकाहार-क्रान्ति-यात्रा-वृत्त को पढते है, तब विस्मय-विमुग्ध हो उठते है। यह उनकी हजारो मील दूरी वाली एक मुश्त यात्रा होती है, जिसमे समाज की नब्ज एक कुशल चिकित्सक के रूप मे टटोलते/जाँचते और निदान करते हुए नजर आते है। यहाँ एक नवीन शैलीकार के रूप मे उनकी छवि निखर-बिखर उठती है। **इन यात्रा-वृत्तो का फलक इतना विस्तृत/विराट् होता है कि स्थूल से प्रारभ हो कर सूक्ष्मतम को सहेजना-समेटना आसान हो जाता है। चित्रोपमता, सवादो की प्रॉजलता और हृदय-से-हृदय का मिलन एक अनिवर्चनीय आनन्द की सहस्रमुखी धाराओ मे हमे बहा-बहा लेता है। हिन्दी साहित्य मे इस प्रकार की प्रयोगधर्मिता अनूठी है। अप्रतिम है।**

डॉ जैन ने 'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' मे नये लेखको, चिन्तको की एक ऐसी टीम विकसित की है, जो एक अहिंसक/सदाचारी और नैतिक मूल्यो के प्रति सर्वात्मना समर्पित एक नये समाज की रचना के प्रति कृत सकल्प है। यह सकल्प एक नये सूरज की साक्षी मे पूरा होने को है।

'तीर्थकर' के 'ॐ विशेपाक' (रजत जयन्ती वर्ष, अप्रैल, १९९६) एव 'मृत्युञ्जय विशेपाक' देश की सामिक पत्रकारिता के 'माईल स्टोन्स' माने जाते है। इनकी गुणवत्ता, प्रभाव और प्रस्तुतीकरण की प्रबुद्ध वर्ग मे भूरि-भूरि प्रशसा हुई है। इनकी विषय-सामग्री के चयन मे जिस श्रम और सूझबूझ का परिचय दिया गया है, वह बेमिसाल/बेजोड है।

ॐ विशेपाक को अपने पाठको के समक्ष पेश करते हुए सपादक डॉ नेमीचन्द का कथन है 'हम इस तथ्य को भी रेखाकित करना चाहेगे कि समाज के धर्म के स्थूल रूप पर रुक पडने के कारण अध्यात्म की जो उपेक्षा हुई है, उससे व्यक्ति का चित्त अशुद्ध-अपावन हुआ है। नतीजतन समाज का मन-मानस भी दूषित/कलुषित हुआ है। ध्यान रहे 'ॐ विशेपाक' व्यक्ति की चित्त-शुद्धि का एक युगान्तरकारी प्रयास है ताकि हम धर्म के उस टापू को खोज सके जिस पर कोई मन्दिर भले ही न हो, किन्तु श्रमण-श्रमणी/श्रावक-श्राविका-जैसे चार तीर्थ अपनी सम्पूर्ण बलवत्ता/गुणवत्ता के साथ जैनत्व (मूलत मनुष्यत्व) को जी रहे होगे।'

अध्यात्म/आत्मवाद के प्रति समाज की उपेक्षा-उदासीनता ने कभी महाकवि सच्चिदानन्दन पत को भी गहरे रूप मे उद्वेलित किया है। इस उद्वेलन को उन्होने इन

शब्दो मे अभिव्यक्ति दी है

'आत्मवाद पर हँसते हो, रट भौतिकता का नाम।
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे, तुम सँवार कर चाम।'

अध्यात्म को विसारना एक अक्षम्य अपराध है। इसके कारण मनुष्य का पतन इतनी तेजी से होता है, कि फिर मनुष्य और पशु के बीच की विभाजन-रेखा ही मिट जाती है। वर्वरता/हिंसा/क्रूरता का दानव दसो दिशाओ मे अट्टहास करने लगता है।

हमने देखा है, सुना भी है, विश्ववध आचार्य श्री विद्यानदजी विशाल मानव-मेदिनी के समक्ष अपने प्रवचन के प्रारभ मे ॐ का समुच्चारण के सर्वोच्च प्राथमिकता देते थे। उनके श्रीमुख से जव यह मगलाचरण--

ओमकारम् विन्दु सयुक्तम्, नित्यम् ध्यायन्ति योगिन ।
कामदम् मोक्षदम् चैव, ॐकाराय नमो नम ।।

- स्फुरित/विस्फोटित होता था, दिशाएँ स्तब्ध हो जाती थी (अव भी हो जाती है।) एक अश्रुत सन्नाटा (पिन ड्राप सायलेस) चारो ओर पसर जाता था। डॉ नेमीचन्द इसी अध्यात्म की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए सचेष्ट है। जागरूक और प्रतिवद्ध है। 'ॐ विशेषाक' मे विनोवा भावे, आचार्य रजनीश, आचार्य महाप्रज्ञ, उपा चन्द्रप्रभसागर, प नाथूलाल जैन शास्त्री जैसी विमलविभूति हस्तियो ने अपनी लेखनी के प्रसाद से इसे एक सग्रहणीय/अविस्मरणीय अक वना दिया है। यह डॉ नेमीचन्द की सम्पादन-कला का एक सर्वोच्च शिखर है। 'ॐ विशेषाक' के दो वर्ष के वाद इसी शृखला मे 'तीर्थंकर' का 'मृत्युञ्जय विशेषाक' जनवरी, १९९८ मे प्रकाशित हुआ। यहाँ आते-आते ऐसा लगा कि गगोत्री के उद्‌गम से गगा की जो पावनधारा एक लघुत्तम रूप मे फूट कर एक उद्दाम वेगवती धारा वन गयी है। उसके कल-कल नाद से नभ-मण्डल कम्पित-झपित है। सूर्य के रथ मे जुते अश्व चकित-थकित है। इस सम्पादक की सुदीर्घ सारस्वत साधना का नवनीत अपने पाठको को उदारता से परोसा है, उसका सेवन कर कोई भी मनुष्य मृत्यु के भय मे मुक्त हो जाता है। वह महसूस करने लगता है - मृत्यु तो मगलकारिणी है। सर्व दु ख-हन्त्री है। जीवन की अकाट्य सच्चाई है। यह अनिवार्य है। कभी भी आ सकती है। इससे भय/आतक कैसा?

'मृत्युञ्जय विशेषाक' की घोषणा है -- मनुष्य मरमधर्मा नही है। वह तो अमृत की सतान है- अमरत्व, अजरत्व के खुले चौगान मे खेलने वाली कोई भी होनी-अनहोनी विभीषिका उसे सत्रस्त नही कर सकते।

भारत मे मृत्युञ्जयी साधना का अभ्यर्चन महायोगी श्री अरविन्द ने किया। उनका 'सावित्री' महाकाव्य मृत्यु पर मनुष्य की विजय का शखनाद है। उनका मत्र-वचन है-- 'एक दिन अवश्य आयेगा, जव प्रेम इस जगत् को मृत्यु से मुक्त कर देगा।'

श्री अरविन्द की सहयोगिनी मीराम्बिका श्रीमाँ मृत्यु-भय से मनुष्य-जाति को अभय/आश्वस्त करती हुई कहती है– 'ऐ, मेरे प्यारे दु खी और अज्ञ बच्चो! और तू, रे विद्रोहिणी प्रचण्ड प्रकृति! अपने हृदयो को उन्मुक्त करो, अपने वेग को शान्त करो। वह देखो दिव्य प्रेम अपनी सर्वशक्तिमत्ता के तुम्हारी आ रहा है। वह देखो, ज्योति अपनी निर्मल प्रभा के साथ तुम्हारे अन्दर प्रविष्ट हो रही है। यह मानवीय, पार्थिव काल सभी कालो मे सबसे अधिक सुन्दर है। हर एक, सभी इसे जाने और उपभोग करे– यह परम पूर्णता जो प्रदान की गयी है। उसे सभी बिना अपवाद, एक-एक व्यक्ति जाने और उसका रस ले सके।

'ओ शोकाकुल हृदयो और दुश्चिन्ताग्रस्त ललाटो! ओ मूढ अन्धता और अशुभ इच्छा! तुम्हारी दुस्सह वेदना शान्त हो जाय और एकदम दूर हो जाय।'

मृत्यु के प्रति अभय राग रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी अलापा है। उनका यह कथन रेखाकित करने योग्य है–

'घाटे घाटे धुरब ना आर भासिये आमार जीर्ण तरी,
समय येन हयरे एबर ढेऊ-खाओया सब चुकिये देवार,
सुधाय एबार तलिये गिये अमर हये रव भरि।'
अर्थ- 'अब और नही फिरूँगा मै घाट-घाट
लेकर अपनी यह पुरानी नाव!!
लगता है; लहरो के थपेडे खाते फिरने के दिन बीत गये
इस बार सुधा पाने के लिए तल मे बैठूँगा
और अमर हो रहूँगा, भर कर!!'

यह निर्विवाद है कि 'तीर्थंकर' का यह 'मृत्युञ्जय विशेषाक' मनुष्य को मृत्यु से आँखे लडाने और उसे ललकारने का साहस प्रदान करता है। यह शिराओ मे उष्ण रक्त का सचार कर, मानव के शिव-सकल्पो को पूरा वज्र-शक्ति और ऊर्जा का अक्षय कोष बन गया है।

साहित्य के शोधार्थियो के लाभार्थ 'तीर्थकर' मे वर्ष-समाप्ति पर लेखानुक्रम/लेखकानुक्रम (विवरणिका/अनुक्रमणिका) प्रकाशित करने की एक सुखद परम्परा है, जिसका अवलम्बन लेकर कोई भी अभीप्सु उसके अतलान्त सागर में पैठ कर वाँछित रत्नराशि खोज सकता है। यह उसकी अपनी एक खास विशेषता है।

हम तो यह चाहेगे कि 'तीर्थंकर' एव 'शाकाहार-क्रान्ति' जैसे लोकप्रिय मासिको को भारत सरकार एव म प्र शासन द्वारा अपने महाविद्यालयो, विश्वविद्यालयो एव वाचनालयो/ग्रन्थालयो को उपलब्ध कराया जाना चाहिये, ताकि देश की नई युवा पीढ़ी सही और सच्चे रूप मे धर्म, अध्यात्म और दर्शन को आत्मसात् कर सके। वध-विहीन-विश्व केवल युटोपिया/काल्पनिक अवधारणा नही है, बल्कि वह जीवन-

विज्ञानमूलक है। वह भारतीय सस्कृति के लिए प्राणवायु का स्रोत है। अत 'तीर्थकर' एव 'शाकाहार-क्रान्ति' - जैसे मिशनरी मासिक पत्रो को हिंसाचार की आँधी को सफलतापूर्वक रोकने के लिए जरूरी ससाधन उपलब्ध कराये जाने चाहिये, ताकि देश मे एक स्वस्थ वायुमण्डल निर्मित हो सके।

आकलन 'गद्य' से अब अपने अन्तिम चरण मे 'पद्य' पर अग्रसर है, जिसमे 'शाकाहार-क्रान्ति' और उनके प्रणेता का अन्त स्फूर्त आकलन है।

शाकाहार-क्रान्ति-गगा
राज्य क्रान्ति
सामाजिक क्रान्ति
आर्थिक क्रान्ति
आध्यात्मिक क्रान्ति-
और अब
शाकाहार-क्रान्ति
भारत मे,
शनै शनै एशिया मे,
साथ-ही-साथ
नारगी-सी गोल
दुनिया मे,
एकदम नयी
भाषा-भाव-तेवरवाली,
नयी पहचान वाली,
नयी चाल-ढाल वाली,
गगा की महाधारा बन
उतर रही है
उद्दाम वेग से।
जो भी खाई-खन्दक-पहाड
इसके आडे आता है
उसे वह
समतल मैदान मे
बदल देती है।
शाकाहार-क्रान्ति की
यह पावन गगा
मनुष्य-जाति के,
विश्व-मन के,
मैल को निरन्तर
धो रही है/
परिमार्जित कर रही है
दुग्धोज्ज्वल बना रही है।
सुनो भाई
जापान की सवेदनशीलता,
चीन की बौद्धिकता,
और भारत की आध्यात्मिकता
अपने साथ ले कर
शाकाहार-क्रान्ति की
यह गगा पृथ्वी के कण-कण को
अनुप्लावित करने निकली है।
मासाहार -
असुरो का भोज्य है
जो विश्व-शान्ति के लिए
विस्फोटक है।
बेजुबान/निरीह/असहाय
पशुओ के लिए
मौत का वारट है।
इन्हे कत्ल करने के लिए
जितने भी यन्त्रीकृत कत्लगाह
है–
वे मानवता के लिए कलक है।
मुद्राराक्षसो के वे सब
खूनी उपनिवेश है
जो जुबान के चटखारो के लिए
भोले इसानों के पेटों को
कब्रगाह बना देने को आमादा
है।
शाकाहार-क्रान्ति-
मास-निर्यात के खिलाफ
इसान की चेतना को जगा रही
है।
शाकाहार-क्रान्ति-गगा के
भागीरथ
डॉ नेमीचन्द जैन।
तुम इसके ध्वज वाहक हो,
करुणा का साम्राज्य धरा पर
कायम हो–
यह स्वप्न तुम्हारा/लक्ष्य तुम्हारा
कभी नही निष्फल होने को।
सूरजवशी भागीरथ के
सत्य-सनातन आत्मोदय के
तुम प्रतीक हो/पुण्य-पुँज हो,
प्राणिमात्र के मीत-सखा हो।
एक बार फिर यह धरती
महावीर, गौतम, गाँधी के
सत्य/अहिंसा/सदाचार का
शान्तिनिकेतन बन जाए,
विजय-पद्म खिल-खिल जाए,
माँसाहार से मनुज सदा मुक्ति
प

संपादकीय आलेखो के आलोक मे डॉ. नेमीचन्द जैन

किसी भी देश के प्रधानमत्री की जवाबदारियाँ अपने देश के सर्वांगीण-सर्वोच्च हितो, अपनी जनता, और शेष दुनिया के प्रति होती है, ठीक इसके समानान्तर किसी पत्र के सपादक की जवाबदारियाँ होती है अपने देश के प्रति, उसकी सस्कृति के प्रति, पत्र के पाठको के प्रति और निखिल मनुष्यता के प्रति। इसमे प्राणिमात्र के प्रति करुणा/दया/समता और मैत्री-भाव का सतत् विकास एव पल्लवन भी युगपत् है। फिर यह पत्र चाहे दैनिक हो, साप्ताहिक-अर्द्धसाप्ताहिक हो, चाहे पाक्षिक और मासिक हो-वार्पिक ही क्यो न हो। इसीलिए सपादक को पत्र का 'लोकोमोटिव' माना गया है। सपादक के प्रति यह शीर्प मान्यता किसी-न-किसी रूप मे हजारो वर्षों से चली आ रही है। यह प्राचीनतम है। इसका भास्वर-स्वरूप हमे महर्षि व्यास के रूप मे मिलता है जो वेदो, उपनिपदो और पुराणो के आद्य सपादक के रूप मे वन्दनीय है। जहाँ तक भारतीय पत्रकारिता का सबन्ध है, महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, श्री अरविन्द, रामानन्द चटर्जी, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, गणेशशकर विद्यार्थी ऐसे सहस्राधिक पत्रकार हमारे पुण्य सनातन राष्ट्र मे हो चुके है, जिनके कृतित्व ने एक नये इतिहास को जन्म दिया है। इसी दुग्धोज्ज्वल परम्परा मे डॉ नेमीचन्द जैन का स्थान बन चुका है। हमारे मालव प्रदेश का यह सौभाग्य है कि 'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' जैसे मासिको के माध्यम से वे मूल्यपरक पत्रकारिता की मशाल को अपने मजबूत हाथो मे थामे हुए है। उन्होने व्यावसायिकता के तीव्र अधड-तूफान से इसे सुरक्षित रखा है– अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया है। कोई कसर बाकी न रखी है– अपने पवित्र मिशन की प्राणधारा को अक्षुण्ण/अप्रतिहत बनाये रखने के लिए।

यहाँ हम उनके विगत तीन वर्पो के (यानी मई, १९९७ से लेकर अप्रैल, २००० तक के) कालखण्ड मे लिखे गये सम्पादकीय आलेखो के आलोक मे उनके क्रान्त चिन्तन की कुछ बानगियाँ प्रस्तुत कर रहे है, ताकि सुधि पाठको को अपने इस सारस्वत साधक से आत्म-साक्षात्कार करने मे सुविधा हो सके।

वैसे, हम भलीभाँति उनके स्वभाव और प्रकृति से परिचित है। वे लोकैपणा, (आत्म-प्रचार) और वित्तैपणा से कोसों दूर रहने वाले धीरोदात्त साधक है, लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि कोहेनूर को छिपा कर धूलिछन्न अवस्था मे रखा जाए, जबकि उसका स्थान मानवता के मुकुट मे जोडे जाने के लिए सुरक्षित है।

मालवा के चरित्र पर टिप्पणी करते हुए बादशाह औरगजेब का कथन है– 'मालवा की काली/पनीली मिट्टी अपने बेटो का कभी सही और सच्चा मूल्य नही आँक

पाती। वह तो गीली है, दलदली है, केवल विजेताओ के पाँवो मे लिपटती है। उमने मालवा को 'काबुचि याने मालवा' कहकर सबोधित किया है। मुगलेश्वर की यह टिप्पणी एक वडी हद तक दुरुस्त है। यही कारण है कि मालवा से जो भी साहित्यकार पलायन कर अन्य प्रदेशो मे गये, फिर भले वे श्री वीरेन्द्रकुमार जैन हो, गिरिजाशकर माथुर हो, बालकृष्ण 'नवीन' हो, प्रभाकर माचवे हो, अथवा नरेश मेहता हो, वे सब वाहर जा कर ही चमके, यशस्वी हुए। मालवा मे रहते-वसते हुए वे कभी उपलब्धियो के पहाडो पर अपने निशान नही गाड सके। जहाँ तक डॉ नेमीचन्द की साधना-सुगन्ध के प्रसार का सबन्ध है, मालवा के अतिरिक्त राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, दिल्ली, मद्रास और हरियाणा मे उनकी कीर्तिकौमुदी निरन्तर फैल रही है। यह हमारे लिए प्रसन्नता का विषय है, लेकिन डॉ नेमीचन्द इस ओर से विल्कुल अनासक्त है। निर्लिप्त है। वीतराग है। महाराष्ट्र ने तो 'पत्र-महर्षि' के अलकरण मे सम्मानित कर स्वय को गौरवान्वित महसूस किया है।

समाज के शरीर को एक सुदक्ष अनुभवी डॉक्टर की तरह जब वे जाँचते/परखते हुए निदान पर पहुँचते है, उस समय उनकी भूमिका अत्यन्त निर्भीक-निर्मोही हो जाती है। वे जैन समाज के अविच्छिन्न अग पेड-पौधो और उन शाकाहारी पशु-पक्षियो को मान्यता देते है। सपादक की मूल व्यास-मुद्रा मे उनका कथन है 'वस्तुत जैन तो है वे पेड-पौधे, जिनका आहार आकाश है, वे पशु-पक्षी जो निशि-भोजन नही करते। कोई शाकाहारी पशु-पक्षी निशि-भोजन नही करता, हाँ, वलात् उस पर थोपा जाए तो वात विल्कुल अलग है।' (सपादकीय अंश, 'तीर्थकर' मई-जून, १९९७)

ज्ञानगर्भित सूक्तियो की छटा उनके प्रत्येक अग्रलेख मे पायी जाती है। अपनी सक्षिप्तता मे यह ज्ञानार्णव का प्रतिनिधित्व करती है। यथा, 'स्वास्थ्य और सूरज अजीज दोस्त है।' 'वीतरागता सहिष्णुता का अलकरण है।' ऐसे सूक्त-वचन प्रभूत मात्रा मे प्राप्त होते है।

'किरणमयी' के छद्म नाम से डॉ नेमीचन्द ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर चर्चित 'भगवान् ओशो' के विरुद से विज्ञापित आचार्य रजनीश के चिन्तन को सवालिया निशान के घेरे मे खडा कर दिया है। उन्होने 'शाकाहारी मास' की 'ओशो-अवधारणा' को 'घातक शब्द-प्रयोग' कह कर उसके प्रति अपनी सशक्त असहमति और प्रतिक्रिया व्यक्त की है। (देखे, 'शाकाहार-क्रान्ति' जून-जुलाई, १९९९) शाकाहार के पक्ष मे एक प्रभावी वायुमण्डल/वातावरण निर्मित करने मे डॉ जैन 'अर्जुन की आँख' बने हुए है। उन्हे अपने शाकाहार-क्रान्ति-मिशन के अतिरिक्त कुछ नही न दीखता, न महसूस होता है। यह उनकी इस्पाती समर्पण-भावना का साक्षीभूत तथ्य है, जिसे नकारना कठिन है। वे डँके की चोट पर घोषणा करते है 'परमवीर चक्र से अलकृत नायक जदुराजसिंह शुद्ध शाकाहारी थे।'

यहाँ मुझे अहमदनगर (महाराष्ट्र) के देश-प्रसिद्ध पहलवान छब्बू का सहज स्मरण हो आया है, जिन्होने अपने जीवन मे पाँच हजार से अधिक कुश्तियो मे यश अर्जित किया। वे अतिम कुश्ती तक अजय रहे, उन्होने अपने इदौर मे लिये गये एक साक्षात्कार (सन् १९५४) मे प्रकट किया कि वे शुद्ध शाकाहारी है। पहलवानो के इष्टदेव श्री हनुमान शाकाहारी थे। फिर उनके जैसा हनुमान-भक्त क्यो और कैसे माँसाहारी हो (या बन) सकता है? आज भी अपनी वृद्धावस्था मे छब्बू पहलवान 'दक्खन का शाकाहारी काला चीता' के विशेषण से जाने-पहचाने जाते है।

डॉ नेमीचन्द देश के मानस को झकझोरते हुए बतला रहे है कि, आज कितने महँगे पड रहे है कत्लखाने। हकीकत यह है कि इन कत्लखानो मे प्रतिदिन होने वाले बेजुबान निरीह पशुओ का अमर्यादित वध के खिलाफ आवाजे उठ रही है, शाकाहारी वृहद् सम्मेलनो मे प्रस्ताव पारित हो रहे है, विदेशो मे निर्यात मास के विरोध मे प्रदर्शनो के सिलसिले शुरू हो गये है। वह दिन तेजी से नजदीक आता निकट आता जा रहा है जबकि मासाहार को जन-सामान्य एकदम त्याज्य मान लेगा और वह बीते युग की निकृष्ट वस्तु ठहरा दी जाएगी। अब ब्रिटेन, फ्राँस, जर्मनी, इटली और स्वय अमेरिका मे शाकाहार के पक्ष मे वातावरण बनता जा रहा है। यूरोपीय और अमेरिकी जनता की विज्ञानाश्रित शोध-प्रवृत्ति शाकाहार की उपयोगिता को स्वीकार करने लगी है – यह एक अच्छा सगुन है।

'शाकाहार-क्रान्ति' (अप्रैल २०००) के सपादकीय आलेख की निम्नाकित पक्तियाँ मननीय/माननीय है 'जब तक हम कत्लखानो पर ताले नही डालेगे और अहिंसा की ओर अग्रसर नही होगे, भूकम्प, सूखे, और जल-दुष्काल जैसी आपदाओ/ सकटो को स्वप्न मे भी नही रोक पायेगे। हमे चाहिये, कि हम अपनी आँखे खोले और देखे कि जिन्हे हम प्राकृतिक सकट निरूपित कर रहे है, वे प्राकृतिक सकट नही है, अपितु हमारे द्वारा स्वमेव निर्मित सकट है।'

डॉ नेमीचन्द के सपादकीय चिन्तन मे एक ताजगी है। उसमे पिष्टपेशण नही है और नही है परम्परित किस्म की जुगाली, जो पाठको की दिलचस्पी को और आगे और आगे पढ़ने की, गहरे पैठने की उमग को समाप्त कर देती है। हिन्दी पत्रकारिता और विशेषकर मासिक पत्रकारिता के क्षेत्र मे उनके सपादकीय लेखो की एक विशिष्ट पहचान कायम हो चुकी है। 'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' दो ऐसे अहिंसक आयुद्ध है, जिनके माध्यम से वे वध-विहीन विश्व की सरचना मे भगीरथ तप-तल्लीन है। हमारी प्रार्थना है सर्वेश्वर से वे अपने प्राणिमात्र की कल्याण-कामना से प्रारभ किये अपने इस पवित्र मिशन मे सफल/कृतकाम हो। □

डॉ नेमीचन्द जैन



डॉ. नेमीचन्द जैन साहित्य
एक अवलोकन

पुस्तक के १७ अध्यायो के अन्तर्गत ८०० पृष्ठो मे डॉ नेमीचन्द जैन द्वारा अर्द्धशताब्दी मे लिग्वित मामग्री का मर्वप्रथम मकलन/मपादन किया गया है। अक्टूबर, १९९८ मे प्रकाशित प्रथम मस्करण का मूल्य एक मौ रुपये है।

डॉ. नेमीचन्द जैन
व्यक्तित्व और कृतित्व

पुस्तक के ४१ विशेप लेखो मे ३१ माहित्यकारो, ममाजमेवियो और परिजनो द्वारा डॉ नेमीचन्द जैन के वहुआयामी/वहुमुखी व्यक्तित्व के विविध पक्षो/पहलुओ को उजागर किया गया है। आलेखो मे उनकी सितम्बर '९८ से मार्च '९९ तक की विविध रचनाओ का समावेश है और अपने बारे मे– उनका आत्मकथ्य भी है। रगीन आवरण-सहित ४०० पृष्ठीय पुस्तक के प्रथम सस्करण (मई १९९९) का मूल्य एक सौ रुपये है।

डॉ. नेमीचन्द जैन की सारस्वत साधना
एक झलक

पुस्तक के ११ अध्यायो मे श्री रत्नेश कुसुमाकरजी ने डॉ नेमीचन्द जैन के बहुआयामी व्यक्तित्व/कृतित्व का विवेचन किया है। रगीन आवरण-सहित ६४ पृष्ठीय पुस्तक के प्रथम सस्करण (मई, १९९९) का मूल्य बीस रुपये है।

डॉ. नेमीचन्द जैन के साहित्य सिन्धु मे-से
कुछ अमृत बिन्दु

पुस्तक के ८ अध्यायो मे श्री सुरेश सरल द्वारा डॉ नेमीचन्द जैन के व्यापक/विविध पक्षो/ पहलुओ को उजागर किया गया है। रगीन आवरण-सहित ६४ पृष्ठीय पुस्तक के प्रथम सस्करण (मई १९९९) का मूल्य बीस रुपये है।

हीरा भैया प्रकाशन, ६५ पत्रकार कॉलोनी, कनाडिया मार्ग, इन्दौर-१ (म प्र)



डॉ. नेमीचन्द जैन

सन्दर्भ साहित्य : सहचिन्तन-२



धर्ममय विज्ञान

जो लोग ईमानदार वैज्ञानिक है, वे ही वस्तुत ईमानदार/सच्चे धार्मिक है, इसी तरह जो लोग पूरे ईमान/सपूर्ण निष्ठा के साथ धार्मिक है, वे ही पूरी ईमानदारी के साथ सच्चे वैज्ञानिक है। धर्म और विज्ञान दो विरोधी ध्रुव नही है, एक है, हाँ, दोनो मे एक मूलभूत अन्तर है। विज्ञान 'है' है और धर्म 'चाहिये' है। 'चाहिये' का द्वार 'है' की कुण्डी खटखटाने से नही खुलेगा और 'है' का द्वार 'चाहिये' की दस्तक से नही खुल पायेगा, किन्तु हम आश्चर्यचकित रह जायेगे यह जानकर कि वस्तुनिष्ठ ज्ञान की कुँजी से हम धर्म-का-द्वार सिर्फ खोल ही नही लेगे, बल्कि उस खुले हुए द्वार मे हो कर रोशनी को भीतर आने की इजाजत भी दे सकेगे। धर्म और विज्ञान मे कोई शत्रुता नही है, सवाद नही है, सवाद नही है, सवाद यदि बनता है तो दुनिया मे वह घटित हो सकता है जो न कभी हुआ था और न जिसकी कल्पना हम कर सकते है। मानव-मगल की सच्ची नीव हम इस मैत्री मे ही डाल सकते है।

धर्म और विज्ञान दोनो तर्क की अनुपस्थिति मे एक कदम भी आगे नही बढ़ सकते – दोनो के लिए तर्क की एक सुसगत भूमिका चाहिये। समझना चाहिये हमे कि विज्ञान-के-माध्यम से हम जीवन और जगत् के बुनियादी सिद्धान्तो को समझते है (समझ सकते है)। और धर्म की भावनाशीलता के कारण उन्हे अपने जीवन मे सुदृढ़ कर सकते है। विज्ञान और धर्म की अलग-अलग जिम्मेदारियो को जब तक हम ठीक से नही समझ लेगे – हम इन्हे अपने जीवन मे/जन-जीवन मे उपयुक्त अभिव्यक्ति नही दे पायेगे।

वस्तु-स्वरुप की खोज का बिन्दु ही वह बिन्दु है जहाँ पहुँच कर विज्ञान और धर्म दोनो एकाकार हो जाते है। वास्तव मे विज्ञान और धर्म ने हमे वह सब उपलब्ध करा दिया है, जो जरूरी था। अब हमारी जिम्मेदारी है कि, हम इन उपलब्धियो को चरित्र की भाषा मे अनुवादित करे और दुनिया भर मे उसे प्रकट करे। कमी यह है हमारे जमाने की कि हम बहुत कहते बहुत है, किन्तु उसका एक छोटा-सा हिस्सा भी आचरण मे प्रकट नही करते। बहुत साफ है कि जब तक 'शब्द' के साथ 'चरित्र' नही जुडेगा, तब तक यह सभव ही नही होगा कि धर्म और विज्ञान हाथ मिला पाये। ये दोनो हाथ मिला सकते है जब मनुष्य दोनो की मशा को बिना किसी पूर्वग्रह के जाने और उसे जीने का प्रयत्न करे।

सवाल उठता है धार्मिक कौन है, या हो सकता है? वैज्ञानिक कौन है, या हो सकता है? धार्मिक वह है जिसने स्वय को स्वार्थ और अन्धविश्वास से मुक्त किया है और अज्ञान की बेडियाँ काट फेकी है, क्योकि बहुत स्पष्ट है कि अज्ञान के साथ हिंसा, और असत्य का रिश्ता है और ज्ञान के साथ अहिंसा और सत्य का। धर्म और विज्ञान का उत्तरदायित्व है कि वे मिल-जुलकर भ्रान्तियो और अन्धविश्वासो को दूर करे और कार्य-कारण-सबन्ध के औचित्य की . करे।

–डॉ. नेमीचन्द जैन

डॉ. नेमीचन्द जैन
सन्दर्भ साहित्य : सहचिन्तन-२

सपादन
प्रेमचन्द जैन

हीरा भैया प्रकाशन
६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाडिया मार्ग, इन्दौर-४५२ ००१

नये क्षितिज : नये आयाम

'डॉ नेमीचन्द जैन सन्दर्भ साहित्य एक सहचिन्तन' की यह पुस्तिका पूरक है, पूर्ति भी है। नेमी साहित्य के अध्येताओ के मध्य परस्पर जो विचार-विमर्श होता रहता है, वह सहचिन्तन के रूप मे सतत् प्रवाहमान है। जो नया-नया सूझ पडता है, उसका आदान-प्रदान प्रत्यक्ष/परोक्ष रूप मे सहजतापूर्वक होना स्वाभाविक है। इसे एक प्रकार से नेमी साहित्य के सन्दर्भ मे परिचर्चा भी माना जा सकता है। उसका प्रारम्भिक परिणाम है यह पुस्तिका। नेमी साहित्य का सतही स्पर्श करने पर जो स्फूर्त हो रहा है, उसकी झलक इसमे है। एकाग्रतापूर्वक अध्ययन-मनन स्वाध्याय के अन्तर्गत करने पर इसमे जो नये क्षितिज नये आयाम है, उनके दर्शन हो सकते है। इसमे समग्र चिन्तन की आवश्यकता है।

व्यक्तित्व और कृतित्व इतने अन्तर्निहित रहते है कि सकल्पित होने पर भी दोनो को पृथक् रखना सभव नही हो पाता है, कही-न-कही लक्ष्मण रेखा इधर-उधर हो जाती है। कृतित्व मे विशिष्टता व्यक्तित्व के कारण होने से उसका उल्लेख होना सहज है। फिर भी कृतित्व के अन्तर्गत कृतियो को ही रेखाकित करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तिका मे जो भी सामग्री सपादित की गयी है, वह भी पूर्व निर्धारित नही है। समय-सीमा/प्रकाशन-अवधि को ध्यान मे रख कर सयोगपूर्वक सयोजन स्वत /सहज होता गया है। नये सन्दर्भो मे नये-नये क्षितिज नये-नये आयाम नेमी साहित्य मे भी अन्तर्निहित है, इसका सकेत इसमे है। समयानुसार उनके उद्घाटन/प्रकाशन की प्रतीक्षा है।

— प्रेमचन्द जैन

डॉ नेमीचन्द जैन सन्दर्भ साहित्य : सहचिन्तन-२ सपादन प्रेमचन्द जैन, © हीरा भैया प्रकाशन, ६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाडिया मार्ग, इन्दौर-४५२००१ (म प्र), टाइप सैटिंग एव मुद्रण . नईदुनिया प्रिन्टरी, इन्दौर-००० , प्रथम सस्करण अगस्त, २०००, मूल्य दस रुपये।

गद्य-गीतों के दर्पण में

जिन-शासन के लिए

—रत्नेश कुसुमाकर

जिन-शासन ही
मानवता का प्राण-पवन है
प्राणिमात्र का एकमात्र सबल है
ब्रह्माण्डो का शान्ति कवच है।

जिन-शासन मे
सिंह/गाय/हिरन/वकरी
एक घाट पानी पीते है
सहजीवन के महाभाव मे जीते है।

समता का सगीत यहाँ
अभिगुजित होता दिशा-दिशा मे
सहनशीलता की सुगन्ध भी
फैली-पसरी हर उपवन मे।

यहाँ सदा वसन्त की छायी हरियाली है।
रोग/शोक/दु ख/द्वन्द्व नही है
डाल-डाल पर कोकिल का कूजन है,
हिंसा की चीत्कार नही है ईथर मे।

जिन-शासन के लिए
तुम्हारा यत्न ।भेरु —
नभ को छूने की होड लगाता,
अचल/अकम्प श्रद्धा का दीपक
अधड-औ' तूफानो मे भी रोशन करता।

गिलहरी का सहयोग
राम को मिला अयाचित,
वह तुमको भी मिलना निश्चित है।
अतिम विजय सदा सत्य की होगी,
तीर्थंकर प्रभु की वाणी त्रिकाल सत्य है।

समय-सार की ज्योति

अपनी ग्रन्थ-गुफा मे बैठा है
एक सहज ध्यान-योगी
अभ्यन्तर मे चिन्तन-चक्र चलाये
निर्मल प्रज्ञा के फूल खिलाये
दुनिया के सब राग-विराग भुलाये
क्षण-अनुक्षण के मूल्यो को निर्धारित करता
ऋतुचक्रो पर दृष्टि गडाये
समय-सार की ज्योति जगाता
बहुजन सुखाय की चादर बुनता
उसने अनहद नाद सुना है
उसने प्रणव-सगीत सुना है
उसने मानवता के विकसन का पथ चुना है
जन्म-जन्म के सभी कषायो को उसने निर्मूल किया है
वह वीतराग है/ विगत शोक है/ अनिकेत है/ दु खव्रती है
वह व्यक्ति—समष्टि के अन्तर को मिटा चुका है
वह निर्मोही है, शिथिलाचारो का दुश्मन है
वह पिनाक-पाणी है शकर का विग्रह
वह नीलकण्ठ है/ आशुतोप है
सदा अपरिग्रही/ अजातशत्रु।
केवल दुनिया को देना ही जिसने जाना
सुकृतो का जो रखता आया अकूत खजाना।

प्राणि अभय अभियान

देवनार औ' अलकबीर
यन्त्रीकृत/अत्याधुनिक/विराट्-विशाल
पशु-वधशालाओ के
सम्प्रभु सघ/मालिक/ पैरबीकार
न्यस्त स्वार्थों के सौदागर,
तुम हिरण्याक्षी असुर भाव से
चिन्मय भारत की
गगा-जमुना सस्कृति को
केवल कागद-की-किश्ती मान
बेजुबान पशुओ के
उमडते रुधिर-की-नदियो मे बहा रहे हो
अट्टहास करते हो,
तुम कितना बडा अक्षम्य
पाप करते हो।
विरोधी आवाजो पर
खूनी तेवर दिखलाते हो/गुर्राते हो।
तुम सब मानवीय मूल्यो को
जमीदोज करते हो
दुर्भिक्षो/भूकम्पो/बाढ़ो/
अतिवर्षा/अवर्षा/सूखा को
चिल्ला-चिल्ला कर आमत्रित करते हो,
दिशा-उपदिशा मे
व्याधियाँ/बीमारियाँ फैलाते हो।
अब यह सब नाटक बन्द करो।
मुद्रा-राक्षस का हाहाकारी शासन
यहाँ नही जमने पायेगा,
हिंसा-का-ताण्डव नृत्य नही चलने पायेगा।
यह महावीर/गौतम/गाँधी की धरती है,
सावधान, अब शोर-शराबा बन्द करो।

हे नव सृजनव्रती/अहिंसा अर्चक!
तुम्हारा प्राणि अभय अभियान
दिन-अनुदिन बढता ही जायेगा
निष्कण्टक होगा इसका पथ
पूरे भू-मण्डल मे यह इक दिन
अप्रतिहत गति सिद्धकाम होगा।

तुम पत्रकार हो

तुम पत्रकार हो
इस वसुधा के कुम्भकार हो,
मानव-आत्मा के शिल्पी हो
तुम अनासक्त हो/निर्विकार हो
तीक्ष्ण धार से
अपनी प्रखर लेखनी की
युग-सत्यो को
अनावरित करते हो
अपनी थापी से
नई-नई प्रतिमाये गढते हो
विश्व-समस्याओ के
वज्र तालो को चूर-चूर करते हो
क्रूर नियति के लौह कपाटो को खोल
मानवता का पथ प्रशस्त करते हो
भेदो मे-से अभेदो को छाँट
अपमिश्रण से शुद्ध तत्त्व को छान
जगत् को अर्पित करते हो
वध-विहीन धरती का अणु-अणु आनन्दित हो जाये
तुम हृद्-तन्त्री के तारो को
सदा-सर्वदा कस कर रखते हो
हाँ, तुम पत्रकार हो
अनमिल आखर शब्द-समूहो मे।

डॉ. नेमीचन्द जैन का 'आत्म-परिचय' : पाँच चित्र

—सुरेश सरल

एक

"मेरा जीवन/प्रश्नवाचको की एक अविराम पक्ति है
एक ऐसा बीहड वन है/जिसमे
अनबोये/बिन बरखा के,
विस्मय के प्रश्नो के बिरवे/ऊग आये हैं।
सच तो यह है कि/ये ही
अनकतरे/अनब्यौते/अनबने विरख
मेरे मन भाये है। (पृ ३८)

...

यह जीवन/एक खेत है।
इसमे/घटनाएँ बोता हूँ/जो/
कालान्तर मे/समस्याओ की फसल
लहलहाती है
यही मेरी थाथी है/जिन्हे लिये
अपनी छाती पर/जिन्दा हूँ। (पृ ३९)

...

जो भीतर बहुत गहरे/व्रण हो गया है
उसे बहने दो
तुम्हे हक है तो इतना कि उसे/छुओ मत
तुम्हारे छूने से बात (वेदना) बढ़ जायेगी। (पृ. ५१)

..

(और परिवार?)
परिवार एक भीड है।
किन्तु मैं समझता हूँ वही/वसुधा की रीढ़ है।
यहीं सब सबक मिलते हैं।
यहीं/प्रतिभा के गुलाब खिलते हैं।
भिन्न रुचियो के दीवाने कई
यहीं, इस प्रयाग मे, आकर मिलते है।
झगडते हैं किन्तु लक्ष्य एक है इनका
मार्ग अलग हैं/करनी भिन्न है,
परिवार शायद इसी की सज्ञा है। (पृ ४०)

दो

मै पढ रहा हूँ गाँठि खुल रही है।
मन की, तन की, चेतना की।
पौर-पौर मे, नस-नस मे, रेशे-रेशे मे
एक/नव स्फूर्ति की सुहागन अनुभूति से
धन्य हुआ हूँ,
ग्रन्थ मे-से
निर्ग्रन्थता का उठ खडा होना
मेरे लिए सुखद है। (पृ ६६)
...
कृतियो और आकृतियो के अतर को समझो।
आकृतियाँ कुछ! कृतियाँ कुछ!
ससार यही है।
यह ऐसा ही बना रहेगा। (पृ ४४)
...
रूप कभी स्थायी नहीं होता है
रूपायित स्थायी होता है।
आकृति कभी शाश्वत नहीं होती
आकृत शाश्वत होता है
देह, इसलिए, अस्थायी है
विदेह की नीव गहरी/पुख्ता है
उसे मरण का कोई खौफ नहीं है
वह मरण का रण जीत सकता है (पृ ६८)
...
शब्द का रग-रेशे मे जानना/वस्तुतः
सबके वश की बात नहीं है
शब्द भी निर्वसन होता है/किसी निर्वसन के सामने
जिसने वासना के वसन पहन रखे हो—
शब्द/उनके सामने/लाख कोशिशे पर भी
निर्वसन नहीं पाता। (पृ ६२)
...
जय के उदय मे-से मूक जब सशब्द हो पडे
तव/वे लोग/ जो अभी
अध्यात्म का/क ख ग/ अपनी पाटी पर झेल रहे है
स्तव्ध हो पड़ते हैं।

कुछ लोग/सत-असत सब
शब्द-दुर्ग के भीतर प्रवेश नहीं कर पाते
शब्द उन्हे छलते/सलते रहते है
शब्द उनकी दुर्बलताओ से परिचित होते हैं
वे जम कर उनका इस्तेमाल करते है
शब्द उनसे खेलते हैं, वे शब्द से नहीं खेल पाते। (पृ ६०)
...
अस्मिताएँ गलती नहीं हैं,
टलती भी नहीं हैं,
सिर्फ बलती-उबलती हैं,
दूसरो के लिए
ताकि खुद
उजली/निरन्तर बनी रहे (पृ ६५)

तीन

ज्ञान की भूख को उद्दीप्त बनाये रख सकूँ
अनासक्त, उदासीन नहीं
बनकर कुछ कर सकूँ
भाषा का पूरा सस्थान मुझे सुलभ हो
उसे सश्लिष्ट-विशिष्ट सभी रूपो मे देख सकूँ।
अर्थ की भगिमाएँ
शब्द की गरिमाएँ
अस्तित्व 'अ' से 'ज्ञ' तक विदित हो मुझे
तथापि 'अ-ज्ञ' बना रहूँ।
'वि-ज्ञ' का दर्प/दम्भ मुझे छुए नहीं। (पृ ५६)
...
जो जितना गहरे/गया है
उसे उतना/गहराव/मिला है
उथले मे गहराई खोजने वालो को वहाँ
कुछ मिले/यह कैसे सभव है? (पृ ६३)
•
जहाँ कामना अनुपस्थित है
और चरण स्वरूपाचरण मे
अबाधित वर्द्धमान हैं
गति पकडे हुए हैं,
वहाँ/मुक्ति खुद-ब-खुद आती है
चरण चूमती है, कृतकृत्य होती है। (पृ ५८)
•

देख रहा है नीचे कितना हाहाकार है
कितना सघर्ष है
कितना सघर्ष है, सत्रास और तनाव है?
लोग किस तरह भगुरताओ मे लिपटे
बेसुध-बेमान जूझ रहे है परस्पर
जर/जमीन/जायदाद पर।
कोई मार रहा है, कोई/मर रहा है,
सब शत्रुताओ मे कराह रहे है
सब 'बटोर' रहे है।
'उलीच' कोई नही रहा है।
जो/उलीच रहा है, वह भी,
अपने उस उलीचने-मे-से
सचय की आश लगाये बैठा है। (पृ ७३)
...
कुछ भी ढका/प्रच्छन्न अब नही है।
सम्यक्त्व के सनातन प्रकाश ने
अंधकार के तमाम/बखिये उधेड दिये है
सब कुछ नग्न हुआ है
कहीं कोई परिधान या छल नहीं है,
जो/किसी स्थिति को ढँके
या छुपाये,
सम्यक्त्व खुले आकाश की तरह
हर पृष्ठ पर/गुम्बद ताने हुए है
यहाँ कोई पूर्वाग्रह भी नही है
सब कुछ उजागर/खुला
निष्कपट और निष्कलुष है। (पृ ६८)

चार

मै हटा नहीं हूँ रेशे भर भी
अपनी मुख्य धारा से, तुम हटे हो।
मुझे/नहीं लौटना है
तुम्हारी उस/विकृत-विष-धारा मे
जिसमे रह कर तुम कत्ल-खून करते हो/और
भगवान् को जेल की सलाखो के पीछे कैद रखते हो।

मेरे प्रभु मुक्त हैं, खुले आकाश तले-पले हैं।
वे कहीं भी हैं, कभी भी हैं,
वे वीतराग प्रभु हैं,
उन्हे पाने के लिए मुझे कहीं नहीं जाना है,
सिर्फ स्वय को/स्वय मे पाना है।
...
लगता है/अब ऐसा
कुछ भी नहीं बचा है
जो/दुर्बल, क्षीण, सकलुष हो।
चारों ओर मगल है
अमगल ने अपने बिस्तर समेट लिये हैं। (पृष्ठ ६६)

पाँच

[यही है डॉ नेमीचन्द का/वह परिचय/जिसके माध्यम से-
उनके भीतर/भीतर के व्यक्तित्व को
वाँचने का/प्रयास किया गया है।
वे साहित्य-जगत् के सूर्य नहीं हैं
विचार-जगत् के प्लूटो नहीं हैं
पर/अपने-आप में 'कुछ' हैं।
वह 'कुछ' जो महाकवि तुलसी में था,
वह 'कुछ' जो सुकरात में था/उनमें भी है।
उनके व्यक्तित्व और/कृतित्व पर/अभी
और कितने ग्रन्थ रचे जायेंगे? नहीं जानता?
जानता हूँ इतना कि उनके द्वारा
उगाया/सूरज डूब न पाये
फसल सूख न पाये/तो
हमे 'अपनी' योजनाएँ, 'उनकी' तरह बनानी होंगी।
..
उक्त पक्तियाँ जो "——"
(इनवरटेड कॉमा) में हैं/वे
मैंने नहीं लिखी हैं वे तो
उन्हीं की रचनाओं मे उठाये गये
'शब्द-चित्र' हैं/
जिन्हें जोडने मे/डॉ नेमीचन्द
'अतस्' का चित्रांकन होना है।
...

उनकी कविताओ को पढ़ाते हुए/ मैने पाया है
कि अनेक पक्तियाँ/स्वतत्र पक्षियो की तरह
मेरे/मानस मे उड़ने लगी है और
उनकी थाती का/परिचय प्रदान कर रही है।
मैने/उन राजहँसो/पक्तियो के चित्र
उतार कर, यहाँ सिलसिले से प्रस्तुत कर दिये है।
मेरा कुछ नहीं है।
...
मेरे पास विचार थे, है, पर मुझे वे/उनकी
रचनाओ/कृतियो से ही प्राप्त करने थे।
उनकी पुस्तक 'कविताएँ' इस प्रयोग मे मार्गदर्शक बनी
और उसने बतलाया/कि 'कृतियाँ' बोलती है,
उनसे/आवाज अनुगुँजित होती रहती है/और
उनके हार्द मे/रचनाकार का परिचय
समाया रहता है/जिसे पाठक की प्रज्ञा
अवश्य खोज निकालती है।
इस/लेखन को पूर्ण करते हुए/याद आया कि
यदि युगान्तरकारी पाठकगण भी
डॉ. साब के विषय मे 'दो शब्द' कहना चाहे तो
क्या कहेगे?
उत्तर नहीं की कृति से उठाया/जो इस तरह है,
जमाना कहेगा उन्हे :—]
"वह अक्षरजयी है।
क्षर के क्षार का भय उसे नहीं है।
उसका एक-एक वर्ण है, एक-एक शिलालेख है,
उसने साहित्य को जो दिया है
वह प्रणम्य है।
उसने जन को जो दिया है, वह प्रणम्य है।
जन-जीवन को जो दिया, वह प्रणम्य है।"

(कविताएँ डॉ नेमीचन्द जैन, हीरा भैया प्रकाशन, ६५, पत्रकार कॉलोनी, इन्दौर-४५२ ००१)

नेमी साहित्य का लक्ष्य और वैशिष्ट्य

— रत्नेश कुसुमाकर

किसी भी साहित्यकार के रचना-ससार की विशिष्टता के मूल मे उसके बहुआयामी चिन्तन की मौलिकता, उसकी अभिव्यक्ति की वक्र-भगिमा और कोहये कि उसके प्रस्तुतीकरण का कौशल होता है। गीता की भाषा मे यदि कहा जाए तो यह योग का एक पारदर्शी लक्षण है, जो सतत् स्वाध्याय की कोख से जन्म लेता है, जिसके लिए साहित्यकार को अपने अभ्यन्तर मे तप की अग्नि को निर्धूम प्रतिपल/प्रतिक्षण प्रज्ज्वलित रखना पड़ती है। इतना ही नही सत्य की खोज के खातिर उसे कृपाण की धारा पर कदम-दर-कदम आगे बढ़ना होता है। अपने ग्राम की/जनपद की/नगर की और देश-दुनिया की अव्यक्त पीडा उसे उस 'काजी' की मानसिकता मे अकेला पटक देती है, जो तन से कृश है और दो-दो अषाढ़ो की भार सहना जिसकी नियति है। इतनी साधारण-असाधरण प्रक्रियाओ की घाटियो को पार करने के बाद कही साहित्यकार को विशिष्टता प्राप्त होती है।

जहाँ तक डॉ नेमीचन्द जैन द्वारा सृजित साहित्य का सवन्ध है, उसकी पहचान इतनी सहज है/स्वाभाविक है कि उनके नाम या हस्ताक्षर के बिना भी उसे हवा के ठण्डे/शीतल स्पर्श-सा महसूसा जा सकता है। उन्हे विरासत से जहाँ तीर्थंकर महाप्रभुओ के करुणा-कणो की प्राप्ति हुई है, वही वैष्णवजन की 'पीर-पराई' की अनुभूतियो ने उनके सवेदन को समुद्र की गहराई से नवाजा है। यही कारण है कि उनका साहित्य, फिर चाहे वह गद्य मे हो या पद्य हो, वह यात्रा-वृत्त हो, या किसी नर-वरेण्य से लिया गया साक्षात्कार हो अथवा कि 'शाकाहार-क्रान्ति', 'तीर्थंकर' का सपादकीय हो या कि 'शताब्दी-सन्देश' मे प्रकाशित उनका कोई विशेष लेख हो— पाठको को कुछ ऐसा स्वाद मिलेगा, जो अपने-आप मे नवीन तो होगा ही, वही मस्तिष्क के लिए एक ऐसी सात्विक खुराक भी होगा, जिसके प्रभाव से/जिसके सेवन से व्यक्ति विश्वात्मा के समीप अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। यहीं वह बिन्दु है जहाँ-जहाँ नेमी साहित्य अपनी सार्थकता को ससिद्ध करता है।

डॉ नेमीचन्द जैन ने अपनी साहित्य-सर्जना मे पर्वताकार पुस्तको का प्रणयन भले ही न किया हो, उनकी अधिकाश पुस्तके लघुकाय है, सीमित पृष्ठो मे है, अल्पमोली है, लेकिन उनकी गुणवत्ता/प्राणवत्ता और सारवत्ता इतनी जबर्दस्त है कि पाठकगण पढ़ते-पढ़ते विमुग्ध हो उठता है। लगता है, डॉ नेमीचन्द जैन जहाँ तलवार से काम लेना है, वहाँ वे सुई से काम लेने की कला मे महारत हासिल कर चुके है यह एक ऐसी स्फटिक उपलब्धि है, जो हिन्दी-जगत् के विरले साहित्यकारो को ही प्राप्त है। उन्होंने अपने लेखन की गुणवत्ता को बनाये रखने मे पूरी सावधानी बरती है। कहीं भी पिष्ट-पेशण न हो, चर्वित-चर्वण न परोसा जाए — इस दिशा मे वे पूर्णतया जागरूक है। चौकस है। सक्षिप्तता और सूत्रबद्धता ने उनकी मौलिकता मे चार चाँद लगा दिये है।

प्राय यह देखने मे आया है कि साहित्यकार अपनी जगह बनाने के लिए कुछ प्रच्छन्न और कूट कौशल से काम लेता है, इसके लिए वह अपनी रेखा लम्बी करने के लिए दूसरे साहित्यकार की रेखाओ को मिटा देने का दुष्चक्र रचता है — डॉ नेमीचन्द जैन इसे एक घोर अक्षम्य अपराध मानते

है। उन्होने अपने लेखन के प्रथम चरण से ही अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारो द्वारा खीची गयी रेखाओ का खुले मन से सम्मान किया है। उनकी गुणग्राहकता और सदाशयता की ओर कभी भी अगुली नही उठाई जा सकती। यह त्रिकाल असभव है।

पशुवध-विहीन हिन्दुस्तान – कब-कैसे आकार ग्रहण करे, देवनार और अल-कबीर जैसे विशाल/अत्याधुनिक/यत्रीकृत कत्लखाने, जो मानवता के लिए कलक है, वे किस तरह समाप्त हो, यहाँ अहिंसा/करुणा और सहजीवन की त्रिवेणी कैसे प्रवाहित हो – अपने इस मिशन की सफलता के लिए वे अनवरत सघर्षशील है। अपने लक्ष्य के प्राप्त्यर्थ वे अर्जुन की आँख बने हुए है।

डॉ जैन के साहित्य को जो अब नेमी साहित्य की सज्ञा से अभिहित होता है/जाना-पहचाना जाता है, उसकी खास विशेषता यह है कि उसमे विश्व के किसी महापुरुष के वचन, उद्धरण (कोटेशन्स) नही होते है। उसमे जो कुछ है, वह उनकी समाधि-चेतना का स्फुरण है/भाव-तरग है/सत्योर्मि है। वे किसी का छाता उधार लेकर नही चलते। उन्होने स्वय अपने हाथो अपना वितान ताना है। उनके कारवाँ मे सहयात्रियो की सख्या मे निरन्तर वृद्धि हो रही है– यह एक शुभ लक्षण है। फिर भी यह तयशुदा बात है कि यदि उनकी आवाज कोई नही सुनता है, उनकी पुकार अनसुनी हो रही है, तब भी वे अकेले ही अपने लक्ष्य-पथ पर आगे और आगे बढ़ते ही जाएँगे। प्रत्यालीरूढ़ मुद्रा मे उनकी गति-मति अनिरुद्ध होगी। उनके 'क ख ग से लेकर क्ष त्र ज्ञ' तक के अनासक्त कर्म-सजाल मे कही भी लिजलिजी भावुकता नही है। वे यथार्थ की ठोस धरती पर चलने के शुरु से ही अभ्यस्त है।

यह एक सौ टच खरे सोने-जैसी सच्चाई है कि उन्होने कभी किसी पुरस्कार/अलकरण या सम्मान की इच्छा (या कामना) सपोषित नही की, यदि कदाचित् की भी होती, तो उनका सर्वोदयी खादी का झोला कभी का ठसाठस भर गया होता, किन्तु यह उनके लिए स्वप्न मे भी अभिप्रेत नही हो सकता था। वीतराग तीर्थकर का शिष्य वीतरागता अगीकृत करने पर ही बना जा सकता है। वे वीतरागी बन कर ही पशु-सत्ता के विरुद्ध आवाज बुलन्द कर रहे है। उनका सग्राम राघवेन्द्र श्रीराम जैसी रथविहीन स्थिति मे चल रहा है। अन्तिम विजय उनकी होगी, इसमे रत्ती भर सन्देह नही है। जो लोग, जो समूह, जो समर्थकगण उनके सर्वमगली मिशन को सही-सही समझते है, उनका भी एक पवित्र दायित्व है कि पशु-दया के उनके अभियान मे तन-मन-धन से सहभागिता निवाहे। केवल तटस्थ दर्शक बने रहने का अब कोई अर्थ नही है। 'लिप्स-कोऑपरेशन' निरर्थक है। सक्रिय सहयोग दीजिए।

हमे यह तथ्य बिसारना नही है कि पशु-सम्पदा हिन्दुस्तान के अर्थतत्र की रीढ है और रीढ़ मजबूत होनी चाहिये। इसके लिए लोकचेतना जाग्रत की जाना जरूरी है। केवल पानी की लकीरो पर अहिंसक जीवन-शैली की इबारत नही लिखी जा सकती। इसके लिए तो विद्वानो के खून की स्याही चाहिये, जो शहीदो के खून से भी अधिक पवित्र होती है।

जिस दिन गोहत्या पशुहत्या का कलक हिन्दुस्तान के भाल-प्रदेश से मिटेगा/हटेगा/निर्मूल होगा वह दिन सचमुच ही युगान्तरकारी होगा। आइए, उस दिन को शीघ्र ही धरती पर उतारने के [illegible] सकल्प ले। कटिबद्ध हो।

सन्दर्भ साहित्य सहचिन्तन-२/१४

अभिप्राय

'शाकाहार' के स्थान पर 'विज्ञान' होना चाहिये था

'डॉ नेमीचन्द जैन अवदान और आकलन' – एक सुसपादित नवीनतम कृति है। सपादक ने कितनी विपरीत स्थितियो मे इस अत्यन्त उपयोगी और प्रेरक पुस्तक को पूरा किया है–यह सब पढ़ कर मै स्तब्ध रह गया। उनके कष्टो के लिए मै भी जिम्मेवार हूँ, ऐसा मै मानता हूँ– अन्तर्मन से।

प्रस्तुत पुस्तक मे मेरा एक लेख छपा है 'डॉ नेमीचन्द जैन की शाकाहार को मौलिक देन'। वस्तुत यहाँ 'शाकाहार' के स्थान पर 'विज्ञान' होना चाहिये थे। यदि सपादक ने शब्द बदला है, अथवा किसी अन्य ने मेरे शब्दो को हटाया है, तो यह पाठको के साथ अन्याय हुआ है। (यहाँ 'शाकाहार' को व्यापक सन्दर्भ/विस्तृत परिप्रेक्ष्य मे रेखाकित किया गया है, जिसके अन्तर्गत शाकाहार-साहित्य, शाकाहार-आन्दोलन/अभियान इत्यादि का समावेश किया गया है।-स) शाकाहार के क्षेत्र मे नेमीचन्दजी ने अनुपम एव अद्वितीय कार्य किया है– यह तो दुनिया जानती है, पर उन्होने विज्ञान की ५२ नई शाखाओ को पनपाया है, विकसित किया है– यह बहुत कम को पता है और यदि मालूम है भी तो वे उनके इस महान् कार्य की महत्ता को अनुभव नही कर पा रहे है।

डॉ नेमीचन्दजी बडे है, हम सब उनका आदर करते है और चाहते है कि वे आने वाली पीढ़ियो को शाकाहार की सुनहली रोशनी से ज्योतित होने दे। शायद उन्हे इस बात का आभास नही है कि उनका लेखन, चिन्तन, उनके पत्र, डायरियाँ, उनका जीवन कितने परिवारो को ज्ञानालोकित करता है।

हमारा सौभाग्य है कि एक निर्भीक चिन्तक, साहित्यकार, वैज्ञानिक और पथ-प्रदर्शक हमारे मध्य है। इस प्रकाश-स्तम्भ से न जाने कितने लोग ज्योतित हो चुके है। उनकी विनम्रता और अतिशय आदर्शवादिता हम सबके एक महान् साहित्य के प्रकाशन से वचित कर देगी। प्रकाशन-कार्य अविराम अग्रसर होता ही चाहिये। (पत्र, २४-७-२०००)

एक सशक्त, प्रेरक, मौलिक एव उपयोगी पुस्तक कम कीमत पर जनता के हाथो मे पहुँचायी गयी है। नेमी साहित्य के अन्तर्गत सुबोध पुस्तको की कडी आ चुकी है। डॉ नेमीचन्दजी के कार्य का समीक्षात्मक आकलन अथवा मूल्याकन वही कर सकता है, करवा सकता है जो उनके हमकदम हो। इन पुस्तको के सपादक ने सही रास्ता चुना है और मूल्याकन के स्थान पर 'अवदान और आकलन' शब्द बहुत सोच-समझकर प्रयुक्त किये है, उन प्रबुद्ध लोगो से सपर्क किया है, जो नेमीचन्दजी से प्रभावित हुए है। ऐसी पुस्तको को मै सत्साहित्य की श्रेणी मे रखता हूँ। ये ऐसी पुस्तके है, जो प्रत्येक परिवार मे होनी चाहिये। इससे परिवार के प्रत्येक सदस्य को सही राह मिलेगी। हमारा देश आज अपसस्कृति के जाल मे फँस गया है। ऐसे माहौल मे 'नेमी साहित्य' की पुस्तके स्तम्भ बन सकती है, उनका स्वागत होना चाहिये। (पत्र, २६-७-२०००)

विषयान्तर होने पर भी 'मुस्कराती चप्पले' वाले प्रसग का उल्लेख करना चाहता हूँ। डॉ नेमीचन्दजी के प्रेरक व्यक्तित्व के प्रत्येक कार्य मे आपको गुलाब-सी महक मिलेगी। एक शाकाहार-सम्मेलन के उपरान्त एक वृद्धा काफी देर तक यह जाँच करने के लिए वहाँ रुकी रही कि यह व्यक्ति, जो मच पर शाकाहार के उपदेश देता है, कौन-से प्रकार का जूता पहन कर आया है। सारे श्रोता जा चुके थे। नेमीचन्दजी को भी डर था कि उनकी प्लास्टिक की मामूली चप्पले (जिन्हे हम लोग 'हवाई चप्पले' कहते है) कोई उठा न ले गया हो। यदि उसके स्थान पर वह अपने चमडे के जूते या चप्पले छोड गया होगा, तो आज उनकी बेइज्जती होगी। डरते-डरते वे जूतो के स्थान पर पहुँचे। वहाँ उनकी साधारण-सी पुरानी हवाई चप्पले मुस्करा रही थी। वृद्ध ने जब नेमीचन्दजी को उन चप्पलो को पहनते देखा, तो उनके पैरो पर वह गिर पडी। उन्होने कहा 'माँ, यह क्या कर रही हो! यह तो भारतीय सस्कृति के विरुद्ध है।' वृद्धा माँ ने कहा 'बेटा, तुम सचमुच धन्य हो! तुम जो कहते हो, वही करते हो। ढकोसलेबाज नही हो। लोग बाते ऊँची करते है और चमडे के जूते पहनते है। क्या चमडा आसमान से टपकता है?' बम्बई मे मै उनके साथ था। उनकी उन 'मुस्कराती चप्पलो' को पुन देखा था। (पत्र, २६-७-२०००)

—डॉ मदन मोहन बजाज, दिल्ली

असीमित अवदान, सीमित आकलन

डॉ नेमीचन्द जैन का व्यक्तित्व और कृतित्व इतना बहुआयामी है कि उन पर बहुत कुछ लिखने के बावजूद बहुत कुछ छूट जाता है। 'डॉ नेमीचन्द जैन अवदान और आकलन' मे कुछ ऐसा ही हुआ है। फिर भी साहित्य की इस विभूति पर थोडे मे बहुत कहने का सफल प्रयास किया गया है। पुस्तक तीन हिस्सो मे बँटी है – अवदान, आशिक आकलन और आरभिक आकलन।

अवदान के अन्तर्गत पहला सात पृष्ठीय लेख है श्री रत्नेश कुसुमाकर का – 'डॉ नेमीचन्द जैन का हिन्दी साहित्य को अवदान'। मनीषी लेखक ने सरस और धाराप्रवाह शैली मे डॉ जैन के हिन्दी साहित्य के अप्रतिम अवदान को तथ्यपूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया है। इसके बावजूद हिन्दी साहित्य मे डॉ नेमीचन्दजी के अवदान का यथेष्ट मूल्याकन नही हुआ है, ऐसा मुझे लगता है और यह विचारणीय है। डॉ नेमीचन्दजी एक तपस्वी साहित्यकार और पत्रकार है। उन्होने हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता को आध्यात्मिक सम्पर्श मे नई गरिमा और उपयोगिता प्रदान की है। उन्होने अपनी प्रयोगधर्मिता मे साहित्य और पत्रकारिता को नये/मौलिक आयाम भी दिये है।

'अवदान' के अन्तर्गत दूसरे आलेख मे श्री सुरेश 'सरल' ने डॉ नेमीचन्द जैन के जैन साहित्य को योगदान की विशद् चर्चा की है। वस्तुत कभी-कभी डॉ जैन हिन्दी साहित्य और जैन साहित्य के मध्य एक सेतु या सेतु-निर्माता की तरह लगते है। उनके वैचारिक

आलोक मे हिन्दी और जैन साहित्य दोनो मे अनेक नये धरातल दिखाई पड़ते है। उन्होंने जैन साहित्य और पत्रकारिता को रूढ़ व अप्रासंगिक परम्पराओ तथा पाखण्ड के दलदल से निकालने की सार्थक कोशिश की है।

डॉ जैन का एक और बहुत उपकारी या यूँ कहूँ सर्वाधिक उपयोगी एव कल्याणकारी अवदान है – शाकाहार। साहित्य और पत्रकारिता दोनो के माध्यम से उन्होंने 'शाकाहार' को एक महान् मानवीय दर्शन के रूप मे स्थापित किया है। शाकाहार-आन्दोलन को उन्होंने नई दिशा, गति और ऊर्जा प्रदान की है। दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी के प्रोफेसर डॉ मदन मोहन बजाज ने डॉ जैन के शाकाहार को दिये अवदान की सविस्तार सारपूर्ण चर्चा मे मुख्यत शाकाहार को वैज्ञानिक आधार देने की बात कही है।

चौथे लेख मे सीधी-सरल व भावपूर्ण शैली मे श्री प्रेमचन्द जैन ने 'आधुनिक साहित्य नेमी साहित्य के स्थान' को रेखाकित किया है। समाज, साहित्य-प्रेमियो और रचनाकारों उन्होंने नेमी साहित्य के विषय मे विचार-विमर्श करने का आह्वान भी किया है।

पुस्तक के दूसरे भाग मे डॉ जैन पर हाल ही मे पूर्व प्रकाशित पुस्तको– 'व्यक्तित्व र कृतित्व', 'सारस्वत साधना एक झलक' तथा 'कुछ अमृत बिन्दु' पर विभिन्न क्षेत्रों जुड़े प्रबुद्धजनो व मनीषियो की सक्षिप्त, विस्तृत तथा पठनीय समीक्षाएँ एव अभिमत जिनमे डॉ जैन साहब के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अनेक अछूते, रोचक, प्रेरक व विविध पक्ष उजागर हुए है।

तृतीय भाग के आरभिक आकलन मे श्री रत्नेश कुसुमाकर के दो लेख है। पहला डॉ जैन द्वारा दशको से सपादित किये जा रहे 'तीर्थकर और' 'शाकाहार-क्रान्ति' पर एक लम्बा लेख है, जिसमे स्थानीय वैश्विक, नये-पुराने और अनेकानेक तथ्यो-सन्दर्भो के साथ दोनो ही मासिको के परिचय और प्रभाव से अवगत कराया है। दूसरा लेख है – सपादकीय आलेखो के आलोक मे डॉ नेमीचन्द जैन'। इसमे दोनो ही मासिको मे विगत तीन वर्षो मे लिखे गये सपादकीय आलेखो पर रत्नेशजी ने सारपूर्ण समीक्षा की है। इससे डॉ जैन के करीब तीन दशको के सपादकीय आलेखो की शैली और तेवर का पता सहज ही लगाया जा सकता है। रत्नेशजी ने सुझाव दिया है कि 'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' जैसे श्रेष्ठ मासिको को देश के विश्वविद्यालयो, महाविद्यालयो, विद्यालयो, ग्रथालयो और वाचनालयो को उपलब्ध कराया जाना चाहिये ताकि देश की युवा पीढ़ी सही मायनो मे धर्म-दर्शन और अध्यात्म को आत्मसात् कर सके।

डॉ जैन-जैसे महापुरुष के अवदान और आकलन को मात्र ६४ पृष्ठीय पुस्तक मे समेटना यूँ तो न्यायसगत नहीं लगता, परतु आजकल समयाभाव की शिकायत जो सबके साथ रहती है, उसे देखते हुए इस पुस्तक के माध्यम से बूँद से समुद्र का अनुमान लगाया जा सकता है।

पुस्तक के आवरण पर डॉ साब का सौम्य, सादगीमय, रगीन फोटो है जबकि आवरण के भीतरी पृष्ठो पर नमस्कार-मुद्रा मे बैठे प्रसन्नचित्त नेमीचन्दजी के फोटो है।

—दिलीप धींग, उदयपुर

श्रेष्ठ अभिनन्दन

डॉक्टर साहब के स्नेही एव प्रबुद्ध पाठको ने उनके साहित्यिक, सास्कृतिक और सामाजिक अवदान का अपने-अपने स्तर पर जैसा कुछ आकलन किया वह शब्दाकित कर दिया है। यह उनका सबसे श्रेष्ठ और मूल्यवान् अभिनन्दन है।

—जमनालाल जैन, सारनाथ-वाराणसी

आकलन की अनिवार्यता

डॉ नेमीचन्द जैन एक समर्पित साहित्यकार, साधक और अपने-आप मे एक सस्था है। एक ऐसे प्रखर लेखक है, जिन्होने सन्त और श्रावक को अपनी लेखनी से सोचने पर मजबूर किया है और उन्हे सदैव जगाया है। मै जब भी उनसे मिला उन्होने शाकाहार की चर्चा की और समाज के बारे मे अपने विचार दिये। उनके सपादकीय लेखो ने हमेश समाज को झकझोरा है। यह अनिवार्य है कि देश के ऐसे अनोखे प्रतिभावान् साहित्यकार एव पत्रकार के व्यक्तित्व और कृतित्व के अवदान का आकलन हो।

—रमेश कासलीवाल, इन्दौर, (सपादक, वीर निकलक)

मूल्याकन के लिए उपयुक्त समय

डॉ नेमीचन्द जैन के साहित्य पर जो कुछ भी लिखा जायेगा वह इक्कीसवी शताब्दी की सुनहरी सुवह माना जायेगा, क्योकि प्राणिमात्र के कल्याण की कामना से जो कुछ भी लिखा जाता है, उसकी आवाज सदियो तक गूँजती रहती है।

श्रमण सस्कृति के प्रणेताओ के विचारो को आधुनिक युग मे समझाने का जो कार्य वे कर रहे है, वह वेजोड है। सारे प्रयास अन्त प्रेरणा से हो रहे है, जैसे कालपुरुष स्वय हम सबको जगा रहा है, और कह रहा है कि इस नूतन शताब्दी मे यदि नेमी साहित्य पर अनुचिन्तन नही किया गया तो भविष्य की पीढी हमे माफ नही करेगी। उन्होने शाकाहार को अहिंसा का युगानुकूल विकल्प प्रस्तुत कर एक यथार्थवादी उपयोगिता का अनुभव सबको प्रदान किया है।

उनके मूल और सन्दर्भ साहित्य के रूप मे जो भी प्रकाश मे आया है, उपयुक्त तो यही है कि उसका मूल्याकन उनके सामने हो, भले ही वह प्रयास उन्हे पसन्द न हो, फिर भी जिस लेखनी मे युग को करवट देने की क्षमता हो, कभी दवने वाली नही है, क्योकि सद्‌विचार स्वय मे इतने शक्तिशाली होते है कि स्वय आकार करते दिखाई देते है।

डॉ नेमीचन्द जैन होने का अर्थ तो दुनिया को समझना होगा, क्योकि उनके प्रयासो मे युग की धडकन समायी हुई है।

—लक्ष्मीचन्द जैन, छोटी कसरावद (म प्र)

चि न्त नि का

विवशता से वडा कोई अभिशाप नही है। हम विवशता की भाषा समझे, उसके वजूद को अस्वीकार करे, और स्वतन्त्रता तथा स्वाधीन चिन्तन की डगर का अनुसरण करे।

कद अरवी भापा का शब्द है, जिसके मायने है ऊँचाई। हम अपने कद के बारे कतई न भूले-भटके और कृत्रिम ऊँचाइयो से उतर कर औचित्य और सम्यक्त्व के साथ हमकदम हो।

नाम की महिमा निराली है। 'नाम', यद्यपि एक पहचान है, विज्ञप्ति है, तथापि वह अव शोहरत या प्रसिद्धि का पर्याय शब्द वन गया है। उसकी कैद/गिरफ्त से छूटने का नाम मोक्ष है। वह मुक्ति और नर्क दोनो का मार्ग है। सवाल सिर्फ मशा और विवेक का है।

पहरेदारी अप्रमत्त सावधानी का परिचायक शब्द है। क्षमा, विनय, सरलता, त्याग, आकिंचन्य, निष्कपटता, मैत्री, प्रीति, वात्सल्य, सहानुभूति, मदद, करुणा, दया इत्यादि हममे प्रतिपल है– सदैव है, वस जरूरत इस वात की है कि हम एक चौकस पहरेदार की भाँति इन्हे लुटेरो (क्रोध, मान, माया, लोभ) से बचाये और अपने चरित्र मे इन्हे निरन्तर सुदृढ़ वनाये। ध्यान रहे, दुनिया मे विवेक से बडा कोई प्रहरी (पहरेदार) नही है – इसे नियुक्त करे और जन्मजन्मातरो के लिए निश्चिन्त बने।

लगाम सयम का समानार्थक शब्द है। यह फारसी भाषा का शब्द है, जो घोडो को वश मे रखने के लिए डाली गयी रास के लिए प्रयुक्त है। भीतर-की-लगाम के लिए आचार-शास्त्र मे 'सयम' शब्द का इस्तेमाल हुआ है, और कहा गया है कि जिसके पास सयम है, उससे यम को भी हारना पडता है। जो मन-के-घोडे की लगाम कस कर थाम सकता है, उसके लिए न तो कोई काम मुश्किल ही है, और न असभव। धर्म-सम्प्रदाय नही– चित्त-के-अश्वारोहण का सर्वोत्तम का विज्ञान है।

इन्तजार एक ऐसी मनोदशा है, जिसमे एक मधुर या तिक्त कसक, मीठा या कडुवा करार, और सम्यक् या मिथ्या उत्सुकता का सस्पर्श होता है। वह जब खत्म होती है, तव हमे कोई दुर्लभ वरदान भी मिल सकता है और यह भी सभव है कि हम एक लुटे हुए व्यक्ति की तरह हताश/व्यथित/विकल छूट जाएँ। इन्तजार (प्रतीक्षा) की कोख मे क्या है, क्या नही है, इसे जानने के लिए भी हमे इन्तजार की जरूरत है, लेकिन इतना अवश्य है कि जिसमे इन्तजार का जज्बा नही है, ठीक से इसान नही है, इसानियत की नींव मे एक ईंट इन्तजार की भी , वेहद जरूरी है।

बहस एक ऐसा शब्द है जिसके कलेजे मे जहर और अमृत दोनो एक साथ धडकते है, क्योकि बहस हम जूझने के लिए भी करते है और किसी मुद्दे के सामाधान के लिए भी। बहस इसलिए होना चाहिये, अर्थात् की जानी चाहिये ताकि विषय-वस्तु पर से धूल झिटकी जा सके और मित्रो के विचार जान कर आगे की राह को निर्विघ्न वनाया जा सके।

पैतरा शब्द सस्कृत के 'पादान्तर' शब्द मे-से विकसित है, जिसका अर्थ है अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए कभी भी, किसी भी दाँवपेच का इस्तेमाल करना, कदम को इस तरह घुमाव देना कि सामने वाला चारो खूट चित जा पडे। लेकिन, खयाल रहे, सचाई कभी हारती नही है, अन्तत पैतरेबाजी तत्काल विजयोन्मुख दिखायी देती है, किन्तु अन्त मे उसे मुँह की खानी पडती है।

कधा शब्द सस्कृत के 'स्कन्ध' शब्द का वशधर है, जिसका अर्थ है शरीर का वह भाग जो भुजमूल से जुडा है और वजन या बोझ उठाने या ढोने मे एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, लेकिन इसका सिर्फ एक ही अर्थ नही है, अनेक अर्थ है, जैसे – 'कधे-से-कधे मिला कर' काम करना। जब तक हम 'कधे-से-कधा' सटा कर समाजोत्थान की भावना को – अहिंसा से ब्रह्मचर्य तक के जीवन-मूल्यो को जीवनदान (चरितार्थ) नही देगे, उसके सास्कृतिक मान-चित्र को बदल नही पायेगे।

पहचान या प्रत्यभिज्ञान किसी भी शख्स, या हालत को एक अद्‌भुत अस्मिता प्रदान करती है, लेकिन पहचान का बनना या उसका खो जाना बहुत गडवड मामला है। कई लोग, राष्ट्र या समाज, अपनी पहचान खो बैठते है, और इस तरह उनकी सदियो की कमाई व्यर्थ हो जाती है। भारत अपनी पहचान खोने लगा है। वह 'भारत' न होकर 'इडिया' हुआ है। वैसे ही जैन या बौद्ध, हिन्दू या ईसाई अपनी पहचान खोने लगे है। उनका जैनत्व या वौद्धत्व, हिन्दुत्व या ईसाईत्व अपनी 'आइडेटिटी' गँवाने लगा है, पहचान, इसलिए, जहाँ एक अनिवार्यता है, वही वह एक महत्त्वपूर्ण मौलिकता भी है। विविधता के वियावान जगल मे पहचान को कवच पहिनाये रखना आज बहुत कठिन हो गया है।

स्वप्न एक इशारा है, वह सर्वस्व नही है। उसकी भाषा को समझने की कोशिश करनी चाहिये। वैसे हर आदमी को अपने जीवन का एक स्वप्न अवश्य योजित करना चाहिये– भव्य, मनोज्ञ, सुखद, सार्थक, और व्यावहारिक, ताकि उपलब्ध सीमित या सभाव्य साधनो मे उसकी पूर्ति हो सके या की जा सके, क्योकि एक स्वच्छ स्वप्नदृष्टा एक सफल व्यक्ति भी साबित हो सकता है। वस्तुत हर आदमी का उद्देश्य आरभ मे एक लघुस्वप्न ही होना है, जो क्रमश यथार्थ की आकृति ग्रहण कर लेता है।

मर्म का मर्म कोई मर्मज्ञ ही जान सकता है। जो मर्मान्वेषी है, जो गूढ़ार्थ की तलाश मे है जो तत्त्व तक अपनी बाहुएँ पसारना चाहते है– उनकी निष्ठा अनुक्षण कसौटी पर बनी रहती है – यहाँ फिर जो चूक जाता है, वह हार जाता है, और जो अ-चूक, अप्रमत्त, चुस्त और सावधान बना रहता है वह जीत जाता है, उसके सामने तमाम मुश्किले घुटने टेक देती है और अन्धकार हार कर चुपचाप अपनी राह पकड लेता है, अत हमे चाहिये कि हम धर्म-का-मर्म, या अन्य किसी विषय का रहस्य/मर्म पाने के लिए अपने उपकरण तत्पर और सक्षम रखे तथा कदम-दर-कदम अपने लक्ष्य पर अग्रसर हो।

चुप्पी या मौन जहाँ एक गहन साधना है, वही दूसरी ओर वह एक गभीर अपराध भी है। चुपचाप, खुद मे, गहरे – बहुत गहरे-उतरते जाना दुर्द्धर तप है, और अन्याय के आगे चुप बने रहना एक सगीन जुर्म है। चुप रहिये, लेकिन अपनी चुप्पी को सीमित मत रखिये। उसे जीवन मे भरपूर मर्यादित फैलाव दीजिये। इन्द्रियो की चुप्पी दुनिया की सबसे बडी नेमत है – विधाता का सर्वोत्तम वरदान। ज्ञानी स्वभावत मौन रहता है। चूँकि वह जिन्दगी के तल-अतल खोज चुकता है, अत उसकी अस्मिता सुदृढ बन जाती है। चुप्पी का अपना अनूठा आनन्द है अत वही ज्ञान के एकमात्र निष्कण्टक डगर है, हमे जानना चाहिये, कि ज्ञान और मौन परस्पर अभिन्न मित्र है, अजीज दोस्त।

क्रोध चोर है, डाका डालता है। वह उन तीन बडे तस्करो मे-से है जो विवेक-धन की तस्करी करते है। वह लोगो की शान्ति का लुटेरा है। वह जिसके पीछे पड जाता है, उसका नामोनिशाँ मिटा कर ही दम लेता है। वह आता हिरण की रफ्तार से है, लेकिन जाता कछुए की चाल से है। क्रोध लुटेरा है। वह घूमता रहता है और अक्सर ऐसे लोगो मे जो अहकार के शिकार होते है, वहाँ वह अपना तम्बू गाड लेता है, और फिर आहिस्ता-आहिस्ता वहाँ अपना गगनचुम्बी महल खडा कर लेता है।

बुनियाद फारसी का शब्द है, जिसके मायने है वह आधार जिस पर कोई स्थायी ढाँचा खडा किया जाता है। बुनियाद का पुख्ता/मजबूत होना बेहद जरूरी है। जिस भवन, व्यक्ति, स्थिति, विचार, सस्कार, योजना इत्यादि की बुनियाद कच्ची होती है, उसकी उम्र कम होती है, इसीलिए नीव-की-ईंट या नीव-का-पत्थर किसी भी इमारत के सर्वोच्च शिखर की दृढ़ता का परम आश्वासन है। यद्यपि नीव दिखायी नही देती, तथापि सपूर्ण प्रासाद की भव्यता और सुदीर्घजीविता इसमे सन्निहित होती है। जिसकी नीव कमजोर होती है, उसे भय रहता है, कि 'अब गिरे, तब गिरे', ले ... च

जितना सच्चा होता है, वह अभीत बढ़ता रहता है और विलम्ब से भले ही, किन्तु अपने लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जाता है।

लिहाज अरबी भाषा का शब्द है, जिसकी कई अर्थ-छवियाँ प्रचलित है। लिहाज के मायने है— आदर, शील, सकोच, मर्यादा, किसी की कृपा या कृतज्ञता का खयाल। जहाँ तक आदर, मर्यादा और शील-सकोच का प्रश्न है, हमे उनका बड़े उत्साह, सरल और सावधान चित्त से अनुपालन करना चाहिये। हमे हर कदम पर देखते रहना चाहिये कि कही हम अपने आचरण से किसी गौरवशालिनी परम्परा की अवहेलना अथवा उपेक्षा तो नही कर रहे है? कही ऐसा तो नही है, कि हम अपने व्यवहार या व्यापार मे इतने बदगुमान हुए है कि उम्र, पद, योग्यता, प्रतिष्ठा इत्यादि का खयाल किये बगैर उज्ज्वलताओं का अनादर कर बैठे है? मुलाहजा, तरफदारी, पक्षपात इत्यादि। इनमें-से हर अर्थ अपनी पृथक् छवि-छाया रखता है। चाहे जो हो हमें न तो किसी का अनादर करना है, न तिरस्कार, न लिहाज, बल्कि हमे वह करना है जिससे समाज, राष्ट्र, और देश का मस्तक गौरव से ऊँचा उठे और सत्यनिष्ठ सदाचरण सम्पन्न मानव स्थापित हो। वस्तुत हमे स्थिति और सन्दर्भ को पहचानना चाहिये और अपने आदर्श, कर्तव्य, तथा सदाचार के अलावा किसी अन्य का लिहाज नहीं करना चाहिये।

नेमी तिथि-चिन्तनिका : सहचिन्तन की आवश्यकता

यह धारणा/मान्यता है कि दिव्य/भव्य, आदर्श/प्रेरक विचार/वचन, उपदेश/उद्गार महात्माओ/महापुरुषो के हो सकते है। हमारे लिए जो पूजनीय/माननीय है, उनकी वाणी मननीय/अनुकरणीय होती है। प्राय परम्परावादी धर्मावलम्बी अपने-अपने धर्म/सप्रदाय मे अधिष्ठित/प्रतिष्ठित आचार्यो/सन्तो के वचनो को वचनामृत के रूप मे स्वीकार/मान्य करते है।

आधुनिकता-बोध के इस प्रगतिशील/विकासोन्मुख युग मे इसमे परिवर्तन आ रहा है, जो स्वागत-योग्य है। वैचारिक गुणवत्ता की कसौटी को अपनाया जाने लगा है। इस कारण दार्शनिक, मनीषी, साहित्यकार जैसे व्यक्तियो के वचनो मे सुपठनीय/मननीय माना जाने लगा है। सद्विचार की मौलिकता/ विशिष्टता महत्त्वपूर्ण है, फिर वह किसी भी व्यक्तित्व-विशेष द्वारा प्रस्फुटिक हुआ हो।

मौलिक चिन्तन/प्रातिभ दर्शन एक ऐसा असाधारण कार्य है, जो निष्ठापूर्वक साधना का सुपरिणाम होता है, सहज स्फूर्ति इसका लक्षण है। यदि वे साहित्यकार/लेखक है, तो लिखते-लिखते ऐसे विचार स्फूर्त हो जाते है, जिसकी परिकल्पना उन्हे भी नही होती है। जैसे कवि की कतिपय पक्तियाँ इतनी मार्मिक होती है, जो हृदय को स्पर्श कर जाती है, वैसे ही लेखक की कुछ पक्तियाँ विचारोत्पादक/प्रेरक होती है।

इसी प्रकार जब हम साहित्यकार की कृतियो का स्वाध्याय करते है, तब उन पक्तियो पर हमारा ध्यान सहज ही केन्द्रित हो जाता है, और उन्हे हम आत्मसात् करते जाते है। प्रारभ यह होता है स्वान्त सुखाय, लेकिन ऐसा भी लगता है कि उनका आदान-प्रदान परस्पर हो तो अधिक उपयोगी हो सकता है, सद्भावना/सद्विचार आपस मे चर्चा का विषय भी बन जाते है। वे जीवन और जगत् को प्रेरित/प्रोत्साहित करने लगते है।

नेमी साहित्य का अध्येता मै आरम्भ से रहा हूँ, लेकिन विगत पाँच वर्षो से वह मेरे स्वाध्याय के अन्तर्गत अग्रसर हो रहा है। 'नेमी साहित्य-सचयनिका' के सन्दर्भ मे मैने लिखा था 'मेरा आत्मविश्वास है कि उनकी (डॉ नेमीचन्दजी) की लेखनी से प्रसूत साहित्य मे वह स्फूर्ति और शाश्वतता है, जो जीवन-मूल्यो के प्रति आस्था/श्रद्धा उपजाते हुए कर्तव्यनिष्ठ होने की प्रेरणा देता है। वर्तमान ही क्यो, आगामी पीढ़ियो को भी दशाब्दियो तक दिशाबोध देने की क्षमता उनकी रचनाओ/कृतियो मे है।'

स्वाध्याय मे 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' की प्रक्रिया को अपनाते हुए मुझे ऐसी अनुभूति हुई कि यह सब 'स्वान्त सुखाय' तक सीमित नही होना चाहिये, जिन-जिन सद्विचारो ने मुझे प्रभावित किया है, जो चिन्तन-सामग्री सग्रहीत/सकलित हो रही है, उसे 'चयनित अश' के रूप मे प्रस्तुत ही नही किया जाये, उसे सपादित कर प्रकाशित भी किया जाये। नेमी साहित्य की ११० पुस्तको मे-से चयनित अश उसी की उपलब्धि है।

नेमी साहित्य की सन्दर्भ पुस्तको को सपादित करते हुए अब यह विचार सहज ही स्फूर्त हो रहा है कि चयनित अशो को और अधिक लोकोपयोगी बनाया जाये। 'नेमी सूक्ति' के सकलन का प्रस्ताव आया है। 'सूक्तियाँ हो, लेकिन लोकोपयोगी हो' यह सुझाव भी है। इन्हे ध्यान मे रख कर सहचिन्तन के लिए आमन्त्रित कर रहा हूँ कि 'प्रतिदिन एक विचार' के अनुक्रम मे एक ऐसी वार्षिकी सकलित/सपादित की जाये, जिसमे प्रत्येक महीने के प्रतिदिन के लिए प्रेरक विचार 'चिन्तनिका' के रूप मे हो। वे हर महीने की तिथियो की दृष्टि से भी प्रासगिक/सन्दर्भित हो।

नेमी साहित्य मे-से ३६५ 'चिन्तनिकाये' सकलित/सपादित कर 'सन् २००१' के लिए प्रकाशित करने से सबन्धित विचार पर सहचिन्तन की आवश्यकता है, जिससे यह सभी दृष्टियो से सार्थक हो सके।

नेमी साहित्य : क्या, कितना, कैसा

'डॉ नेमीचन्द जैन साहित्य-सचयनिका' को एक शोधार्थी ने उनकी कृतियो की समग्र प्रस्तुति के लिए 'डॉ नेमीचन्द ग्रन्थावली' का नाम दिया है। यहाँ उनके साहित्य को प्रतीक-स्वरूप 'नेमी' से सबन्धित/सन्दर्भित किया जा रहा है। विगत ५०-५५ वर्षों से वे अपने लेखन-कार्य मे अग्रसर है।

इस पर दो दृष्टियो से विचार किया जा सकता है। 'कितना' मे उसकी सख्या/मात्रा मुख्य है, जिसे अग्रेजी मे 'क्वान्टिटी' कहते है। दूसरी दृष्टि है 'कैसा' मे, जिसमे गुणवत्ता की कसौटी है, जिसे अग्रेजी मे 'क्वालिटी' कहते है।

अब समय आ गया है कि नेमी साहित्य पर इन दोनो दृष्टियो से विचार-विमर्श/परिचर्चा हो और यह सहचिन्तन का विषय बने। इससे नेमी साहित्य मे निहित सभावनाएँ उजागर हो सकेगी।

—प्रेमचन्द जैन

विज्ञानमय धर्म



प्रश्न चाहे वह धर्म के सामने हो या विज्ञान के एक ही है – सत्य की खोज कैसे करे? इस सन्दर्भ मे अल्बर्ट आइस्टाइन (सापेक्षिकी के जनक) का यह कथन कि विज्ञान धर्म के बिना पगु है और धर्म विज्ञान के बिना अन्धा है – स्वय मे बहुत बडी सार्थकता रखता है। यहाँ हम इस बात को अपने दिमाग से बिलकुल निकाल दे कि धर्म और विज्ञान के बीच कोई टकराहट है, टकराहट बिलकुल नही है, सिर्फ दोनो के लिए एक सही समझ के व्यापक प्रचार-प्रसार और विकास की आवश्यकता है।

ध्यान रखे, आत्मज्ञान (अध्यात्म) और विज्ञान दो अलग इलाके नही है, बल्कि दोनो ऐसी समानान्तर पटरियाँ है जो विचार-रथ को गतिमान रखने के लिए जरूरी है। विनोबा ने एक समीकरण दिया है विज्ञान-आत्मज्ञान=सर्वोदय विलक्षण है यह समीकरण। उक्त समीकरण की व्याख्या करते हुए उन्होने कहा था कि यदि विज्ञान मोटर गाडी का इजिन है तो आत्मज्ञान स्टीयरिंग व्हील है। यानी आत्मज्ञान तेज दौडती गाडी का नियामक तत्त्व है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी (टेक्नॉलॉजी) को भ्रमवश लोग पर्याय मान कर चलते है, किन्तु ऐसा है नही। टेक्नॉलॉजी विज्ञान का उपजन है। वास्तव मे सत्य की खोज निरन्तर है, वह अपरिसमाप्य है। विज्ञान और धर्म सदियो से सत्य की खोज मे लगे हुए है। दोनो दो अजीज दोस्त है, दो खोजधर्मियो के दुश्मन होने का कोई सवाल ही नही है।

आज मनुष्य और उसकी सस्कृति के अस्तित्व पर एक काला प्रश्नचिह्न आ खडा हुआ है, जिसका समाधान विज्ञान और अहिंसा की मैत्री के अलावा अन्य कुछ है नही। दूसरे शब्दो मे हम इसे सत्य और अहिंसा का 'सन्धिपत्र' कह सकते है। यहाँ 'सत्य' विज्ञान के लिए और 'अहिंसा' धर्म के लिए प्रयुक्त शब्द है। यद्यपि हम आज, कल से काफी आगे निकल आये है, किन्तु जबतक धर्म और विज्ञान दोनो हमकदम नही होगे हमारा आगामी कल और अधिक काला/अधिक निराशाजनक होगा।

विज्ञान और धर्म हाथ मिला सकते है बशर्ते हम यह मान ले कि दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू है, जिनमे-से यदि एक भी विकृत या अनुपस्थित होता है तो सिक्के का खुद का अस्तित्व खतरे मे पड जाता है। ऐसी पहल को यदि निरन्तर रखा गया तो हम नये आदमी को, जो शान्ति और बन्धुत्व का मसीहा होगा, क्षितिज पर लाने मे सफल हो सकेगे।

–डॉ. नेमी

डॉ. नेमीचन्द जैन : सन्दर्भ साहित्य

डॉ. नेमीचन्द जैन साहित्य . एक अवलोकन

पुस्तक के १७ अध्यायो के अन्तर्गत ४०० पृष्ठो मे डॉ नेमीचन्द जैन द्वारा अर्द्धशताव्दी मे लिखित सामग्री का सर्वप्रथम सकलन/सपादन किया गया है। अक्टूवर, १९९८ मे प्रकाशित प्रथम सस्करण का मूल्य एक सौ रुपये है।

डॉ. नेमीचन्द जैन ' व्यक्तित्व और कृतित्व

पुस्तक के ४१ विशेष लेखो मे ३१ साहित्यकारो, समाजसेवियो और परिजनो द्वारा डॉ नेमीचन्द जैन के बहुआयामी/वहुमुखी व्यक्तित्व के विविध पक्षो/ पहलुओ को उजागर किया गया है। आलेखो मे उनकी सितम्वर '९८ से मार्च '९९ तक की विविध रचनाओ का समावेश है और अपने वारे मे – उनका आत्मकथ्य भी है। रगीन आवरण-सहित ४०० पृष्ठीय पुस्तक के प्रथम सस्करण (मई १९९९) का मूल्य एक सौ रुपये है।

डॉ. नेमीचन्द जैन की सारस्वत साधना : एक झलक

पुस्तक के ११ अध्यायो मे श्री रत्नेश कुसुमाकर ने डॉ नेमीचन्द जैन के वहुआयामी व्यक्तित्व/कृतित्व का विवेचन किया है। रगीन आवरण-सहित ६४ पृष्ठीय पुस्तक के प्रथम सस्करण (मई, १९९९) का मूल्य बीस रुपये है।

डॉ. नेमीचन्द जैन के साहित्य-सिन्धु मे-से कुछ अमृत बिन्दु

पुस्तक के ८ अध्यायो मे श्री सुरेश सरल द्वारा डॉ नेमीचन्द जैन के कृतित्व के व्यापक/विविध पक्षो/पहलुओ को उजागर किया गया है। रगीन आवरण-सहित ६४ पृष्ठीय पुस्तक के प्रथम सस्करण (मई १९९९) का मूल्य बीस रुपये है।

डॉ. नेमीचन्द जैन ' अवदान और आकलन

पुस्तक मे डॉ नेमीचन्द जैन का हिन्दी साहित्य को अवदान और जैन साहित्य को योगदान, 'शाकाहार' को मौलिक देन-जैसे आलेखो के साथ उनके व्यक्तित्व और कृतित्व, सारस्वत साधना, साहित्य-सिन्धु मे-से कुछ अमृत बिन्दु मे आशिक आकलन है। 'तीर्थंकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' के सपादकीय आलेखो के आलोक मे उनका आरभिक आकलन है। ६४ पृष्ठीय पुस्तक के प्रथम सस्करण (जून, २०००) का मूल्य बीस रुपये है।

डॉ नेमीचन्द जैन सन्दर्भ साहित्य एक सहचिन्तन

पुस्तिका मे सन्दर्भ साहित्य के आईने मे, सपादित साहित्य की कसौटी पर डॉ नेमीचन्द जैन, नेमी साहित्य का एक नम्र अध्येता, सन्दर्भ साहित्य की सरचना मे सहचिन्तन - जैसे लेखो का समावेश किया गया है। पुस्तिका के प्रथम सस्करण (जून, २०००) का मूल्य दस रुपये है।

नेमी साहित्य एक अनुचिन्तन





प्रणाम

दिव्य ज्योति तुझको प्रणाम! मेरे प्रणाम!!
शत-शत प्रणाम! शत-शत प्रणाम!!
प्रति पग प्रणाम! प्रति पल प्रणाम!!
मेरे प्रणाम! अभिनव प्रणाम
तुम दीपशिखा उज्ज्वल मेरी,
मेरे जीवन की रण-भेरी,
फिर बोलो, क्यों इतनी देरी?
लो मेरे तुम शत-शत प्रणाम!
तुम दिव्य काम
तुम दिव्य नाम
तुम दिव्य धाम
लो मेरे तुम शत-शत प्रणाम!
काया-दीपक की तुम बाती
साँसों में नित आतीं-जातीं
लिखती रहती हों तुम पाती
तुम लो प्रणाम, मेरे प्रणाम, शत-शत प्रणाम!
प्रतिपल प्रणाम! प्रतिपग प्रणाम!!
मेरे प्रणाम! शत-शत प्रणाम!!
अनुक्षण प्रणाम! अविरत प्रणाम!!
अभिनव प्रणाम!

- डॉ नेमीचन्द जैन

नेमी साहित्य : एक अनुचिन्तन

प्रस्तुति
प्रेमचन्द जैन

हीरा भैया प्रकाशन
६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाडिया मार्ग, इन्दौर-४५२ ००१ (म प्र)

अनुचिन्तन

चिन्तन की धारा सतत् प्रभावित होती रहती है। उसमे-से जब सतही/ऊपरी स्तर पर कुछ सोचा जाता है, तब थोडा-सा हाथ मे आता है। यह आरम्भिक होता है। इसे 'अनु' कह सकते है। इसका महत्त्व यह है कि इसके माध्यम से व्यापक/गहन चिन्तन का शुभारम्भ हो सकता है। उस दिशा मे अग्रसर होने की यह प्रक्रिया होती है।

ऐसा ही कुछ नेमी साहित्य को लेकर है। जहाँ मात्र 'अनु' है, आरम्भि है, आशिक है। उसकी थाह लेने के लिए 'गहरे पानी पैठ को अपनाना होगा वह तो 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' का प्रथम चरण है।

प्रस्तुत पुस्तिका मे पूर्व प्रकाशित दो पुस्तिकाओ का समावेश किया ग है। पहली है 'साहित्य-चयनिका'। इसमे ७० पुस्तको मे-से चयनित अश है चूँकि नेमी साहित्य की पुस्तको की सख्या ११० तक पहुँच गयी है, इसलिए शे पुस्तको के चयनित अश जोडे गये है। दूसरी है 'सदर्शिका'। इसमे ७० पुस्त के लेखकीय भूमिका, प्राक्कथन, पूर्वकथन/आमुख मे-से मुख्याश लिये गये जिनसे पुस्तको को पढने से पहले की मानसिकता तैयार हो सके। कुल मि कर नेमी साहित्य के अनुचिन्तन के लिए ये दोनो पुस्तिकाएँ उपयोगी/सार्थक

—प्रेमचन्द ज

नेमी साहित्य . एक अनुचिन्तन : प्रेमचन्द जैन; © **हीरा भैया प्रकाशन**, हीरा भैया प्रकाशन ६५, **पत्रकार कॉलोनी, कनाडिया मार्ग**, इन्दौर-४५२००१ (म प्र), टाइप सैटिंग एव मुद्रण **नईदुनिया प्रिन्टरी**, इन्दौर- ४५२ ००९, प्रथम मस्करण **जून, २०००**, मूल्य **दस रुपये**।

नेमी साहित्य भी है, जिसकी अपनी अस्मिता और गुणवत्ता है

आधुनिक साहित्य के अन्तर्गत विगत पचास वर्षो मे भारतीय साहित्य का उल्लेख इसलिए किया जा रहा है, जिसको ध्यान मे रख कर चर्चा की जा सके। सत्साहित्य से अभिप्राय नैतिक मूल्यो पर आधारित साहित्य से है। सत्साहित्य भी व्यक्ति/व्यक्तित्व-प्रधान है, या फिर विषय-प्रधान। व्यक्ति-विशेष की रचनाओ से सम्बद्ध साहित्य का विपय-विशेष से सदर्भित साहित्य। व्यक्ति-विशेष के साहित्य मे गाँधी, विनोबा, अरविन्द, काका कालेलकर, रजनीश (ओशो), प्रेमचन्द, जैनेन्द्र इत्यादि के साहित्य का समावेश होता है, जबकि विषय-विशेष मे – आध्यात्मिक, धार्मिक, सास्कृतिक, सामाजिक विषयो से सदर्भित-जैसे, स्वास्थ्य-योग साहित्य, हिन्दू-जैन साहित्य इत्यादि। काल/समय-सूचक यदि रखना हो, तो प्राचीन-आधुनिक साहित्य।

साहित्यकार विविध विधाओ मे अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करता रहता है, जो उसके साहित्य के अन्तर्गत आता है। वह स्वय सपूर्ण विषय को एक पुस्तक मे सयोजित करता है, या फिर विविध रचनाएँ सकलित/सपादित हो जाती है, या तो वह स्वय करता है, या अन्य द्वारा ऐसा किया जाता है। इसी प्रकार चिन्तक, विचारक, विद्वान्, महापुरुप, महात्मा, सन्त इत्यादि के व्याख्यानो, भाषणो, प्रवचनो को सकलित/सपादित करके उसे पुस्तकाकार किया जाता है, जो उसके साहित्य के रूप मे प्रकाशित होता है। प्रचार-सचार के विपुल/विशाल माध्यमो के कारण दोनो प्रकार का साहित्य द्रुत गति से प्रकाशित हो रहा है। मुद्रण के क्षेत्र मे नवीनतम साधनो के उपयोग से पुस्तको का प्रकाशन वडी सख्या मे/वडे पैमाने पर हो रहा है।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य/सदर्भ मे डॉ नेमीचन्द जैन के साहित्य की चर्चा करना है। सक्षिप्त/साकेतिक नाम नेमी साहित्य हो सकता है। विगत पचास वर्षो मे उनके द्वारा लिखित साहित्य का समावेश 'नेमी साहित्य के अन्तर्गत आता है। वे सतत् इस दिशा मे अग्रसर है। उनकी अपनी लेखन-शैली है, भाषण-शैली भी है। उनके द्वारा लिखित और सपादित पुस्तको की सख्या अव ११० तक पहुँच गयी है, उनके साहित्य का अभिन्न अग वन गयी है। इस प्रकार नेमी साहित्य सख्यात्मक (क्वाटिटी) और गुणात्मक (क्वालिटी) दोनो रूपो मे प्रकाशित हुआ है और हो रहा है।

नेमी साहित्य पत्र-पत्रिकाओ मे, विशेपकर 'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' मे अपनी विविधता के साथ है। सामयिकता/प्रासगिकता के सदर्भ मे विविध रूपो मे भी उपलब्ध है। जहाँ वह डायरियो मे सीमित है, तो पत्र-व्यवहार मे असीमित भी है। वह व्याख्यानो के रूप मे अलिखित रूप मे भी है। वह अधिकाश अप्रकाशित है। उनकी कई रचनाएँ ऐसी है, जो अप्रकाशित होने पर भी उनके साहित्य की अभिवृद्धि कर सकती है। यदि उनकी सपूर्ण रचनाओ/कृतियो को सकलित/सपादित किया जाए, तो दस हजार पृष्ठ तो हो ही सकते है। सख्यात्मक/मात्रात्मक (क्वाटिटी) के रूप मे नेमी साहित्य इतना विपुल हो सकता है।

नेमी साहित्य की कतिपय विशिष्टताओ मे यहाँ गुणवत्ता के रूप मे रेखाकित किया जा रहा है।

नेमी साहित्य नैतिक मूल्यो पर आधारित तो है ही। यह आध्यात्मिकता से अनुप्राणित भी है। यह सप्रदायातीत है, धार्मिक सहिष्णुता से ओतप्रोत है। धर्मो के तुलनात्मक अध्ययन को प्रोत्साहन देने वाला है। सर्वधर्म समन्वय/सर्वधर्म समभाव का पोषक है। जैनधर्म को भी विश्वधर्म के रूप मे प्रतिपादित करने वाला है। इसमे धार्मिक निरक्षरता के उन्मूलन के अभियान को दिशा दी गई है। धर्म-निरपेक्षता के स्थान पर सम्प्रदाय-निरपेक्षता को मान्य करने का प्रयास किया है। इसमे अहिसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य-जैसे सदाचार के मूलभूत नियमो को आधुनिक परिस्थितियो मे अपनाने के लिए, जीवन से जोडने के लिए वैचारिक क्रान्ति की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। इसमे धर्म के प्रति सही समझ है।

नेमी साहित्य मे धर्ममय विज्ञान और विज्ञानमय धर्म को ध्यान मे रखकर इसका प्रतिपादन किया गया है। दोनो परस्पर पूरक है। उनकी पूरक भूमिका पर बल दिया गया है। इसमे धार्मिकता और वैज्ञानिकता के समन्वय को शोध/खोज का विषय बनाया गया है।

नेमी साहित्य मे विकासशीलता को अपनाया गया है। या यो कहना अधिक उपयुक्त/प्रासगिक होगा कि नेमी साहित्य मे विकास की प्रक्रिया को सहज/स्वाभाविक रूप मे स्वीकार्य बनाया गया है। इसमे विकासशीलता अन्तर्निहित है। इसका सारा-का-सारा ढाँचा (सरचना) इस पर टिका हुआ है। इसमे विकासशीलता की प्राणवायु का सचार होता है, प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप मे इसकी व्याप्ति इसमे है।

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि विकासशीलता है क्या ? यह है स्थिरतापूर्वक आगे-और आगे वढ़ते जाने की प्रवृत्ति/प्रक्रिया जिसमे अन्तिम कुछ भी

नही है। इसमे सत्य अपनी अनन्त सभावनाओ के रूप मे अगीकृत है। कोई भी सिद्धान्त क्यो न हो, उसकी शाश्वतता को स्वीकार करते हुए उसकी व्यावहारिकता के परिवर्तन/परिवर्धन की प्रक्रिया मे प्रगतिशीलता मे नेमी साहित्य की विशिष्टता है। इसमे नदी का प्रवाह है। इसमे ठहराव, रुकावट, अब और आगे नही – ऐसा कुछ भी नही है।

प्राचीनता और आधुनिकता के अन्तर/अन्तराल को जोडने का इसमे निष्ठापूर्वक प्रयत्न किया गया है। भारतीय सस्कृति मे विशेपतया श्रमण सस्कृति मे जो व्यवधान आये है, उन पर ध्यान ही आकर्षित नही किया गया है, उन्हे उन्मूलन के लिए विचार प्रस्तुत किये गये है। भ्रान्तियो को उजागर करते हुए उनका निवारण किया गया है।

नेमी साहित्य मे वर्तमान मे मध्यस्थ होकर भूत और भविष्य पर गभीर विचार किया गया है। समय का सन्तुलित/समग्र/समन्वयमूलक स्वरूप इसमे दर्शनीय है। इसलिए यह कालजयी होने की क्षमता रखता है।

नेमी साहित्य मे शव्दावलोकन की अपनी मौलिकता है। लेखक भापाशास्त्री होने-के-साथ-ही-साथ शव्दशिल्पी भी है। इसलिए उनके साहित्य मे शव्दो के अर्थ भाव मे अपनी मौलिकता मे अपनाया गया है। शव्दो का चयन इतनी सहजता से हुआ है कि शव्द स्वय वोलते-से लगते है। शव्द-चयन और उनका सही प्रयोग नेमी साहित्य की अपनी विशिष्टता है। इस प्रकार उसमे शव्दो को सही/सम्यक् रूप मे प्रयुक्त ही नही किया है, नये-नये शव्दो को जोडा भी है। इसमे शव्दो की गुणवत्ता की ओर ध्यान आकर्पित भी किया गया है।

नेमी साहित्य मे शाकाहार को नया आयाम प्राप्त होता गया है। शाकाहार मात्र आहार का प्रतीक न रह कर अहिंसक जीवन-शैली का सुविचारित आधार वना कर प्रस्तुत हुआ है। सांस्कृतिक/नैतिक मूल्यो मे जो गिरावट/रुकावट आ रही है, उसमे शाकाहार को अपनाने की आवश्यकता प्रतिपादित की गई है। शाकाहार अहिंसक क्रान्ति का सामयिक आधार किस प्रकार वन सकता है, इसकी विवेचना नेमी साहित्य मे देखी जा सकती है। यह कहना अतिशयोक्ति नही होगी कि शाकाहार को साहित्यिक विषय वनाने मे नेमी साहित्य का अपना विशिष्ट योगदान है। शाकाहार की वैज्ञानिकता और कलात्मकता को रूप मे प्रवेश देने/दिलाने मे नेमी साहित्य की भूमिका अपनी विशिष्टता लिये हुए है।

विगत दस वर्षो मे नेमी साहित्य शाकाहार के लिए समर्पित है। देशव्यापी अभियान के अन्तर्गत शाकाहार-विषयक पुस्तिका/पुस्तके नेमी साहित्य की अभिन्न

अग है। ये लाखो लोगो तक पहुँच सकी है। हिन्दी मे इतने बडे पैमाने मे शाकाहार-विपयक पुस्तको का प्रचार-प्रसार इसलिए उल्लेखनीय है कि इसके माध्यम से हिन्दी साहित्य की लोकप्रियता बढी है। उदाहरणार्थ, 'अण्डे के बारे मे १०० तथ्य', पुस्तक की प्रसार-सख्या दिसम्बर '९८ तक तीन लाख चालीस हजार तक पहुँच गयी है, जिसका प्राय सभी भारतीय भापाओ मे अनुवाद हुआ है और अग्रेजी मे इसके कई सस्करण प्रकाशित हुए है। नेमी साहित्य मे इसने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। आशय यह है, नेमी साहित्य मे शाकाहार-विपयक ऐसी कई पुस्तके है, जो जन-साधारण के मध्य केवल प्रिय ही नही हुई है, मान्य भी हुई है। इन्हे केवल प्रचार-साहित्य के रूप मे नही लिया जा सकता है। इनका अपना साहित्य-स्तर है। इस प्रकार साहित्य को लोकोपयोगी बनाने मे नेमी साहित्य का अपना योगदान है। नेमी साहित्य स्वाध्यायमूलक है। इसमे स्वाध्याय की प्रेरणा स्वत मिलती है। विपय की गहराई मे जाने की आवश्यकता का अनुभव इसमे सहज ही होता है। स्वाध्याय-मात्र स्वाध्याय नही रह जाए, उनका सामाजिक रूपान्तर भी हो, सामाजिक जीवन मे स्वाध्याय की सक्रियता पर नेमी साहित्य मे बल दिया गया है। साध्य-साधन की एकरूपता को स्वाध्याय का विषय बनाया गया है।

नेमी साहित्य मे रचनात्मकता अहिसक लोकक्रान्ति विषयक है। क्रान्ति का स्वर इसमे मुखरित हुआ है। इसमे ऐसी क्रान्ति का आह्वान और समर्थन किया गया है, जो लोक जीवन को सत्य-अहिसा का सुविचारित/सुदृढ आधार प्रदान करता है। लोकपुरुषो/लोकनायको के विचारो का प्रतिपादन नेमी साहित्य मे परिलक्षित होता है।

सक्षेप मे, नेमी साहित्य भी आधुनिक सत्साहित्य का अभिन्न अग है। उसमे उन विषयो का समावेश होता आया है, जो सत्साहित्य के अन्तर्गत आते है, लेकिन अपनी विशिष्ट चिन्तन और लेखन-शैली के कारण उसमे अपनी विशिष्टता है। यहाँ नेमी साहित्य की गुणवत्ता पर ध्यान आकर्षित करने के लिए साकेतिक रूप मे आध्यात्मिकता, धार्मिकता, नैतिकता, वैज्ञानिकता, मौलिकता, नवीनता, आदर्शमूलक, दूरदर्शिता, समन्वयशीलता, पारदर्शिता, रचनात्मकता, स्वाध्यायशीलता, साध्य-साधन की एकरूपता विशालता/व्यापकता इत्यादि का उल्लेख किया गया है। नेमी साहित्य पर इस दृष्टिकोण से भी विचार किया जा सकता है। इसे दर्शनीय वनाने का यह प्रारभिक प्रयास-मात्र है।

आधुनिक साहित्य मे नेमी साहित्य का स्थान

नेमी साहित्य को मै किस दृष्टि से देखता हूँ, उसके सबन्ध मे किस तरह सोचता हूँ, उसको क्यो उपयोगी मानता हूँ, वह मुझे क्यो आकर्षित कर रहा है, मै क्यो इस दिशा मे अपनी सपूर्ण शक्ति लगा रहा हूँ। ये सब और ऐसी बाते विचारणीय है।

जैसा कि मैने माना या कहा कि नेमी साहित्य है। उसकी अपनी अलग पहचान है। उमकी अपनी अलग दृष्टि है। उसकी अपनी विशेषता है। उसकी अपनी शैलीगत विशिष्टता है। जैसा श्री रत्नेश कुसुमाकर ने लिखा है कि डॉ नेमीचन्द जैन भीड मे आसानी से पहचाने जा सकते है। इसी प्रकार उनकी अपनी पहचान है। यहाँ भीड का अर्थ व्यक्तियो की भीड से नही है। यदि वह है भी तो लेखको/सपादको की भीड मे है। यह भी अप्रत्यक्ष रूप मे ही पहचान की ओर सकेत है कि किसी भी विषय पर वहुत से लेखको ने लिखा है और उन लेखो मे किसी भी लेखक का उल्लेख न हो तो विचार और शैलीगत विशिष्टता के कारण, अपनी मौलिकता और पारदर्शिता के कारण भी लेख किसने लिखा है, सपादकीय किसका है– यह पता लगाया जा सकता है। अनाम (वेनाम होने पर भी) यदि डॉ नेमीचन्द जैन द्वारा लिखा गया होगा तो उसकी पहचान अप्रत्यक्ष रूप से भी की जा सकती है।

साहित्य मे अनेको/सैकडो लेखको/विचारको की पुस्तके है और रहेगी। साहित्य को समृद्ध/सपन्न वनाने मे सवका अपना-अपने योगदान है। प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से सव ऐसा करते आ रहे है या उनके द्वारा सहज होता जा रहा है। वह मात्रात्मक और गुणात्मक दोनो हो सकते है। उनके द्वारा किया गया हो या सपादित करके किसी ने उसमे समाविष्ट किया हो। आशय यह है कि साहित्य मे अपनी पहचान वनाना इतना आसान काम नही है। समीक्षक/आलोचक यह कह कर मेरे कथन को महत्त्वहीन वता सकते है– यह सव वकवास है, भावुकता है, निरर्थक चर्चा है। इसमे कोई दम नहीं है, इसकी कोई आवश्यकता भी तो नही है। उदाहरण देकर कहेगे, देखिये, हिन्दी मे सैकडो/हजारो लेखक है, सपादक है, साहित्यकार है, सव लिखते आ रहे है। यह उनका 'रुटीन'-सा है। जैसे कोई सपादक है, तो उसे तो प्रतिदिन लिखना ही है। क्या उसके सपादकीय लेख साहित्य के अन्तर्गत मान्य हो सकते है? या उनका समावेश साहित्य मे होना चाहिये? इनमे विशेषता क्या है? आप कहेगे कि हजारो सपादको के ऐसे सपादकीय लेख साहित्य की रचनाऍ है, तो फिर साहित्य की अवमानना ही यह होगी। साहित्य इतना सस्ता हल्का, सामान्य स्तर का नही है। यदि सपादको के ऐसे लेखो की पुस्तके तैयार की जाये, तो अम्बार लग जाये और उन्हे साहित्यकार माना जाने

लगे। इसी प्रकार आप यह भी कह सकते है कि भाषण/व्याख्यान जो दिये जाते है, उन्हे भी लिखित रूप मे प्रस्तुत किया जाये तो यह भी साहित्य के अन्तर्गत आ सकता है। तो हर लिखित बात/वार्ता साहित्य के अन्तर्गत आने लगेगी। हजारो अखबार/प्रचार-सामग्री से युक्त पुस्तको को साहित्य मे स्थान मिल गया या दिया तो यह साहित्य की मूल अवधारणा/आदर्श के बिल्कुल विपरीत है। हर लिखित बातचीत (वार्तालाप)/विचार/लेख साहित्य के अन्तर्गत नही आ सकता। हर कोई लेखक/सपादक को साहित्यकार माना ही नही जा सकता, और फिर आपकी बात कौन सुनता/मानता है?

आप होते कौन है? आपकी अपनी क्या हैसियत है, औकात है? आप तो मात्र एक सामान्य/साधारण पाठक/वाचक है। आपकी समझ साहित्य को लेकर है भी कितनी? क्यो अपनी शक्ति/समय इसमे व्यर्थ कर रहे हो? आपकी बात न तो कोई सुनने वाला है, न मानने वाला। जिसका कोई अस्तित्व ही नही है, उसे व्यर्थ ही मोहवश अस्तित्व मे ला रहो और कहना चाहते हो कि उसका भी 'सहअस्तित्व' है। यह सब चलने वाला/होने वाला नही है।

इससे भी तीखी/तीव्र प्रतिक्रिया मुझे आदरणीय भैया (डॉ नेमीचन्दजी जैन) से सुनने को मिली थी कि मैने ऐसा-वैसा कुछ नही लिखा है। मेरे लेखन मे ऐसा कुछ भी नही है, जो मौलिक और विशिष्ट माना जा सकता है, जो चर्चा का विषय बन सकता है। नेमी साहित्य जैसा कुछ है ही नही, जब है ही नही, तब उस पर चर्चा का प्रश्न ही कहाँ उठता है? तुम्हारी यह भ्रामक धारणा है। अपना मोह भग करो और इस दिशा मे सोचना बन्द करो। साहित्यकार तो मै हूँ नही। थोडा-बहुत लिखा है, लिखता हूँ वह भी दबाव मे। उसमे ऐसा कुछ नही है, जिसे साहित्य मे समावेश किया जाए। यह तुम्हारी निरी बकवास है, फिजूल की बात है। अपनी औकात को पहचानो/मोहवश ऐसा कुछ भी नही करो, जिससे मेरी भावना को ठेस पहुँचे। मै तुम्हारे इस लिखने-लिखवाने के कार्य से दु खी हूँ, असतुष्ट हूँ, परेशान भी हूँ। मुझे यह सब बिल्कुल/ कतई पसन्द नही है। अब आगे से न तो लिखोगे/लिखवाओगे। प्रकाशन की बात तो है ही नही– वह भी अपने प्रकाशन के अन्तर्गत।

ये सब सुन कर मै सहम गया/स्तब्ध रह गया हूँ, निरुत्साहित भी हुआ हूँ। लम्बे समय तक अनमना/उदास भी रहा हूँ। मै उनके हठी/क्रोधी स्वभाव से परिचित भी हूँ। उनकी आज्ञा का उल्लघन असहनीय भी हो सकता है, जोखिमभरा तो है ही। मेरी स्थिति कुछ किंकर्तव्यविमूढ-सी हुई। मैने इतर कार्यो मे अपने को सलग्न भी कर लिया, जिन्हे मुझे इसके लिए स्थगित करना पड रहे थे, लेकिन अन्तर्धारा/अन्तर-प्रवाह मे 'नेमी साहित्य' अस्तित्वहीन नही हुआ।

मेरी मान्यता/धारणा इससे भिन्न है। मै स्वय को बहुपठित, बहुत पढ़ने वाला मानता हूँ। मैने पढ़ने मे कमी नही की है। खूब पढा है। सत्साहित्य ही मेरा अपना प्रिय विपय रहा है। मेरा मन-मस्तिष्क/दिल-दिमाग सत्साहित्य के पढे गये विचारो/भावनाओ से ओतप्रोत होते रहे है। मैने प्रभावित होकर नोट्स भी तैयार किये थे। जो-जो विचार मुझे जीवनोपयोगी लगे, उनको नोधता भी गया हूँ। मैने उन्हे अपने चिन्तन का विपय भी वनाया है। डायरीनुमा उन्हे सग्रहीत भी किया है। अपने चिन्तन को क्रमवद्ध व्यवस्थित करने का प्रयास भी किया है। इसमे मेरी अपनी मौलिकता नही है। प्रभावित विचारो को जुगाली-मात्र इसे माना जा सकता है। यह सब मै अपने लिए करता रहा हूँ– स्वान्त सुखाय कहिये। स्वाध्याय के अन्तर्गत भी माना जा सकता है, विचारो को सुव्यवस्थित करने का व्यक्तिगत प्रयास भी कहा जा सकता है।

विगत पाँच वर्षो से इस दिशा मे एक परिवर्तन हुआ। 'तीर्थंकर' के सपादकीय मेरे लिए पठनीय रहे है। शायद ही कोई सपादकीय रहा हो, जो पढ़ने से छूट गया हो। अक हाथ मे आते ही सरसरी निगाह से देखने के वाद 'सपादकीय' को आद्योपान्त पढ़ने का प्रयास रहा है– व्यस्त होने पर भी। सपादकीय लेखो को सकलित करने का प्रयत्न मैने किया। वीस वर्षो मे प्रकाशित लेखो को सकलित करने के साथ-ही-साथ उन्हे काल-क्रम मे या विपय-क्रम मे कैसे व्यवस्थित किया जाए, इसके लिए विशेष कोशिश भी मेरी रही। वे पुस्तकाकार हो सकते है– कैसे, कव, क्यो– कई प्रश्न भी आये। यह सुझाव वरावर आता रहा कि सपादकीय लेखो को अवश्य ही पुस्तक/ग्रन्थ के रूप मे एक नही, खण्डो/भागो मे प्रकाशित किया जाना चाहिये। इस पर गभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिये, ऐसे सुझाव आते रहे।

यह मै इसलिए लिख रहा हूँ कि नेमी साहित्य की परिकल्पना मेरे मन-मस्तिष्क मे सपादकीय लेखो से भी परिपुष्ट होती आई है। सपादकीय लेखो को मैने इस दृष्टि से भी लिया है कि उनमे मात्र सामयिकता/प्रासगिकता को ही प्रधानता नही दी गई है, उनमे शाश्वतता/दूरदर्शिता की भी प्रमुखता है। वे मात्र समय-सीमित नही है, उनमे समय-असीमित भी है। 'वे जैनधर्म/दर्शन/साहित्य/समाज और श्रमण सस्कृति ही क्यो, भारतीय सस्कृति के साथ मानव-सस्कृति, विश्व सस्कृति के शाश्वत मूल्यो पर आधारित है। इनमे अहिंसा का उद्घोष है, वही विश्व-शान्ति का प्रतिपादन है। इन्हे सास्कृतिक आलेख के साथ ही ऐतिहासिक दस्तावेज भी माना जा सकता है, क्योकि विगत २५ वर्षो का इनमे सिंहावलोकन है, आधुनिकता-वोध है, विज्ञान और अध्यात्म की समन्वयशील भूमिका का समर्थन है। ये चेतावनी और चुनौती के मध्य सुदृढ़ स्थिर है, वही इक्कीसवी शताब्दी की अगवानी/स्वागत के लिए तत्पर/तैयार है। ये विचार मैने डॉ. नेमीचन्द जैन के तीर्थंकर के सपादकीय लेखो के चयनित अशो वाली चयनिका मे जनवरी १९९७ मे व्यक्त किये थे।

'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' के सपादकीय लेखो को मै नेमी साहित्य का अभिन्न अग मानता हूँ। ये ऐसे आलेख है जिनमे-से अनेको पुस्तको का जन्म हुआ है। 'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' मे प्रकाशित लेखमालाओ ने पुस्तकाकार प्राप्त किया है। ये पुस्तके एक साथ नही लिखी गई, लेकिन लेखक की अन्तर-धारा सतत्/अविराम प्रवाहित होती रही, धारावाहिकता वनी रही है। अव उन्होने नेमी साहित्य मे अपना स्थान बना लिया है।

विगत वर्पो मे 'साहित्य सचयनिका' के अन्तर्गत जो वारह सेट प्रकाशित हुए है, जिनमे १०० पुस्तक-पुस्तिकाओ का समावेश हुआ है, वह भी नेमी साहित्य है। कुल मिलाकर अवलोकन किया जाए तो नेमी साहित्य लगभग आधा प्रकाशित हुआ है। वर्तमान/आधुनिक साहित्य के व्यापक/सन्दर्भ/परिप्रेक्ष्य मे नेमी साहित्य चर्चा का विषय बन सकता है।

डॉ नेमीचन्द जैन साहित्य के अन्तर्गत उनके द्वारा लिखित/सपादित सामग्री जो एकत्रित/सकलित/सपादित है, उस पर समग्रता/सपूर्णता से विचार किया जाना आवश्यक है, इसके लिए सर्वप्रथम नेमी साहित्य की उपलब्धता सुनिश्चित की जाना विचारणीय है।

मै अन्त प्रेरित हो कर प्रवृत्त हूँ। मेरी अपनी धारणा है, जो अब मान्यता भी बनती जा रही है कि आधुनिक साहित्य के सन्दर्भ मे नेमी साहित्य अपना स्थान बना सकता है, क्योकि उसकी अपनी मौलिकता/विशिष्टता उसे ऐसा स्थान दिला सकती है। यह समीक्षा का विषय तो है ही, शोध का विपय भी है।

नेमी साहित्य की परिकल्पना, अस्तित्व और स्थान पर सुधीजनो/साहित्यकारो, शोधार्थियो का ध्यान आकृष्ट करना इसलिए आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि मेरे कथन/मान्यता मे कहाँ तक गभीरता/समसामयिकता है– या यह भावुकता ही है। इसे वे ही बता सकते है, समझा सकते है।

आधुनिक साहित्य लिखने का अर्थ यह है कि नेमी साहित्य आधुनिकता-बोध से ओतप्रोत है, उसमे वर्तमान को यथार्थ रूप मे प्रस्तुत करते हुए आदर्श को नये आयाम देने का मौलिक प्रयास किया गया है। जैन साहित्य को तो निश्चित रूप से एक नई दिशा/नया आयाम दिया है। शास्त्रीयता/पडिताऊपन से हट कर/उठ कर उसे हिन्दी के आधुनिक साहित्य मे लाने का प्रयास किया है। जैन समाज/जगत् मे 'तीर्थंकर' को शीर्पस्थ पत्र के रूप मे इसलिए मान्यता मिली है और उन्हे श्रेष्ठ सपादक माना जाता है। उन्हे इसके लिए 'पत्र-महर्षि' की उपाधि से भी सम्मानित किया गया है – इतर भापाओ के प्रबुद्ध साहित्यकारो ने भी उनकी लेखनी को मान्यता दी है।

अव ममय का तकाजा है कि इस विषय पर गभीरता से विचार किया जाए और नेमी माहित्य के विषय मे विचार-विमर्श किया जाये। □

नेमी साहित्य की १०० पुस्तकों में-से अनुचिन्तन

सलग्न साहित्य-चयनिका मे नेमी साहित्य की ७० पुस्तको मे-से चयनित अश है, यहाँ शेष ३० पुस्तको के चयनित अश प्रस्तुत है।

वातचीत समाधान का मार्ग

वातचीत ज्ञान का, समाधान का, शान्ति और सुख का, सम्यक्त्व और समत्व का मृत्युजय मार्ग है। (वातचीत क्या क्यो, कैसे)

णमोकार सार्वभौम महामन्त्र

णमोकार-मन्त्र आध्यात्मिक उन्नति और सामाजिक एकता का मूलाधार है। उसकी साधना-पद्धति और प्रयोग पूर्णत वैज्ञानिक है। वह सार्वभौम महामन्त्र है। (वातचीत णमोकार-महामन्त्र)

भक्ति और पूजा . आत्म-शोधन की अपूर्व प्रक्रिया

भक्ति का स्वरूप समझने से उसकी सार्थकता स्वत स्पष्ट हो सकती है। पूजा मूर्ति की नही, मूर्तिमान की की जाती है। पूजा आत्मशोधन की अपूर्व प्रक्रिया है। (वातचीत भक्ति और पूजा)

सामायिक समता की साधना/आराधना

सामायिक आत्मशुद्धि/आत्मोन्वेषण की प्रक्रिया है। वह समता की साधना/आराधना है। वह उत्तम सिद्धि के लिए उत्तम साधना है। (वातचीत सामयिक)

प्रतिकमण ग्रन्थि-शोधन की आधार-भूमिका

प्रतिक्रमण अतिक्रमण रोकने का उपाय है। वह जीवन शोधन की प्रक्रिया है। उसका मुख्य लक्ष्य अपने मूल स्थान पर लौटता है। वह ग्रन्थि-शोधन की आधार भूमिका है। (वातचीत प्रतिक्रमण)

ध्यान मे वीतरागता की अनुभूति

ध्यानारूढ होकर प्रेय और श्रेय की प्रतीति/अनुभूति हो सकती है। स्वाध्याय और ध्यान मृत्यु को सुखद/मगलमय बनाने के साधन है। ध्यान मे वीतरागता की अनुभूति होती है। (वातचीत ध्यान/योग)

श्रावकाचार विचारपूर्वक सदाचार

श्रावक वह है जिसके आचरण मे जैनत्व हो। बेहतर मानव यानी बेहतर श्रावक है। उसका आचार विचारपूर्वक सदाचार होना है। (बातचीत श्रावकाचार)

धर्म मे-से समाज-सेवा

आत्महित की समाज-हित है। धर्म मे-से जो समाज-सेवा होती है, वही सार्थक है। हम बदलेगे, तो समाज बदलेगा। समाज मे सिर्फ उपदेश भाषण से क्रान्ति नही हो सकती। (वातचीत समाज-सेवा)

शाकाहार : अहिंसक जीवन-शैली का प्रमुख आधार

मन स्वस्थ, वचन स्वस्थ, काम स्वस्थ तब होगा हमारा शाकाहार सफल, क्योकि वह अहिंसक जीवन-शैली प्रमुख आधार है। वह पौष्टिक, प्राकृतिक, सस्ता और स्वास्थ्यप्रद है। (वातचीत शाकाहार)

मुख नहीं, आमुख देखे

सूरत नही, सीरत देखे, मुख नही आमुख देखे। अहिसक का आरभ अपरिग्रह से होता है। इसका आरभ व्यक्ति को स्वय करना है। (वातचीत साहित्यकारो से)

नग्नता का अनुशासन

नग्नता का गौरव इसमे है कि वह शरीर का दास न बने, शरीर को अपना गुलाम न बनाये – उसे अपना साथी हमजोली बनाये। शरीर की दासता से बाहर रखने के लिए रहने के लिए नग्नता का अनुशासन है। वह विलक्षण/अमोघ वरदान है।

(नग्नता अर्थात् पारदर्शिता)

मॉ मॉ है

माँ माँ है, उसके लिए कोई उपमा नही है, कोई रूपक नही है, कोई अलकार नही है, कोई उपाधि नही है। बस, सारी स्थितियो के लिए एक ही शब्द है। (माँ)

काम छोटा या बडा नहीं

दुनिया का कोई काम छोटा या बडा नही है– हम ही उसे अपनी नीयत और निष्ठा से छोटा या बडा बनाते है। (पिताजी और उनका स्वाध्याय)

सहअस्तित्व का उद्घोष

जैनधर्म के प्रवर्तको ने आज से शताब्दियो पूर्व सहअस्तित्व का जो उद्घोष किया था वह आज भी प्रासगिक है, कल भी रहेगा और अतीत मे तो वह अपनी सार्थकता और गुणवत्ता सिद्ध कर ही चुका है। (जैनधर्म प्रारभिक परिचय)

जैनधर्म की व्यावहारिकता

जैनधर्म की व्यावहारिकता है उसका यह उपदेश कि यदि हम आचार मे अहिसक और विचार मे अनेकान्तिक है, तो फिर कही कोई टकराहट/कोई घाटा नही है। सब ओर शान्ति, सुख और समृद्धि का साम्राज्य होगा।

(जैनधर्म मे स्वाधीनता, वैज्ञानिकता, व्यावहारिकता)

वीतरागता पार्थक्य-बोध/पृथक्ककरण का विज्ञान है – देह-विदेह का विलग्न करने की प्रक्रिया है। वह सूक्ष्मतम है, अत इसकी उपलब्धि बगैर प्रज्ञापरक तप सभव नही है।
(वैराग्य, निर्बन्धता, वीतरागता)

तन, मन, साधन, साधन है आत्मा

मानव-शरीर अनन्त नैमित्तिक शक्तियो का खजाना है। वह भेद-विज्ञान की जन्मस्थली है। भेद-विज्ञान जैसा दुर्लभ रत्न हमे शरीर की गहराइयो मे डुबकियाँ लगाने पर ही मिलता है, जैसे योग मे शरीर प्रधान नही है, भेद-विज्ञान मुख्य है।
(तन-मन साधन, साध्य है आत्मा)

सम्यक्-सतुलित तीर्थयात्रा

सम्यक्-सतुलित तीर्थयात्रा वही है जो तीर्थयात्री को वीतरागोन्मुख करे, उसे पूर्वग्रहो से हटा कर उसके चित्त की निर्मलता को प्रकट करे।
(तीर्थयात्रा शान्ति की खोज)

सिद्ध होने का सीधा मतलब

सिद्ध होने का सीधा-सा मतलब है स्वय को स्वय मे पाना। सिद्धत्व मे उतरने की प्रक्रिया है, पडाव-दर-पडाव कार्यक्रम है साधु/उपाध्याय/आचार्य/अरहत।
(साधक, साधु, सिद्ध)

मगलाचरण के तीन भेद

मगलाचरण के कई भेद है – कम-से-कम तीन तो है ही। ये है नमस्कारात्मक, वस्तु निदेशात्मक और आशीर्वादात्मक।
(मगलाचरण मे सार्थकता)

पण्डित-वर्ग जो दिशाबोध दे सके

आज हमे ऐसे पण्डित वर्ग की आवश्यकता है जो उपस्थित सदर्भो मे हमे दिशा-बोध दे सके और जीवन को अथवा शास्त्र को जीवन से जोड सके।
(प्रमुख दिवगत जैन पण्डित/विद्वान्)

मृत्यु एक महोत्सव

स्वाधीन इन्द्र, जो मन-की महावती भी ठीक से नही कर सकता, की अपेक्षा उससे जो रस सींच रहा है पूछिये कि मृत्यु क्या होती है और उसे एक महोत्सव मे कैसे बदला जा सकता है?
(गांधी ने की सल्लेखना)

अप्पदीवोभव

महावीर ने एक बात बडे मार्के की कही है। उन्होंने कहा अप्पदीवोभव – तू अपना दिया खुद बन। बाहर से तुझे रोशनी मिलने वाली नही है, रोशनी तो तू स्वयं

है। तू शायद जानता नही है कि तू स्वय दीपक है। यदि प्रयत्न करे तो तू स्वय को स्वय से ज्योतित कर सकता है। (विविध रचनाएँ)

प्रणाम उन्हे

प्रणाम उन्हे, केवल उन्हे ही/जो ज्ञान है, केवलज्ञान है/ज्ञान के अलावा जो कुछ और नही है। प्रणाम उन्हे/जिन्होने ज्ञान के अतिरिक्त वाकी सव गला डाला है/भस्म कर दिया है/ शेष जो वच रहा है वह शुभ्रता है, यथार्थ है/कभी न लौटने के लिए जो लोकाग्र तक पहुँचे, पहुँचने को है/ पहुँचने की तत्परता मे है। प्रणाम उन्हे, नमस्कार उन्हे!

(कविताएँ)

धन की निर्धनता

यदि हम विश्व के इस मर्म को समझ ले कि कोई किसी पर निर्भर नही है, सबकी अपनी सत्ताएँ और अस्मिताएँ है तो धन की सीमाएँ खुद-व-खुद स्पष्ट होने लगेगी और वह गरीब होने लगेगा। (आकाशवाणी-वार्ताएँ)

एक ऐसे विश्व की कल्पना

क्या हम एक ऐसे विश्व की कल्पना नही कर सकते जहाँ भूमि उपजाऊ, जल स्वच्छ और हवा ताजा हो? कर सकते है बशर्ते हम शाकाहार को स्वीकार करे और मासाहार तथा तज्जनित करता को क्रमश विदा दे।

(शाकाहार ब्लूप्रिंट-३, वर्ष १९९९)

शाकाहार · एक जीवन-शैली

शाकाहार मात्र आहार ही नही है अपितु शताब्दियो मे विकसित एक अत्यन्त अनुभूत, परिपक्व, पर्यावरण-सरक्षक जीवन-शैली भी है। (शाकाहार गुणवत्ता)

धूम्रपान : जन स्वास्थ्य का दुश्मन न. १

समाजसेवी सस्थाओ का यह कर्तव्य है कि वे धूम्रपान अर्थात् तम्बाकू के लगभग सभी उत्पादो के खिलाफ एक धर्मयुद्ध छेडे, उसके विरुद्ध स्वस्थ मानसिकता का निर्माण करे और इस तरह जन-स्वास्थ्य के दुश्मन न १ से अतिम युद्ध जूझे।

(धूम्रमान १०० तथ्य)

स्वस्थ/सवेदनशील दृष्टि

भारतीय सस्कृति के मूलमन्त्र विविधता मे एकता मे विविधता मे जो आस्था रखते है, भाषा, सस्कृति, समाजशास्त्र और समाज-सेवा मे जो कार्यरत है, उन सभी के लिए भी हिन्दी कोश है, जिसमे भील प्रजाति को समझने की दिशा मे एक अधिक स्वस्थ तथा सवेदनशील दृष्टि है। लोकवार्ता की दृष्टि से इसमे शब्द की खिडकियो से भिल्ल लोक जीवन की नई-पुरानी झाँकियाँ अनायास ही प्रस्तुत हो गयी है। (भीली-हिन्दी-कोश)

शवरी

भिलर जाति की एक भिलरी (शवरी) का अच्छिष्ट भगवान् राम ने स्वीकार किया था, वडे स्नेह से, वडे गद्‌गद और प्रसन्न हिये से वह जान कर हम रोमाचित हुए वगैर नही रह पाते। हमे ऐसा प्रतीत होता है जैसे उस दिन कोई झोपडी किसी महल और कोई अस्पृश्य किसी स्पृश्य मे एकाकार हुए थे।

(भील भापा, साहित्य और सस्कृति)

साहित्य-संचयनिका सन्दर्भित की संपूर्ति

सलग्न साहित्य-सचयनिका की सदर्शिका मे सात खण्डो की ७१ पुस्तको का समावेश किया गया था, अव उनकी सख्या १०० है, उनका उल्लेख यहाँ किया गया है।

वातचीत सेट-८ १ क्या/कौन/कहाँ, २ णमोकार-महामन्त्र, ३ भक्ति और पूजा, ४ सामयिक, ५ प्रतिक्रमण, ६ ध्यान/योग, ७ श्रावकाचार, ८ समाज-सेवा ९ साहित्यकारो से, १० शाकाहार, ११ नग्नता अर्थात् पारदर्शिता, १२ खुद-व-खुद। सम्पूर्ण सेट का मूल्य रु ६०.०० (साठ रुपये) है।

सुवोध सेट-९ १ माँ, २ पिताजी और उनका स्वाध्याय, ३ मेरा जीवन मिशन, ४ जैनधर्म का प्रारभिक परिचय, ५ जैनधर्म मे स्वाधीनता, वैज्ञानिकता, व्यावहारिकता, ६ वैराग्य, निर्वन्धता, वीतरागता, ७ तन-मन साधन, साध्य है आत्मा, ८ तीर्थयात्रा शान्ति की यात्रा, ९ साधन, साधु, सिद्ध, १० मगलाचरण से मन्दिर तक। सम्पूर्ण सेट का मूल्य रु ४०.०० (चालीस रुपये) है।

विविधा सेट-१० १ विविधा, २ विविध रचनाएँ, ३ कविताएँ, ४ आकाशवाणी वार्ताएँ, ५ भीली-हिन्दी-कोश, ६ भील भापा, साहित्य और सस्कृति। सम्पूर्ण सेट का मूल्य रु ८०.०० (अस्सी रुपये) है।

शाकाहार-सेट के अन्तर्गत तीन पुस्तको को जोडा गया है १ शाकाहार ब्लूप्रिंट-३ वर्ष १९९९ (चौदह सूत्री कार्य-योजना-३), २ शाकाहार की गुणवत्ता (शाकाहार गौरव प्रदर्शनी-१), ३ धूम्रपान १०० तथ्य।

साहित्य-सचयनिका के दस सेटो की १०० पुस्तके और सीमित प्रतियो मे उपलब्ध १० पुस्तकें, कुल मिलाकर ११० पुस्तके/पुस्तिकाएँ नेमी साहित्य का अभिन्न अग है।

नेमी साहित्य : सन्दर्भ पुस्तके

डॉ नेमीचन्द जैन साहित्य (पचास वर्ष - सन् १९४८-९८) एक अवलोकन : इसमे साहित्य-सचयनिका, विविध रचनाएँ, सपादकीय लेख, विशेपाक, जैन विधा के आलेख, शोध-प्रबन्ध, साहित्य मे शव्दावलोकन, शव्दकोश साहित्य मे सपूर्ति, कविताएँ विविधता की विधा मे, कहानियाँ, वोधकथाएँ, जीवन-प्रसग, आकाशवाणी-वार्ताएँ, सपादित पुस्तके, समीक्षित पुस्तके/पत्र-पत्रिकाएँ, दैनदिनी, यात्राएँ, पत्र–१७ अध्यायो के अन्तर्गत ४०० पृष्ठो मे अनुक्रमित और अर्द्धशताव्दी मे लिखित सामग्री का सर्वप्रथम सकलन/सपादन। प्रथम सस्करण अक्टूवर, १९९८ मे प्रकाशित, मूल्य है एक सौ रुपये।

डॉ. नेमीचन्द जैन · व्यक्तित्व और कृतित्व इसके ४१ विशेष लेखो मे ३१ साहित्यकारो, समाजसेवियो एव परिजनो द्वारा डॉ नेमीचन्द जैन के वहुआयामी/बहुमुखी व्यक्तित्व के विविध पक्षो/पहलुओ को उजागर किया गया है। 'आलेख' के अन्तर्गत उनकी सितम्बर, '९८ से मार्च '९९ तक की विविध रचनाओ का समावेश है। 'अपने वारे मे' उनका आत्मकथ्य है। रगीन आवरण सहित ४०० पृष्ठीय पुस्तक के प्रथम सस्करण (मई, १९९९) का मूल्य है एक सौ रुपये।

डॉ नेमीचन्द जैन की सारस्वत साधना · एक झलक · श्री रत्नेश कुसुमाकर द्वारा 'वे भीड मे आसानी से पहचाने जा सकते है, कविता-सृजन प्रथम चरण, सप्त सिन्धुओ का सन्तरण, आध्यात्मिक पत्रकारिता के सुमेरु, कुशल शव्दशिल्पी/पारखी, बातचीत को नया आयाम, 'वर्तमान' के परिप्रेक्ष्य मे महावीर, अर्द्धशताब्दी के भारतीय चिन्तनधारा के सहयात्री, प्रश्न मेरे उत्तर उनके, जी हाँ, वे मेरे अग्रज है – इन अध्यायो के अन्तर्गत डॉ नेमीचन्द जैन के बहुआयामी व्यक्तित्व/कृतित्व का विवेचन किया गया है। रगीन आवरण-सहित ६४ पृष्ठीय पुस्तक के प्रथम सस्करण (मई, १९९९) का मूल्य बीस रुपये है।

डॉ नेमीचन्द जैन के साहित्य-सिन्धु मे-से कुछ अमृत बिन्दु श्री सुरेश सरल द्वारा १०० पुस्तको के १० कुलक, व्यक्तित्व और कृतित्व के आईने मे उनके कतिपय बिम्ब, उनकी काव्य-यात्रा एक सिहावलोकन, जैन पत्रकारिता को उनका अवदान, शाकाहार-मार्ग पर गाधीवाद के चरणधर, गाधीजी की शाकाहार-क्रान्ति के दो अनुवर्ती व्यक्तित्व, बहुत खराब है वे– इन शीर्षको के माध्यम से डॉ नेमीचन्द जैन के व्यापक/विविध पक्षो/पहलुओ को उजागर किया गया है। रगीन आवरण-साहित्य ६४ पृष्ठीय प्रथम सस्करण (मई, १९९९) का मूल्य बीस रुपये है।

डॉ नेमीचन्द जैन . अवदान और आकलन इसमे डॉ नेमीचन्द जैन का हिन्दी साहित्य को अवदान, जैन साहित्य को योगदान, 'शाकाहार' को मौलिक देन – जैसे आलेखो के साथ उनके व्यक्तित्व और कृतित्व, सारस्वत साधना, साहित्य-सिन्धु मे-से कुछ अमृत विन्दु का आशिक आकलन है। 'तीर्थकर' और 'शाकाहार-क्रान्ति' सपादकीय आलेखो के आलोक मे डॉ नेमीचन्द जैन का आरम्भिक आकलन श्री रत्नेश कुसुमाकर ने किया है। रगीन आवरण सहित ६४ पृष्ठीय पुस्तक प्रथम सस्करण (जून, २०००) का मूल्य वीस रुपये है।

महामन्त्र

बहुआयामी



णमोकार

मांस-निर्यात :
१०० तथ्य

अण्डे के बारे में
१०० तथ्य

शाकाहार-विज्ञान

कत्लखाने : १०० तथ्य

शाकाहार क्रांति

अहिंसा
है हमारी माँ

साहित्य-चयनिका

डॉ. नेमीचन्द जैन की
७० पुस्तकों में-से
चयनित अंश

जैनधर्म : १०० तथ्य

शाकाहार-स्तोत्र

चयनिका

शाकाहार

(१०१ शाकाहार-संपादकीय)

हीरा भैया प्रकाशन इन्दौर

६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाड़िया मार्ग, इन्दौर - ४५२००१ (मध्यप्रदेश)

साहित्य-चयनिका

णमोकार महामन्त्र : द्वादशांग का नवनीत

यह समस्त श्रुत-मन्थन है। यह श्रुत का नवनीत है। हमारा जितना द्वादशाग है, यदि उसका मन्थन किया जाए, दोहन किया जाए, तो नवनीत के रूप मे णमोकार मन्त्र निकलता है। इस तरह यह नवनीत है, साराश है और साराश का ग्रहण करने से सपूर्ण का ग्रहण हो जाता है।

अनन्त संभावनाएँ

इसमे अनन्ताएँ इसलिए है कि यह अनन्तताओ से शुरू होता है और अनन्तताओ मे ही समाप्त होता है। आप 'साधु' वाले छोर को ले ले या 'अरिहत' वाले छोर को, दोनो मे ही अनन्तताएँ है। ध्यान मे दोनो के जो चित्र बनेगे वे एक-जैसे हो नहीं सकते। शाम, सुबह, दुपहर, रात-रात मे भी अलग-अलग, पहर मे अलग-अलग। मन स्थितियो और ध्यानावस्थाओ की तीव्रताओ पर ही ये सारे चित्र बनेगे/मिटेगे। कुल मिलायेगे तो भी सारे चित्र और सारी मुद्राएँ समाप्त नहीं हो पायेगी, इसलिए माने कि 'णमोकार' की प्रत्येक स्थिति सभावनाओ की खान है। वह अनादि और अनन्त है अत हम जानने की कोशिश पर यह जान नहीं सकते कि उसका ओर-छोर कहॉ है ? 'ओर' की प्यास-पिपासा इस मन्त्र के सन्दर्भ मे कभी मिट नहीं सकती। (बहुआयामी महामन्त्र णमोकार)

ॐ और प्रणव

दोनो पर्याय शब्द है। प्रणव शब्द के मूल मे 'नू' धातु है, जिसका अर्थ है आत्मा-की-स्तुति करना। आत्मा-की-स्तुति का अर्थ है आत्मानुसन्धान, आत्मा के स्वरूप को जानना तथा तदनुरूप स्वरूपाचरण करना, जबकि आत्मस्तुति आत्मशसा कहलायेगी। इससे अहकार बढेगा जो व्यक्ति को पतन की ओर ले जाएगा। प्रणव के मायने प्राण देने वाला भी है। योगशास्त्र मे ॐ को मनुष्य की प्राण-शक्ति को प्रज्वलित करने/रखने वाला तत्त्व कहा गया है।

अ-नाम

नाम-रहित होने पर भी परमात्मा को अनेक नामो से सबोधित किया जाता है। इन अनन्त नामो मे ॐ सिरमोर है। यह ऐसा नाम है, जिसमे नाम और नामी एकरूप हुए है।

कालातीत

जैनधर्म : आत्मधर्म

जैनधर्म आत्मधर्म है। अहिसा इसकी भाषा है और अनेकान्त इसकी परिभाषा। आत्मा को जानना, उसे उसकी स्वाभाविकता मे पहचानना और उत्तरोत्तर उपलब्ध करना जैन सिद्धान्त की बुनियाद है। जैनधर्म का कथन है कि देह और विदेह (आत्मा) एक नहीं है। देह भिन्न है, आत्मा भिन्न है। देह सीढ़ी है, आत्मा मजिल है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान ओर चारित्र मार्ग है, दु ख-परिमोक्ष मार्ग-फल है।

जैनधर्म का जीवन-दर्शन

धर्म और जीवन एक ही सिक्के के दो पहलू है, जिसकी एक ओर धर्मचक्र तथा दूसरी ओर मन-वचन-काम की एकता अकित है। धर्म के निर्दोष/असदिग्ध अनुगमन से जीवन मे सुख, शान्ति और उल्लास का अनुभव होता हे तथा कर्मो की निर्जरा आपोआप हो पड़ती है। ऐसा है जैनधर्म का जीवन-दर्शन।

(जैनधर्म १०० तथ्य)

जैनधर्म का स्वरूप सन् २००१ की १ जनवरी की सुबह क्या होगा ?

क्या आपने कभी सोचा है कि जब समूचे हिन्दुस्तान को इक्कीसवी सदी (शताब्दी) के लिए तैयार किया जा रहा है, तब आप/आपसे सबन्धित प्रवृत्तियो का यया रूप होगा ? क्या शक्ल होगी उनकी ? क्या आप इन शक्लो मे कोई दिलचस्पी लेगे या ये अपना आकार स्वय ग्रहण करती जाएँगी और आप सर झुका कर अत्यन्त कृतज्ञ/विनम्र भाव से इन्हे मजूर कर लेगे ? क्या कभी आपकी कल्पना मे यह तथ्य आया है कि जैनधर्म 'आगामी कल' कैसा होगा यानी सन् २००१ की १ जनवरी की सुबह उसका यया स्वरूप होगा ? माना 'विगत कल' पर 'आज' और 'आज' पर आगामी कल बहुत तेजी से चढा जा रहा है, इस वेग से कि हम इसे अन्दाज भी नहीं सकते, किन्तु कभी न यदलने याली मौलिकताएे (ध्रौव्य) के साथ ही हमे अपनी सामाजिकताओ और आचरणिक यसौटियो (प्रतिमानो) पर भी तो विचार करना चाहिये। मौलिकताएँ कभी नहीं यदलतीं, किन्तु रूपाकार/पर्यायान्तर होता ह। श्रावक/श्रमण के आचारो मे तब्दीली आयेगी। असल मे यह सब अपरिहार्य होगा। हम सयके लिए कि हम नये वैज्ञानिक और नवसामाजिक सदर्भो की अनदेखी न करे। वे सदर्भ इतने अचूक होगे/दुर्निवार होगे कि हम चाहे, न चाह हम उनकी अगवानी मे अपनी भुजाएँ नि सकोच पसार देनी होगी।

(जैनधर्म इक्कीसवीं शताब्दी)

सामायिक से दृढ़ता और एकाग्रता

सामायिक से जो दृढ़ता और एकाग्रता प्राप्त होगी उससे न केवल हममे एक [illegible] अन्तर्जागृति घटित होगी वरन् दिनभर के चर्यागत कार्य भी अधिक सफलता

से सपन्न होगे। सामायिक का मुख्य लक्ष्य है स्वानुभूति की गहराइयो मे उतर कर आत्मानन्द का रसास्वाद। (जीवन-पीयूष)

मेरी भावना : 'मिनी सामायिक' / 'लोक सामायिक'

इसे 'मिनी सामायिक' तो आप कहे ही, 'लोक सामायिक' भी कहे, क्योकि यह समुदाय मे हो कर भी व्यक्ति के भीतर समा कर उसे बदलने की अपूर्व क्षमता रखती है। इसकी चवालीस पक्तियो मे बड़े-बड़े पोथो और शास्त्रो से कहीं अधिक बल-स्फूर्ति है। यह न सिर्फ जैनाचार का सार है, बल्कि ससार के तमाम धर्मो का नवनीत है। आप इसे पक्तिश पढते जाएँ और फिर इसकी खुशबू को अपने फेफड़ो और अपनी चेतना मे उतारते जाएँ और फिर देखे इसका आध्यात्मिक जादू कि किस तरह इसने आपके रोम-रोम को मथ दिया है और आप मे जडमूल से बदलने की सभावना को जन्म दे दिया है। (मेरी भावना)

भक्तामर या आदिनाथ स्तोत्र

यह जैनधर्म/दर्शन की प्रमुख मान्यताओ और सिद्धान्तो का एक लघुरूप है, बिन्दु मे सिन्धु अपनी अतल गहराइयो मे। इसमे आचार्यश्री मानतुग ने जैनदर्शन की मूल शब्दावली का भक्ति के तल पर बड़ा तलस्पर्शी और सार्थक उपयोग किया है। यो कहे, भक्तामर-स्तोत्र का जितना-जितना परिमन्थन हम करते है, उतना-उतना मर्मबोध हमे होता है। भक्तामर मात्र जिन भक्ति का आधार स्तोत्र नही है अपितु यह जैनधर्म/दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तो को भी हमारे सम्मुख पूरे सामर्थ्य के साथ पेश करता है।

(भक्तामर-स्तोत्र)

पर्युषण और पर्येषण

'पर्युषण' का शाब्दिक अर्थ है पूजन, आराधना, सेवा। 'पर्येषण' अर्थात् खोज, अनुसधान, गवेषण। यदि हम इन दोनो शब्दो को गलबाही दे कर रख दे तो हमारा लक्ष्य पूरा हो जाता है, तब हम कहेगे-'पर्युषण मे आत्मा-पर्येषण यानी स्व-पर सेवा मे आत्मा की खोज'। महापर्व के प्राय सभी सदर्भो मे यह सार्थक दिखायी देगा।

(पर्युषण, उप पान जीवन का)

क्षमा का बहुआयामी चरित्र

क्षमा सस्कृत की क्षम् धातु का विकास है, जिसके अर्थ है धैर्य, शान्ति, तितिक्षा और मार्जना। शम, सहन और अक्रोध के माने भी क्षमा है। ये सारे शब्द क्षमा के बहुआयामी चरित्र पर अच्छा प्रकाश डालते है।

(पर्युषण का मर्मस्थल है क्षमा)

एकान्त विग्रह : अनेकान्त विश्वमैत्री

आज के दुराग्रह और हठधर्मिता से तिल-तिल भरे जीवन मे अनेकान्तवाद ही समन्वय का सबसे बड़ा साधन है। एकान्त विग्रह है, फूट है, अनेकान्त मैत्री है, सन्धि है। मैत्री ही नहीं बल्कि कहिये विश्वमैत्री है। केवल इतना ही यदि समझ लिया जाए, तो विश्वशान्ति के लिए मूल आधार घड़ा जा सकता है। जिस तरह सही मार्ग पर चलने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय यातायात-सकेत बने हुए है और सब उनके अनुसरण से ठीक-ठीक चल लेते हैं, स्वस्थ चिन्तन के मार्ग पर चलने के लिए अनेकान्तवाद ने भी इसी तरह के सात सकेतो की रचना की है। इनका अनुगमन करने पर किसी बौद्धिक दुर्घटना की आशका नहीं रह जाती। मोक्षमार्ग पर चलने के लिए अनेकान्तवाद एक विश्वसनीय चिन्तन-प्रणाली हे। सम्यग्ज्ञान की नींव यही स्याद्वाद हे, सम्यग्ज्ञान राजमार्ग है, कैवल्य गन्तव्य हे। (एकान्त अपना-अपना अनेकान्त सबका)

नेता और अनुगामी

हमारा नेतृत्व यदि कोई है तो बच्चो, नीम और पॉच परम्परित अन्धो से वह सब सीख सकता हे, जो उसे आत्मावलोकन की प्रकिया मे उतार सके। नेता और अनुगामी-दोनो के लिए यह विचारणीय है। (हम अन्धे पॉंच अन्धे)

अहिसा अन्तर्मुख

यह अन्तर्मुख हे। यह भीतर का आकार है। क्रिया की अपेक्षा क्रिया के भीतरी आकार मे उसकी स्थिति है। द्रव्य हिसा या दीख पड़ने वाली हिसा, भीतर बैठी हिसा का ही फलन या पतिरूप है। असली दुश्मन भीतर है, बाहर तो उसकी छाया-मात्र है। हमारी असली लड़ाई जो भीतर है, उससे है। इसलिए तीर्थकरो का ध्यान इस स्रोत को सुखाने की ओर गया है। जेनधर्म मन मे स्थापित इसी हिसा को निकाल फेकने पर जोर देता है। अकुर गया, फल गया, ना बॉस, ना बॉसुरिया।

(अहिसा है हमारी मॉं)

नीति, सस्कृति, धर्म, मानवीयता पर आधारित अर्थशास्त्र

असल मे जहा टकसाल का अर्थतन्त्र है, वहॉ हिंसा का नग्न ताण्डव न हो, यह असम्भव है, किन्तु जहा नीति, सस्कृति, धर्म, मानवीयता आदि मूलभूत मानको पर टिका अर्थशास्त्र है, वहा अहिसा न हो यह असम्भव है। हमारा देश विदेशी [illegible] लाभ-[illegible] ने पेरा गया है। लाभ की जड मे हिसा न हो यह मुश्किल है, [illegible] दुराचार और अनैतिक आचरण भी [illegible]। [illegible]। (अहिसा का अर्थशास्त्र)

जैन आहार की गुणवत्ता/महत्ता विचारणीय

जिस जैन आहार का लोग पहले उपहास करते थे, उसे रूढ और दकियानूस बताते थे, वे ही लोग विवशता मे उसकी ओर आने लगे हैं। विश्व के सभी देश पानी छान/उबाल कर पीने लगे है। प्रासुकता (निर्जन्तुकता) जीवन की अपरिहार्यता बन गयी है। स्वच्छता और शुद्धता की ओर लोगो का ध्यान गया है। आहार-विज्ञानी और चिकित्सक लगभग वही राय दे रहे है, जो जैनागम मे पूर्व वर्णित/व्याख्यायित है। इसलिए जैन आहार की उपयोगिता, आधुनिकता, गुणवत्ता, महत्ता और युक्तिप्रकता विचारणीय है। (जैन आहार विज्ञान और कला)

वरक़ के इस्तेमाल का सीधा अर्थ–कत्लखाने का घर–आँगन में प्रवेश

वरक का उपयोग बहुधा किसी-न-किसी रूप मे सभी करते है, किन्तु इसके निर्माण की घिनौनी प्रक्रिया के बारे मे कोई कुछ नही जानता। किसी को नही मालूम कि वरक के इस्तेमाल का सीधा अर्थ है, कत्लखाने का घर-ऑगन मे प्रवेश। क्योकि उसके निर्माण मे जिन साधनो का उपयोग होता है, वे जीव-हत्या से सबन्धित है।

(वरक़ माँसाहार है)

शाकाहार के सात नियन्त्रक तत्त्व

शाकाहार सिर्फ आहार नहीं हैं, वह एक ऐसी सुविकसित जीवन-शैली (वे ऑफ लाइफ) है, जो सदियो के अनुभवो/प्रयोगो के बाद अस्तित्व मे आयी है। इसकी जड़े भारतीय समाज और सस्कृति मे बहुत गहरी और सघन है।

शाकाहार के सात नियन्त्रक तत्त्व हैं अहिसा, करुणा, प्रकृति-प्रेम, मानवीयता, सहअस्तित्व , स्वाधीनता/स्वाभाविकता, स्वास्थ्य और स्वच्छता।

(शाकाहार-विज्ञान)

शाकाहार : एक स्थापित जीवन–शैली

शाकाहार अब एक स्थापित जीवन-शैली है, अत उससे होने वाले फायदो को अलग से सिद्ध करना आवश्यक नही है। सब जानते है कि शाकाहार मानवीय गुणो को विकसित/समृद्ध करने वाला आहार है। उसके उत्पादन मे न तो कोई जीव-हत्या होती है, और न ही कोई क्रूर कर्म। (शाकाहार सर्वोत्तम जीवन-पद्धति)

शाकाहार विश्व में लोकप्रिय

शाकाहार आज अपनी खूबियो के कारण, पूरे विश्व मे लोकप्रिय हुआ है। इसकी सार्थकता और गुणवत्ता को अब अलग से निरूपित करने की आवश्यकता शायद नहीं रही है।

इधर के कुछ वर्षो मे शाकाहार पर जो भी पुस्तके प्रकाश मे आयी है, उनका रुख प्राय मॉसाहार-विरोधी रहा है, किन्तु 'शाकाहार १०० तथ्य' का उद्देश्य पूरी तरह सकारात्मक है, अत इसमे शाकाहार की विशेषताओ को ही रोशनी मे लाने की कोशिश की गयी है।

(शाकाहार- १०० तथ्य)

'जियो और जीने दो' का सांस्कृतिक बोधवाक्य

हमे इस पुस्तिका के माध्यम से अपने जीवन को इस कसौटी पर कसना है कि क्या हम नगण्य सुविधाओ, समृद्धियो और शोभाओ के लिए लाखो-लाख जीवनधारियो की जान ले रहे है - बदहवास उन्हे मौत के घाट उतार रहे है ? छोड़े उन वस्तुओ को जो इन निरीह-निर्दोष प्राणियो के खून-मे-नहायी हुई है और अपनाये एक ऐसा सादा, शान्त, सुखी और स्वस्तिकर जीवन जो 'जियो और जीने दो' के सास्कृतिक बोधवाक्य को सार्थक कर सके।

(बेकसूर प्राणियो के खून-मे-सने हमारे ये बर्बर शौक)

करुणा की मिसरी घोलने का काम

'ना बाबा ना' अद्भुत है इसलिए कि यह हिसा, हत्या, खून-खराबा, मारकाट, क्रूरता और आतक के इन अप्रिय-वीभत्स क्षणो मे हमारे आगे खड़ी पीढी के मन मे करुणा की मिसरी घोलने का काम करती है। यदि हम हर काम मे करुणा की पहल नही करेगे तो तय है कि हमारी बेरहम-निष्ठुर मानसिकता पूरे देश को जड़-मूल से उखाड़ देगी। (ना बाबा ना)

अण्डा . अपाकृतिक आहार

अण्डा अपाकृतिक वस्तु है (आहार के रूप मे)। असल मे वह खाने के लिए है ही नही, अत वह खाने वालो के व्यक्तित्व को बेमेल और अप्राकृतिक बनाता है। पश्चिम मे अब उसे पौष्टिक आहार की श्रेणी मे नहीं रखा जा रहा है। पाश्चात्य आहार-शास्त्रियो की नजर मे अण्डा अब न तो स्वास्थ्यवर्द्धक है और न ही स्वास्थ्यरक्षक।

(अण्डे के बारे मे १०० तथ्य)

पश्चिम से आया ज़हर

अण्डा : अनेक भयंकर और असाध्य रोगों की जड़

अनेक भयकर और असाध्य रोगो से बचने के लिए मॉस-मछली और अण्डे कभी मत खाइये।

(क्या आप अण्डा खा रहे हैं ? नही, बल्कि असलियत यह है कि अण्डा आपको खा रहा है)

मॉसाहार : एक राक्षस

हमे जानना चाहिये कि मॉसाहार एक राक्षस है, जो शुरू मे लुभावना लगता है, किन्तु बाद मे वह अपनी शहद-जैसी मिठास से इसान-की-जिन्दगी को तबाह कर देता है।

दुनिया-भर मे अपहरण, दगे, युद्ध, हत्या, कलह, विकलागता, भुखमरी, नशाखोरी इत्यादि बेतहाशा बढ रहे है। कौन है इन सबके लिए जिम्मेदार ? स्पष्टत मॉसाहार। हम खून बहा रहे है, हत्याएँ कर रहे है, हम क्रूरताएँ कर रहे है, बदले मे क्रूरताए पा रहे है इसमे खास क्या है ? यह तो कुदरत का कानून है, इसकी अवहेलना भला कौन कर सकता है, या कर सका है ?

(मॉंसाहार सौ तथ्य)

मॉस-निर्यात : देश के अर्थतंत्र पर आत्मघाती हमला

पशु-सपदा राष्ट्र की बहुमूल्य सपदा है, अत मॉस-निर्यात देश के अर्थतन्त्र पर एक करारा प्रहार है। मॉस-निर्यात का सीधा अर्थ है देश के अर्थतन्त्र पर आत्मघाती हमला। इसलिए निरीह/निर्दोष पशुओ को बचाइये। मॉस-निर्यात रोकिये।

(मॉंस-निर्यात १०० तथ्य)

'पीड़ा-तरंगें' भूकम्प, बाढ़, तूफान, बंवडर की वजह

यह कथन कितना तर्कसगत है कि जब 'पीड़ा-तरगे' भूकम्प, बाढ़, तूफान बवडर की वजह बन सकती हैं, तब करुणा, दया, हमदर्दी, प्रीत-प्रेम की तरगे इस विश्व को सुख-शान्ति का निरापद आवास क्यो नहीं बना सकतीं ? क्या हम प्रकृति के इतने सरल सहज, बोधगम्य सकेत की अनदेखी करेगे ?

(भूकम्प की वजह क़त्लखाने, युद्ध, क्रूरता, हिसा, हत्या)

कत्लखाने : भारत ही नही वरन् संपूर्ण धरती के माथे पर कलंक

हम तो सिर्फ यह कह सकते हे कि यदि इस सूत्र को ध्यान मे रख कर कि पशुओं का कत्ल भारत के अर्थतत्र का कत्ल हे। हमने एक वध-शाला-विहीन भारत के लिए प्रयत्न नहीं किया तो तय है कि इस देश की उर्वरता को लकवा मार जाएगा। कत्लखाने भारत ही नहीं वरन सपूर्ण धरती के माथे पर कलक हैं। जो उसके स्वस्थ पर्यावरण और आर्थिक तान-बान को छिन्न-भिन्न करने मे लगे है।

(क़त्लखाने १०० तथ्य)

‘कृषिकर्म’ और ‘क़त्ल’ दोनो एक ?

क्या भारत सरकार ने ‘कृषक’ और ‘वधिक’ दोनो को एक दर्जा दे कर भारत की अन्तरात्मा का अपमान नहीं किया हे ? क्या ऐसा करने से देश मे अहिंसा, शान्ति और भाईचारे मे आस्था रखने वाली शक्तियॉ कमजोर नहीं पड़ेगी ? हिंसा को अहिसा की प्रतिष्ठा या दर्जा एक बुनियादी भूल हे, अत हमे भारतीय सस्कृति के अस्मित्व ओर उसकी अस्मिता की रक्षा के लिए हर सभव प्रयत्न करना चाहिये।

(क़त्लखानो का नर्क)

कोई भी जीव–जन्तु व्यर्थ नही

याद रखिये ओर प्रकृति की ऑखो से गुजर कर देखिये कि दुनिया का कोई भी जीव-जन्तु व्यर्थ नहीं है- सबकी अपनी-अपनी उपयोगी भूमिकाएँ हे, अत अहिसा तथा करुणा का सहारा ले कर इस दुनिया को रहने लायक बनाइये।

(हिसा क़त्ल क्रूरता)

विकल्प हैं, काम मे ले, खोजे

ऐसा नहीं है कि जो हिसा-जनित अथवा गैर शाकाहारी वस्तुएँ बाजार मे हें, उनके विकल्प नहीं हें, है, सिर्फ जानकारी की कमी हे जिसके लिए उत्तरदायी हे हमारी सुस्ती/निष्क्रियता/टालते रहने की प्रवृत्ति। यदि हम ठीक से छानबीन करे तो यह सब मुश्किल नहीं है। हम कमश ऐसा कुछ करे, जिससे देश मे हिसा/हत्या/बर्बरता का दबाव कम हो, अहिसा और करुणा की विश्वसनीयता लौटे तथा हम उन बेआवाज प्राणियो को जीने-का-मोका दे, जिन्हे प्रकृति ने जीने का उतना ही अधिकार प्रदान किया है, जितना हमे।

(विवेक क्या ग्राह्य क्या अग्राह्य)

आशा की उजली किरण

आज अच्छे-बुरे कामो के बीच कोई विभाजक रेखा डालना न तो जरूरी माना जाता है और न ही अब कोई कसौटी शेष है जिस पर खरे-खोटे/अच्छे-बुरे की परख सम्भव हो। फिर भी आशा की कोई उजली किरण आज भी हमारे द्वार पर उपस्थित है, जिसकी परवरिश जरूरी है। आज भी किसी मे यह साहस नहीं है कि वह हिसा, हत्या, [illegible] चोरी [illegible]-परस्त्र, मुनाफाखोरी, व्यभिचार इत्यादि को अच्छा कहे।

(१०० आप [illegible])

मै वहीं हूँ, जहॉ मुझे होना चाहिये

[illegible]

नही, आत्म-परीक्षण तथा अनेक बार आते है, असली विकास इन्हीं मे होता है। मै वहीं हूँ जहाँ मुझे होना चाहिये।

(चयनिका पचास मौलिक कृतियाँ)

जैनाध्यात्म : परमात्मा की खोज का विज्ञान

अध्यात्म का, विशेषत जेनाध्यात्म का अन्धविश्वास से कोई सरोकार नहीं है। आत्मविद्या के सम्मुख ऐसी कोई विद्या नही है जो टिके। इसके आगे तमाम विद्याएं फीकी हैं। जो लोग तन्त्र-मन्त्र मे-से गुजर रहे है, या उन लोगो से जिन्हे अध्यात्म-का-अमृत मिलना चाहिये था उन्हे जो अधी गलियो मे ले जा रहे है, उनका जैनाध्यात्म से रेशे-भर भी सबन्ध नही है। जैनाध्यात्म का सबन्ध परम आत्मा से है। यह परमात्मा की खोज का विज्ञान है।

(चयनिका जैन अध्यात्म)

जैनधर्म की मूलतः तीन प्रमुख विशेषताएँ

१ इसका सपूर्ण तत्त्वज्ञान (फिलॉसफी) अनेकान्तमूलक है, यानी उसके मूल मे अनेकान्तदृष्टि विद्यमान है। 'अनेकान्त' की कथा-शैली को 'स्याद्वाद' कहा गया है।

२ जैनाचार अहिसामूलक है। उसका सपूर्ण सदाचार अहिसा की धुरी पर गतिमान है। अहिसा के बिना हम एक पल को भी जैनाचार की कल्पना नही कर सकते।

३ जैनधर्म की तप साधना कर्म निर्मूलक है अर्थात् जैन तप इसलिए करते है कि कर्मास्राव रुके और पहले से बॅधे हुए कर्मो का निर्मूलन हो। तप की स्थिति मात्र इसलिए है कि इसके द्वारा शरीर और आत्मा का पार्थक्य-शोध हो, भेद-विज्ञान तपश्चर्या और ध्यान का ही परिणाम है। इसके द्वारा कर्मो की निर्जरा होती है और आत्मा शुद्धावस्था मे प्रकट हो पड़ती है।

(चयनिका जैन विद्या)

विश्वधर्म की आधार-भूमि

जब हम दुराग्रह से विरक्त हो जाते है और अपनी स्वाभाविक ऊर्जा मे श्वास लेने लगते हैं तो जो धर्म करवट ले कर सामने आता है, वही विश्वधर्म है। विश्वधर्म कोई सम्मिश्रण नही है, वह समझौता भी नहीं है। वह 'कुछ इससे, और कुछ उससे' की परिणति भी नहीं है, वस्तुत वह आत्मा की निर्मल अवस्था का ही उद्रेक है। यदि आप स्वभाव मे आ जाएँ तो ऐसी स्थिति मे आत्मा का जो विकिरण (रेडिएशन) होगा वही विश्वधर्म की आधार-भूमि तैयार करेगा।

विश्वधर्म भारतीय परम्परा मे सदियो से आकार ग्रहण कर रहे विश्व-कल्याण का नव्यतम सस्करण है। तीर्थंकरो ने जिन तथ्यो को प्राणिमात्र की हितकामना से, जो उनके आत्म-कल्याण की ऊर्जा का एक भाग थी, विश्वधर्म उसी का रूपान्तर है।

(चयनिका विशेषाक सपादकीय)

आने वाली शताब्दी की तैयारी

'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य' का हमारा सिद्धान्त इतना सशक्त है कि यदि हम इसे ठीक समझ ले तो हम आज और आने वाले कल के साथ एक स्वस्थ सुलूक कर सकते है। स्थितियाँ पैदा होती है, टिकती है, नष्ट होती हैं, विनाश के इस मलवे पर दूसरी स्थितियाँ आती है, टिकती हे और लुप्त हो जाती हैं, किन्तु ऐसा कुछ है जो न तो पैदा ही होता है ओर न ही नष्ट। वह ध्रुव है। उस ध्रुव की जो कसौटी है 'आज' की और 'आने वाले कल' की उसे ध्यान मे रख कर हमें आने वाली शताब्दी के लिए तैयारी करनी चाहिये। यह ऐसा सवेदनशील क्षण है कि जब यदि हमने इस तरह की कोई तेयारी नहीं की तो हम दुनिया से बुद्धि और आचरण की दौड़ मे बुरी तरह पिछड़ जाएँगे।

(चयनिका तीर्थंकर-सपादकीय)

प्रकृति माँ है, शोषक नही पोषक

शाकाहार का मतलब है एक सादा, सुखद, दूसरो के लिए प्रीतिकर /निरापद जिन्दगी जीना। जीना कुछ इस तरह कि कुदरत-के-चेहरे-पर कोई कालिख न आये, और जो जीव-जन्तु/पेड़-पोधे सदियो से हमारे सहअस्तित्व मे है उन्हे कोई नुकसान न पहुचे। यह मान कर चलना कि आदमी चूँकि ज्ञानी और खोजी है इसलिए उसे इस लोक पर या प्रकृति पर एकाधिकार मिल गया है, भ्रामक है। दुनिया मे जो/जितनी वस्तुऐं हैं, तिनके-से-ले-कर हाथी-तक, उनमे-से हर एक की अपनी कोई-न-कोई सार्थक भूमिका है। ऐसा सभव ही नहीं है कि प्रकृति अपनी छाती पर फिजूल, निकम्मा और निरर्थक अस्तित्वो का अनावश्यक बोझ ढोती रहे। वह कुली नहीं है, माँ है। शोपक नहीं, पोपक है।

(शाकाहार-चयनिका)

निवृत्ति-मूलक स्वाध्याय भी प्रवृत्ति-मूलक

स्वाध्याय मे सौन्दर्य शोध और बोध दोनो के लिए जगह है। भीतर के सौन्दर्य को [illegible] और उस [illegible] हुए खजाने को दूसरो के लिए उन्मुक्तता से खोल देना स्वाध्याय [illegible] है। स्वाध्याय का सबसे पहला और करारा प्रहार दुराग्रह और कृपणता पर [illegible] है। स्वाध्यायी स्वयं तो निर्व्ययी हो सकता है, किन्तु वह विचारो का कुबेर

स्वाध्याय की प्रक्रिया

स्वाध्याय की प्रक्रिया खदान मे-से हीरा ढूंढने या खान की खान से माटी-मिश्रित सोने को अलगाने-जैसी है। जो अच्छा-उजला आता जाए उसे विवेक की थैली मे सहेजते जाइये, क्योंकि कोई नहीं जानता कि स्वाति-नक्षत्र का कौन-सा जल-बिन्दु मुक्ता का रूप ग्रहण कर ले। असल मे, जब मै किसी किताब को पढ़ता हूं, तब मै सिर्फ उसे ही नहीं पढता हूं, बल्कि मेरा ध्यान कातिब पर भी होता है। क्योंकि मै जानता हूं कि यदि लेखक नही होगा तो पुस्तक अस्तित्व मे क्या कर होगी ? जैसे किसी मूर्तिकार द्वारा निर्मित मूर्ति सबन्धित शिलाखण्ड मे न हो कर मूर्तिकार के भीतर आकार ग्रहण करती है, ठीक वैसे ही किसी पुस्तक का ग्रन्थ के भौतिक आकार ग्रहण करने से पूर्व वह लेखक के भीतर जन्म लेती है, इसलिए किसी कृति से परिचित होने से पहले उसके कृतिकार तथा कृतित्व से वाक़िफ होना जरूरी है। (स्वाध्याय मै इस तरह करता हूँ)

डायरी द्वारा मार्गदर्शिका का काम

डायरी मार्गदर्शिका का काम भी करती है। इसे हम व्यक्ति की विकास-यात्रा का ब्यौरा भी कह सकते है। यदि हम चाहे तो इसमे-से हो कर अतीत मे पहुँच सकते है- पछताने के लिए नही, बल्कि आत्म-परिष्कार के लिए।

(डायरी मै ऐसे लिखता हूँ)

पंच व्रतों की फलश्रुति : माध्यस्थ भाव

अहिसा, सत्य, अस्तेय, बह्मचर्य और अपरिग्रह-व्रतो का परिपालन मन को मार्दव ; जाता है और वहाँ एक अपार मैत्री, पमोद, कारुण्य और माध्यस्थ-भावना को

जन्म मिलता है। समस्त प्राणियो के प्रति मैत्री, गुणियो के प्रति आह्लाद, दुखियो के प्रति करुणा और जो वाम दृष्टि है, कुटिल है, षडयत्री है, विरोधी है, उनके प्रति उदासीनता या माध्यस्थ की वृत्ति पॉच व्रतो की फलश्रुति है। व्रती विश्वमित्र होगा, सवेदना और सहानुभूति से भरपूर होगा, उदार हृदय होगा, उसका मन राग-द्वेष से ऊपर उठा होगा।

(जीवन-व्रत सदाचार-सूत्र)

पदो मे जैन अध्यात्म की एक प्रखर झलक

चुने हुए पद जो अध्यात्म और दर्शन की एक प्रखर/परिचयात्मक झलक देते है, किन्तु अन्तिम नहीं है। किसी भी सुधी पाठक के लिए यह जैन पद-साहित्य के रसास्वदन का आरभ मात्र है। इसके आगे जो सिन्धु लहरा रहा है उसका आनन्द तो पाठको को स्वय उस तक पहुँच कर ही लेना होगा।

(सार्थक पद)

भाषा एक सवेदनशील क्षेत्र

शब्द के दो पक्ष होते है एक वह सुनायी, दिखायी देता है, दो, वह सुनायी/दिखायी नहीं देता तथापि अस्तित्व मे होता है अर्थात् अर्थ मे-से वह झनझनाता है, अपनी सुगन्ध बिखेरता है। इस झनझनाहट, सुगन्ध का अनुभव हम करते है, किन्तु दुर्भाग्य से उसे सुन-देख नही सकते। यह शब्द के पार की स्थिति है। वह झनझनाहट विकास करती है, बदलती है, कमोवेश होती है। इसका अस्तित्व अद्भुत/अद्वितीय होता है। कोई भी इसके बारे मे निश्चित कथन नहीं कह सकता। बड़े-से-बड़ा भाषावेत्ता भी यहाँ आ कर गच्चा खा जाता है, इसीलिए भाषा एक ऐसा सवेदनशील क्षेत्र माना जाता है जहाँ भरपूर अप्रमत्तता/चौकसी/सावधानी की आवश्यकता होती है।

(शब्दावलोकन)

सम्यक्त्व अखण्डता/संयुक्तता का परिणाम

स्वभावत समत्व मे-से सम्यक्त्व को खोजा जा सकता है, क्योकि वहाँ अखण्डता है। सम्यक्त्व अखण्डता/संयुक्तता का परिणाम है और समत्व परिपूर्णता का जीवन्त

अपने आईने में अपना चेहरा देखिये

हम अपने ही आईने मे अपना चेहरा देखते हे और जब लगता है चेहरा धुँधला हे तब आईने को साफ करते हे ओर फिर आधारभूत भगिमा को देखते/खोजते हे। अपने आईने मे अपना चेहरा देखना तथापि मनोरजक हे, पर जो लोग पूरी सजगता से इसे सपन्न करते हे, उनके लिए फिर कोई काम मुश्किल या असभव नहीं रह जाता। एक तो आईना हमारा हो, ओर दूसरे हम धीरे-धीरे खुद आईना बन जाएँ- दोनो स्थितियो मे फर्क हे। अपरिचय के लेखो मे आईना देखते-देखते आदमी खुद आईना बनने लगता है।

(अपरिचय)

स्वाध्याय : विचारों को 'टेम्पर' देने की प्रक्रिया

जैसे हम लोहे को खूब गरम करने के बाद उसे ठडा करते है ओर इस प्रक्रिया की पुनरावृत्तियो से उसे अधिक प्रहारक/शाक्ति-सनपन्न बनाते है, ठीक वैसे ही हम स्वाध्याय के माध्यम से अपनी शक्तियो को समृद्ध/सुदृढ करते हे। इस प्रक्रिया को 'टेम्परिग' कहते हे। स्वाध्याय मे विचारो को 'टेम्पर' देने की क्रिया है, जिससे चरित्र मे निर्मलता, साहस, सम्यक्त्व, दृढता इत्यादि उत्पन्न होते है और मनुष्य को एक बेहतर मनुष्य के रूप मे आगे आने का मौका मिलता हे।

(चिन्तन-पाथेय)

वैशाली के राजकुमार

यह न काव्य है, न इतिहास, न कहानी, न उपन्यास, न नाटक, न माच, न समीक्षा, न शोध-प्रबन्ध, तथापि सब एक साथ पकड़े हुए है। प्यास है, गति है, विनोद है, विश्लेषण है, गाम्भीर्य है। सच तो अन्तत यह है कि लेखक ने इसे अपने प्राण-पपीहे की प्यास बुझाने के लिए लिखा है और उसने स्वाति-बिन्दुओ की इस उपलब्धि-यात्रा मे जो भी पाया है, उसे पूरे अकृपण भाव से उलीच दिया है। उसे इसकी चिन्ता कभी नही रही कि कौन खुश हुआ है और कौन नाखुश, वह लिख कर तृप्त हुआ है।

वर्द्धमान महावीर का जीवन स्वयं संदेश

वर्द्धमान महावीर का जीवन स्वय सदेश बना, उन्होने जो कुछ कहा, उसे पहिले जीवन मे फलित देखा और जो कुछ किया उसे तपश्चर्या और स्वाचरण की दिव्य ध्वनि मे कहा। सम्यक् चरित्र ही दिव्य ध्वनि है, इस भाषा को न केवल मनुष्य अपितु पशु-पक्षी भी समझते है, इसीलिए तो उस दिन वह सिह वर्द्धमान महावीर के चरणो मे आ कर शान्त चित्त बैठ गया था।

(वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर)

गहावीर को संपूर्ण जगत् का बनाये

मरा अनुभव है कि महावीरत्व की वर्णमाला को जो प्रॉजल-निर्मल हृदय से ग्रहण करन्त है, उनके सामने न तो कोई उलझन ही बच रहती हे और न कोई द्वन्द्व शेप रह जाता है, धन तो ऐसे साधको के लिए अत्यन्त गोण हो जाता हे। उनकी तमाम मूर्च्छाएँ शान्त हो पड़ती हैं, किन्तु दुर्भाग्य यह हे कि जिस महामनीपी के जीवन मे दोलते और दोलतमद शून्य हुए थे, आज उसी के नाम से दोलते इकट्ठा हा रही है, वड़े-वडे प्रासाद और दुर्ग खड़े हो रहे हे और उनमे उसे केद किया जा रहा है। क्या ऐसा कुछ सभव ह कि हम महावीर को बन्धन-मुक्त रख और उन्हे पूरे जगत् का बनाये ?

(प्रणाम महावीर)

गहावीर को समझने मे बुनियादी भूल

सचाई यह है कि अब तक हम महावीर को जसा समझते ह, वह लगभग न-समझने-जसा ही है। गलती असल मे बुनियादी हुई ह। हमने उन्हे या तो किताबो मे या पर दखा है, या उनम (पुस्तको म-स) हो कर, स्वतन्त्र दर्शन से हम लगभग किनारा करते आये ह। वास्तव म महावीर नखशिख निर्ग्रन्थ है, किसी एक ग्रन्थ म उनके समान का कोई प्रश्न ही नहीं है। वे पूर्णत सार्वभौम है, ब्रह्माण्डीय, न कवल 'ग्लोबल' बल्कि 'कॉस्मिक'।

धत-पतिधत वर्तमान

महावीर विशुद्ध वर्तमान हे। अतीत म वे एक तरह से ह ही नही, भविष्य म उनका कोई सरोकार नहीं, व तो शत-प्रतिशत वर्तमान हे। पूरी तरह आज, और गलती हमारी यह हुई है कि हम उन्हे या तो अतीत का मान रहे ह, या अनागत का। वर्तमान का मान ही नहीं रहे हैं। महावीर आज जितने प्रासंगिक, प्रखर हैं, उतने पहले कभी नहीं थे। मैं चाहता हूँ आप इस तथ्य को महसूस करे, अनुभव करें कि हम [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] रहा है, जो आज सामने है [illegible] सामने भी, [illegible] सामने है [illegible]।

(वर्तमान महावीर-शत-प्रतिशत वर्तमान)

णमोकार मन्त्र और महावीर बिम्ब-प्रतिबिम्ब

उतरती डगर है साधक के जीवन की। पहले प्रयोग, फिर सश्लेपण, फिर पुष्टि, फिर व्यवहार और तदन्ततर सिद्धि। जेनधर्म इसी भेद-विज्ञान की प्रतिभूति हे।

(लोकनायक महावीर)

महावीर को अपनी कथनी–करनी के अद्वैत में प्रकट करें

तीस लाख जैन इस मुल्क के, अपने लहू मे बेठे महावीर को यदि अपनी कथनी-करनी के अद्वैत मे प्रकट कर ले और कह दे सबसे कि चाहे जो होता हो, प्राणो की बाजी भी लगती हो तो भी हम कथनी-करनी मे एक रहेगे, तो फिर देखें किस की ताकत है जो महावीर की इस रजत निर्वाण-शती को अमर होने से रोक पाये। इस सबके लिए सरकारी या असरकारी धन की आवश्यकता नही है, एक निर्धन भी इस रूप मे भगवान् महावीर के निर्वाणोत्सव को सम्पन्न कर सकता हे। (युग-प्रवर्तक महावीर)

महावीर के व्यक्तित्व में प्राणिमात्र का सम्मान परम वंदनीय

हम महावीर के धर्म को मानने वाले हे, उस महावीर के जिसके लिए सत्ताएँ-सपदाएँ शून्य और निरर्थक थी, जो दिगम्बर था, शरीर स्वत जिसके लिए अम्बर था, और जिसके सामने केवल ज्ञान ही सर्वोपरि था, प्राणिमात्र का सम्मान जिसके व्यक्तित्व का परम वदनीय भाग था, जो अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य के सिद्धान्त -माध्यम से काँचन से जूझा, जिसने नारी को गुलामी की जकड़ से मुक्त किया, और प्रतिपल दुनिया को याद दिलाया कि मनुष्य पैसे से, सत्ता से बड़ा है, बहुत बड़ा है, सम्मान्य है, महत्त्वपूर्ण है।

(महामानव महावीर)

अविनीत : विनीत

○ जो बार-बार क्रोध करता है, जो क्रोध को टिकाये रखता है, जो मित्र भाव रखने वाले को ठुकराता है, वह अविनीत है।

○ जो ज्ञान का दभ करता है, जो किसी की चूक पर उसका तिरस्कार करता है, जो मित्रो पर कुपित होता है, वह अविनीत है।

○ जो नम्र व्यवहार करता है, जो चपल नही है, जो मायावी नही है, जो कुतूहली नही है, जो कभी किसी का तिरस्कार की कल्पना भी नही करता, वह विनीत है।

○ जो क्रोध को कभी टिकाये नही रखता, जो मैत्री रखने वाले के प्रति कृतज्ञ होता है, वह विनीत है।

○ जो किसी की चूक पर उसका अपमान नही करता, जो मित्रो पर क्रोध नहीं करता, जो अप्रिय मित्र की भी एकान्त मे प्रशसा करता है, जो कलह और हाथापाई का वर्जन करता है, जो प्रति सलीन और मर्यादावान् है, वह विनीत है।

(भगवान् महावीर ने कहा था)

बाहुबली : सुदृढ़ संहनन / सशक्त आत्मा

बाहुबली में बाहुबल है भरत से अधिक, किन्तु क्या यह सही नहीं है कि जिसमें सम्यक् कायबल है, स्वस्थ देहबल है, उसके लिए दुनिया का कोई भी काम असंभव नहीं है ? उचित आधेय के लिए उचित आधार चाहिये। उफनती ऊर्जा को झेल सकने के लिए सुदृढ सहनन चाहिये। बाहुबली के साथ वह है। उनका शरीर ऊँचा-पूरा है, आत्मा हरी-भरी/भरी-पूरी, दोनो एक-दूसरे से होड़ ठाने है। स्पष्ट है कि विघटित-विचलित देह मे एक सशक्त आत्मा के पड़ाव की आशा हम नहीं रख सकते। वस्तुत जिनकी आत्मा जितनी ओपस्विनी होगी, उसकी काया भी उतना ही अजिता/अपराजिता होगी।

(अ-युद्ध पुरुष)

राखी : ज्ञान को

प्रसंग है रक्षाबन्धन (८ अगस्त १९७९) के त्योहार पर इन्दौर म माधव वसतिका, जहा मुनि श्री विद्यानन्दजी का वर्षायोग-स्थल था, यही कोई चार-साढे चार का समय। सयोग स कोई न था, सिर्फ म और मुनिश्री थ।

बात चल ही रही थी कि मुनिश्री उठे और विनोद म मुस्करा दिय। म स्तब्ध। मैंने देखा उनके हाथो मे कोई राखी है, जिसे वे मेरी कलाई पर बांधने को ह। म पीछे खिसक गया। मेरे लिए यह सब असामान्य था। सोचने लगा, यह सब कैसे हुआ, कैसे होगा ? राखी से एक दिगम्बर मुनि का क्या सरोकार ? किन्तु एक झटके म मुझे निर्भ्रान्त करते हुए वे बोले-'यह राखी आपको नहीं बल्कि समाज के सारे विद्वानो को बांध रहा हू आप तो माध्यम ह। जैनधर्म का भविष्य विद्वानो के हाथ है। अभी जैन भण्डारो म अपार ज्ञान-सम्पदा अरक्षित है। इनका उद्धार होना चाहिये, इस एक हट।'यह काम तो अब विद्वान् ही सम्पन्न करेग।

(जीवन-प्रसंग आचार्यश्री विद्यानन्दजी के)

समझा तो क्या, न समझा तो क्या

विनोबा मुस्कराये और बोले 'साध्वीजी, आपने प्रवचन का सार तो समझ लिया, फिर जो निस्सार हो उसे समझा भी तो क्या और नहीं समझा भी तो क्या ?'

(जीवन-प्रसग साध्वीश्री विचक्षणजी के)

मेमने को मिला अभय

१९४४ ई । मेवाड़ का एक कस्बाई ग्राम बम्बोरा शाम का समय। सूरज अभी अस्त नही हुआ है। 'झुट-पुट' होने को है। आचार्यश्री पास की एक पहाड़ी पर शुद्धि के लिए गये हैं। निवृत्त हो कर लौट रहे हैं। सजग, सावधान, अप्रमत्त। पास की झाड़ियो मे कोई मेमना कराह रहा है। देखा तो पता चला कि वह एक किशोर मेमना है और नाले मे फैली जड़ो मे उलझ गया है। इधर-उधर ऑखे दौड़ायीं। सुनसान। सन्नाटा। कोई नहीं। क्या करे, क्या न करे। यदि साधु-मर्यादा/आगम-मर्यादा टूटती है। किसी को लायें तब तक सूरज डूब जाएगा।

तुरन्त निर्णय लिया कि अहिसा का मार्ग सर्वोत्तम है। करुणा के जलने उनके मन-मानस को अभिषिक्त किया और उन्होने मेमने को सहारा दिया। उस समय मेमने की ऑखो मे कृतज्ञता की जो दीप्ति थी, वह देखने-जैसी थी। लगा जैसे किसी ईसा ने मेमने को सहारा दे कर मानवता का करुणा का सदेश दिया है। लगा जैसे किसी सुकरात ने विषपान किया है।

आचार्यश्री मेमने को अपने साथ ले आये। गॉव वालो को पूरी घटना सुनायी। सब रोमाचित। सब गद्गद। उन्हे अहिसा की नयी इबारत मिल गयी।

(जीवन-प्रसग आचार्यश्री नानालालजी के)

राम-कथा का बोध

राम-कथा के विविध-आयाम है। रामायण का युग-सस्करण तैयार हो सकता है। इसे युग-सदर्भ मे इस प्रकार समझ सकते है ० शबरी ने जूठे बेर राम को नहीं दिये थे। उसने बेर खा-खा कर राम के लिए उत्तम वृक्षो से मीठे बेर चुने थे, जैसे हम टोकरे मे-से एक आम खा कर आम खरीदते है कि हॉ, इस वृक्ष के आम मीठे है। ० हनुमान पवन के पुत्र नही थे, 'पवन पुत्र' नाम का अर्थ है कि पवनजय के पुत्र थे, उनका सूर्य-पुत्र नाम उनके मामा के कारण पड़ा। ० हनुमान बन्दर नही थे, उन्होने नगर मे भिक्षु का रूप धारण कर भ्रमण किया था और बाद मे बन्दर का रूप ग्रहण किया था। वे वेश बदलने मे प्रवीण थे। ० हनुमान पहाड़ उठा कर नही लाये थे, जड़ी-बूटियॉ का ढेर उठा लाये थे। महावरा है कि 'अरे तू तो पहाड़ ही उठा लाया।' मतलब हुआ ढेरो सामान उठा लाया। ० रावण के दस सिर नही थे। उसके कण्ठ मे दस रत्न थे। उसमे उसका सिर चमकता देख उसे किसी ने लाड़ से दशानन कहा। हमारी भाषा मे वैसा दृश्य जैसे 'मुगले आजम'

फिल्म म 'शीशमहल' का था। ० रावण भी महान् था कि उसने नाक काटने के बदले म नाक नहीं काटी।

(बोधकथाएँ आचार्यश्री विद्यानन्दजी की)

'मेरी ममता की एक ही क़िस्म है'

एक बार माँ से मैंने दोनो भाइयो के सामने सवाल किया था 'माँ, बता तू हम मे-से किसे सबसे अधिक प्यार करती है ?' हम तीनो भाई थाली पर बैठे थे, माँ हमे परोस रही थी।

माँ ने सभलते हुए कहा ''देखते हो मेरा हाथ, इसमे पाँच अँगुलियाँ है। पाँचो पाँच किस्म की है, मध्यमा सबमे बड़ी है, कनिष्ठ सबमे छोटी, अँगुष्ठ छोटा, मोटा और भरा है। इन सबमे मेरी आत्मा का प्रवेश एक-जैसा है । आत्मा कहाँ कम, कहाँ ज्यादा है, मै नही जानती, मरे लिए शायद सबमे एक-जेसी है। लो यह सुई और इनमे-से जिसे चाहो चुभाओ, मुझे एक जैसी व्यथा का अनुभव होगा। जैसे अँगुलियो मे बिना किसी भेदभाव के मेरी आत्मा का प्रवेश है, वैसे ही तुम मे भी समझो । मेरे भीतर तुम सब एक समान हो। वहाँ कद, उम्र, रग, रूप का कोई भेद नहीं है। सबका एक कद हे-ममता, सबका एक वर्ण है- वात्सल्य। तुम मे-से किसी एक से एक किस्म का और दूसरे से दूसरे किस्म का प्यार कैसे कर सकती हूँ, मेरी ममता की एक ही क़िस्म है और वह सबके लिए समान है।''

(घटनाएँ भूलूँ कैसे ?)

'फरिश्ते से बढ़ कर है इन्सान बनना, मगर इसमे पड़ती मिहनत जियादा'

यूनान का एक दार्शनिक दिन के बारह बजे लालटेन जला कर एथेस के बाजारो मे कई घण्टे घूमता रहा। इस तरह किसी व्यक्ति का सूरज की तेज रोशनी मे लालटेन जला कर घूमना आम जनता के लिए आश्चर्य का विषय था।

एक बार हजारो लोग इकट्ठा हो गये और सहज ही पूछने लगे 'यह सब क्या हो रहा है ?'

मनुष्य चाहिये, वनमानुष नहीं।'' दार्शनिक का यह कठोर, किन्तु सत्य कथन मनुष्य-मात्र के लिए चिन्ता और चिन्तन का विषय है।

('फरिश्ते से बढ़ कर है इन्सान बनना')

'मौत से मरता नहीं मैं'

सम्राट् सिकन्दर ने एक दिगम्बर मुनि से कहा-'तुम मेरे राज्य मे चलो'। मुनि ने कहा-'नहीं चलूँगा '। सिकन्दर भौचका रह गया। उसकी बात टालने की हिम्मत बड़े-से-बडे राजा-महाराजाओ मे नहीं थी। उसका सकेत ही सबको सिर-से-पैर तक थर्रा देता था, ऐसी स्थिति मे एक अदना साधु कह रहा है कि 'मै नही जाऊँगा'। बड़ा अजीब-सा लगा उसे। वह देखता रहा। बोला- 'साधु, तुम नही जानते कि मै कौन हूँ। सम्राट् सिकन्दर हूँ। तुम्हे नही पता कि मेरी हुक्म-उदूली का क्या नतीजा होता है, जानते हो', साधु ने कहा-'जानता हूँ', 'फिर भी बता दो' सम्राट् ने कहा-'यह है तलवार। परिणाम होगा, तुम मारे जाओगे।' साधु ने कहा-'किसे डराते हो ? मौत का खौफ तो कभी का खत्म हो चुका है। मौत मे मुझे मारने की क्षमता नही है। मौत से मरता नही मै, मौत मुझसे मर चुकी है।'

(चुभते शूल खिलते फूल)

'अण्डे का नहीं, दूध का दिमाग'

यह महात्मा गाँधी के जीवन-काल की बात है। काग्रेस की एक मीटिग मे, सत्याग्रह-आन्दोलन-सबन्धी एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पर विचार होने वाला था, किन्तु जिस रिपोर्ट या पुस्तिका के आधार पर प्रस्ताव लिखा जाने वाला था, वह कागज और फाइलो के ढेर मे कहीं खो गयी थी। गाँधीजी ने राजेन्द्र बाबू से पूछा-'आपने रिपोर्ट पढ ली थी न, कुछ याद है।' राजेन्द्र बाबू ने कहा-'हाँ, मैंने रिपोर्ट पढ ली है, उसे लिखवा सकता हूँ।'

सभी नेतागण आश्चर्य-चकित थे। इधर-उधर रिपोर्ट खोजी जाने लगी। राजेन्द्र बाबू उसे बोल कर लिखवाने लगे। जब लगभग डेढ सौ पन्ने राजेन्द्र बाबू लिखवा चुके थे, तब तक रिपोर्ट की मूल प्रति भी मिल गयी। सभी नेतागण उसे मिलाने लगे। मूल प्रति से वह शब्दश मिल रहा था।

नेहरूजी ने व्यग्य मे राजेन्द्र बाबू से कहा-'राजेन्द्र बाबू, कमाल का दिमाग है आपका। यह आपको कहाँ मिला ?'

राजेन्द्र बाबू ने सभी नेताओ के ठहाको के बीच कहा-'यह अण्डे का नही, दूध का दिमाग है'।

(सवेदना के ये प्रसग)

सात ज्योतियाँ : सात बहने–सबसे बड़ी ज्ञान की जोत

सात एक असाधारण सख्या है। यह इतिहास है, भूगोल है, पुराण है, दर्शन है, नीति है, धर्म है, सगीत है, काल–गणना है।

सात ऋषि है, सात लोक है, सात पाताल है, सात द्वीप है, सात समुद्र है, सात आवरण हैं, सात तत्त्व है, स्याद्वाद के सात अग है, सात ज्योतियॉ है, सात सुख है, सात दिन हैं।

ज्योतियाँ सात है ज्ञानज्योति, आत्मज्योति, धर्मज्योति, कर्मज्योति , कुटुम्बज्योति, राष्ट्रज्योति, विश्वज्योति।

ये सात बहिने है, आत्मालोचन इनका जनक है और समाधि इनकी जननी है।

ज्ञान परम ज्योति है, ज्योतियो की ज्योति, इसके आलोक मे सब कुछ दिखायी देता है, विश्व का कोई कोना प्रच्छन्न नहीं रहता। कोई कर्म, कोई रहस्य इसके प्रकाश मे छुपा नहीं रह पाता।

(वि वि धा)

ऋषभनाथ : करुणा के अवतार

भगवान् ऋषभनाथ करुणा के अवतार थे। उन्होने मनुष्य को पर्यावरण का ककहरा सिखाया और उसे पग–पग पर सावधान और सवेदनशील बनाया। उन्होने अन्न के कण–कण और पानी की बूँद–बूँद का महत्त्व प्रतिपादित किया। पृथ्वी की गरिमा को उन्होने मनुष्य के सामने इस तरह कुछ रख दिया कि मनुष्य बर्बर होने से बच गया। आज फिर वह बर्बर हुआ है और इसीलिए आज फिर किसी आदिनाथ की प्रतीक्षा हमे है।

(मानव-सस्कृति के आदि-पुरस्कर्ता भगवान् ऋषभनाथ)

पार्श्वनाथ का 'पार्श्वनाथत्व'

पार्श्वनाथ का 'पार्श्वनाथत्व' जब तक हम ठीक से नहीं समझेगे, तब तक उनकी स्थूल पूजा–अर्चना का कोई अर्थ नहीं होगा।

चाहे जिस कोण से देखा जाए, भगवान् पार्श्वनाथ के सामाजिक/आध्यात्मिक अस्तित्व की प्रासगिकता बरक़रार है, अक्षत है–उसमे कहीं कोई फर्क नहीं आया है।

इस तथ्य को समझने की आवश्यकता है कि तेईसवे तीर्थकर शलाका पुरुष पार्श्वनाथ क्षमा और निर्वैरवृत्ति के सर्वोत्तम प्रतीक है।

(समग्र सामाजिक क्रान्ति के प्रणेता तीर्थंकर पार्श्वनाथ)

सर्वत्र समदशा : सच्ची उदासीनता : स्थितप्रज्ञता

श्रीमद् राजचन्द्र के अनुसार सर्वत्र समदशा रहे, यही आत्मकल्याण का मुख्य निश्चय है।

पडित-प्रवरश्री टोडरमल ने सच्ची उदासीनता 'स्व' को 'स्व' और 'पर' को 'पर' - ऐसे साक्षीभूत रहने का कहा है।

आचार्य-प्रवरश्री शान्तिसागर ने अपने जीवन मे 'समयसार' के धर्म को उतार लिया था। वे उपवास, एकाग्रता और स्थितप्रज्ञता के मर्म को भलीभॉति जानते थे।

(पारस-पुरुष)

सांस्कृतिक साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक अवदान

जैन समाज मे तीन वर्णी विख्यात है क्षुल्लक-प्रवरश्री गणेशप्रसाद वर्णी, क्षु श्री मनोहर वर्णी और क्षु श्री जिनेन्द्र वर्णी। तीनो के अविस्मरणीय बहुमूल्य अवदान है- सास्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक। तीनो ने समाज को नई दिशा-दृष्टि देने का प्रयत्न किया तीनों प्रणम्य है।

(तीन वर्णी)

सत्य का सम्पूर्ण दर्शन सम्पूर्ण अहिंसा के बिना असंभव

महात्मा गॉधी ने अहिसा और सत्य के बड़े जीवन्त प्रयोग किये है। उन्होने सत्य और अहिसा को दो भिन्न शक्तियो के रूप मे कभी नही देखा। उन्होने इन्हे एकमेव देखा। अपनी आत्मकथा (सत्य के प्रयोग) के अन्त मे लिखा है ' आज तक के प्रयोगो के अन्त मे मै इतना अवश्य कह सकता हूँ कि सत्य का सम्पूर्ण दर्शन अहिसा के बिना असभव है।'

'जगदीश को प्राप्त करने के लिए तीन मात्राओं का योग कर 'ॐ'कार का ध्यान आवश्यक '

महर्षि विनोबा के अनुसार 'अ' का ध्यान करोगे तो पृथ्वी के प्रभु बनोगे, 'उ' का ध्यान करोगे तो अन्तरिक्ष के स्वामी बनोगे, 'म' का ध्यान करोगे तो स्वर्ग के स्वामी बनोगे और तीनो का ध्यान करोगे तो जगत् के विजेता बनोगे, लेकिन जगत् के विजेता होने पर भी जगदीश हाथ मे नहीं आयेगा। जगदीश को प्राप्त करने के लिए तीन मात्राओ का योग कर ॐकार का ध्यान करना होगा। इस योग-सामर्थ्य से आधी मात्रा और बढ जाती है और तब जगदीश का समीकरण हल होता है।'

(महात्मा गाँधी और सत विनोबा)

'मुझमे–तुममें फर्क ही क्या है'

बदरक जग मे ऊँटो की कमी महसूस हुई। हर तीन आदमियो के लिए एक ऊँट की तजबीज थी। पैगम्बर ने अपने को हमजोलियो के साथ ऊँठ पर बेठना मजूर किया। साथियो ने चाहा कि वे अकेले ही ऊँट बैठे और वे दोनो पैदल ही चले, लेकिन पैगम्बर ने उनकी इस तजबीज पर गौर नहीं किया, वे बोले– 'जैसे तुम चल सकते हो, मै भी चल सकता हूँ और मुझमे-तुमगे फर्क ही क्या है।' **(पैगम्बर मुहम्मद)**

कथनी–करनी की एकरूपता को लौटाना होगा

ने हमे स्वय को, भीतर से टटोलना/खोजना होगा, अपने-अपने खेत सँभालने होगे, बीज तैयार करने होगे और अपनी कथनी-करनी की एकरूपता को लौटाना होगा।

जै हॉ तभी तो समाज ही दरारे पटेगी। अविश्वास और अस्नेह, असहिष्णुता और अनुदारता, स्वार्थ और शोषण के ग्रीष्म मे जो दरारे सामाजिक सौहार्द की जमीन पर पड़ गयी है, उन्हे विश्वास, स्नेह, सहिष्णुता, त्याग, नि स्वार्थ और उदारता की वृष्टि से पाटा/भरा जा सकता है।

(मुखातिब खुद-ब-खुद, बातचीत स्वय-की-स्वय से)

'तीर्थंकर' : मेरा जीवन–मिशन

'तीर्थकर' मेरे लिए आजीविका नहीं है, वह मेरा जीवन-मिशन है, अत जब भी मै उसे सपादित करता हूँ उसमे अपनी सॉस-सॉस उँड़ेल देने की भरपूर कोशिश करता हूँ। माने, सौ फीसदी कि मै सदैव चाहता हूँ कि 'तीर्थकर' के प्रिय पाठको को ऐसा कुछ दिया जाए जो उनके जीवन को मॉजता या मोड़ता हो।

'तीर्थंकर' का प्रकाशन हर हालत में चाहे फाकाफाकी भी करना पड़े

आज भी मेरी तैयारी है कि यदि मुझे फाकाफाकी के साथ 'तीर्थकर' को प्रकाशित करना पड़ा तो भी मै अपने कदम पीछे नहीं रखूँगा बल्कि अधिक मजबूती से उन्हे आगे रखूँगा। चलगा रहूँगा तब तक जब तक इसकी पृष्ठ-सख्या घटते-घटते एक या दो न रह जाए। मेरी मान्यता है कि शब्द तो एक ही काफी होता है किसी क्रान्ति को करवट देने मे, उसके शखवाद मे और जरूरी नही है कि वह बहुत खूबसूरत कागज पर बेहतरीन अदा और स्याही मे छप कर ही आये। मै रद्दी-से-रद्दी कागज पर भी एक स्वस्थ/सबल/रचनात्मक विचार को अपने प्रिय पाठको को देने के पक्ष मे रहा हूँ, रहूँगा।

('तीर्थंकर' मेरा जीवन-मिशन)

स्वाध्याय :
में इस तरह करता हूँ

भगवान् ऋषभनाथ

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

वैशाली के राजकुमार

तीर्थंकर

वर्द्धमान महावीर

मुखातिब : खुद-ब-खुद
(बातचीत : स्वयं की स्वयं से)

ज़हर

अमृत

चुनौतियाँ

अ-युद्ध पुरुष

महात्मा गांधी
और
संत विनोबा

पारस-पुरुष

विविधा

घटनाएँ :
भूलूँ कैसे ?

सार्थक पद

साहित्य-चयनिका (डॉ. नेमीचन्द जैन की ७० पुस्तको मे-से चयनित अश) , चयन प्रेमचन्द जैन © हीरा भैया प्रकाशन, प्रकाशन हीरा भैया प्रकाशन, ६५ , पत्रकार कॉलोनी, कनाड़िया मार्ग, इन्दौर-४५२००१, (म.प्र.), मुद्रण नई दुनिया प्रिन्टरी, इन्दौर-४५२००९ , टाइप सैटिग प्रतीति टाइपोग्राफिक्स, इन्दौर-१ फोन . ५५६४४५, प्रथम सस्करण नवम्बर, १९९७ ; मूल्य पाँच रुपये।

डॉ. नेमीचन्द जैन

साहित्य-सचयनिका

सत्तर पुस्तको मे

सात सेट सात खण्ड

संदर्शिका



पुस्तकें मेरी अभिन्न मित्र हैं। स्वाध्याय से जो आँच मिलती है, वह साँच को समृद्ध करती है। लेखन आन्तरिक आवश्यकता है; वृत्ति/स्वभाव है, जो स्वयंस्फूर्त/सहज होता है, जिससे मैं हमेशा ताज़गी अनुभव करता हूँ।

हीराभैया प्रकाशन इन्दौर

६५, पत्रकार कॉलोनी, कनाड़िया मार्ग, इन्दौर - ४५२००१ (मध्यप्रदेश)

साहित्य-संदर्शिका

श्रद्धेय भैया डॉ नेमीचन्दजी जैन की साहित्य–सचयनिका की २,५०० पृष्ठीय ८१ पुस्तकों का समावेश प्रस्तुत 'सदर्शिका' में किया गया है। उल्लेखनीय है कि उनकी सन् १९८८ में लगभग १८ पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं, वे अब सन् १९९८ में ८१ तक पहुँच गयी हैं।

उनकी ११ लोकप्रिय कृतियों/पुस्तकों का सकलन 'अभिनव जैनधर्म सेट' अक्टूबर, १९९३ में प्रकाशित हुआ था, यह बड़ी सख्या में वितरित/प्रसारित हुआ था। इसी तरह शाकाहार-वर्ष (सन् १९९५) में उनकी शाकाहार-विषयक 20 पुस्तकें प्रकाशित/पुनर्मुद्रित हुई थीं, जिनकी सख्या ८ लाख के करीब थी। सन् १९९४-९६ की अवधि में हीरा भैया प्रकाशन द्वारा ६ लाख ८५ हजार रुपयों के मूल्य की शाकाहार-सबन्धी पुस्तकें देशभर में पहुँचायी गयी थीं। वे 'शाकाहार सेट' के रूप में भी लोकप्रिय हुई थीं।

उनकी पुस्तकें विशेष प्रसगों/पर्वों पर सेट के आकार में प्रकाशित हुईं, जैसे पर्युषण पर्व पर स्वाध्याय सेट, दीपावली पर तीर्थंकर महावीर सेट।

'साहित्य-सचयनिका' की प्रत्येक पुस्तक/कृति स्वय में स्वतन्त्र है, अपने आप में पूर्ण है और जीवन-पाथेय का काम कर सकती है, जीवन को सुवासित बनाती है। जीवन-मूल्यों के प्रति अडिग आस्था/श्रद्धा का सचार करती है। जैसे श्रृंखला में कड़ियों हैं, माला में गूँथे हुए पुष्प हैं, श्रृंखला माला की अपनी एकता है, व्यक्तित्व है, उसी प्रकार 'सचयनिका' का अपना व्यक्तित्व है। इसकी एकता में विविधता है, तो विविधता में एकता के दर्शन किये जा सकते हैं। कहीं कुछ पुरावृत्ति हुई भी है, तो सदर्भित विषय और भी स्पष्ट हो गया है।

१६ अक्टूबर, १९९६ को मैंने जो आन्तरिक भावना व्यक्त की थी। उसे यहाँ उद्धृत करना प्रासगिक होगा "३ दिसम्बर, १९९६ को डॉ नेमीचन्दजी जैन अपने यशस्वी जीवन के ८० वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। होना तो यह चाहिये था कि ८० वें वर्ष के शुभारभ में उनकी ८० पुस्तकें प्रकाशित होतीं, लेकिन अब वे ८० वें वर्ष की अवधि में हों, इस दिशा में अग्रसर होना आवश्यक है।" अपनी इस सद्भावना की पूर्ति की दिशा में निर्धारित अवधि में अविराम/सातत्यपूर्वक सयोजन/सपादन में जुटा रहा, उसका यह सुफल है कि हीरा भैया प्रकाशन अपने प्रणेता की ८० वीं वर्षग्रन्थि (३ दिसम्बर, १९९८) के प्रेरक/पावन प्रसग पर ८१ पुस्तकों की यह 'सचयनिका' प्रकाशित कर रहा है, जिसमें उनके द्वारा रचित साहित्य का एक चौथाई भाग ही है। उनकी पूर्व प्रकाशित उन कृतियों/पुस्तकों का समावेश इस 'सचयनिका' में नहीं किया गया है, जो उपलब्ध नहीं हैं, जिनका पुनर्मुद्रण होना है।

'सचयनिका' की ८१ पुस्तकों का प्रारभिक परिचय अगले पृष्ठों में रेखाकित है। इसमें लेखकीय भूमिका, प्राक्कथन, पूर्वकथन, आमुख में-से मुख्याश लिये गये हैं, जिससे पुस्तकों को पढने से पहले मानसिकता तैयार हो सके। लेखन परिचयात्मक है, समीक्षात्मक नहीं।

यही प्रार्थना है कि उनके ८१ वें जन्म-दिवस ३ दिसम्बर, १९९८ पर प्रकाशित ८१ पुस्तकों की यह 'सचयनिका' इस वर्ष में 'शतक' के रूप में सार्थक हो।

र, १९९८ — प्रेमचन्द जैन

जैनधर्म

बहुआयामी

महामन्त्र



णमोकार

महामन्त्र के माहात्म्य, प्रभाव, साधना-विधि, बीजाक्षरित स्वरूप, रग-विज्ञान की दृष्टि से उसका महत्त्व तथा शरीर-विज्ञान से उसके सबन्ध की गहराई की विवेचना की गई है। णमोकार महामन्त्र की अनन्त सभावनाओ पर प्रकाश डालते हुए उसके बहुआयामी व्यक्तित्व को उद्घाटित किया गया है। यह भी प्रतिपादित किया गया है कि यह महामन्त्र एक क्रान्ति-सूत्र है। इसमे जीवन और जगत् के लिए प्रेरक सदेश है।

मार्च १९९६ (द्वितीय सस्करण) मे प्रकाशित १०४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पन्द्रह रुपये है।



ॐ १०० तथ्य

ॐ का व्यक्तित्व शताब्दियो की सास्कृतिक और आध्यात्मिक यात्रा का सर्वोच्च विकास है। उसकी ओपस्विता एक दिन का परिणाम नहीं है। वह कोटि-कोटि ऋषि-महर्षियो के कण्ठों से देश के गगन मे अनुगुँजित दिव्यध्वनि है, जिसने विश्व के नदी-पर्वत, वन-उपवन, ग्राम-नगर सबको कृतकृत्य किया है। उसके बहुआयामी व्यक्तित्व का ही यह अमृतफल है कि भारतीय चरित्र मे धर्म और अध्यात्मका अस्तित्व आज बना हुआ है।' लेखक ने अपने 'प्राक्कथन' मे आगे लिखा है कि प्रस्तुत पुस्तिका मे ॐ से सबन्धित १०० तथ्य सकलित है। वस्तुत इसमे-से एक-एक पर एक-एक ग्रन्थ लिखा जाना चाहिये।

'तीर्थंकर' के ॐ विशेषाक मे-से सकलित अप्रैल १९९६ मे प्रकाशित २० पृष्ठीय पुस्तिका का मूल्य पाँच रुपये है।

जैनधर्म : १०० तथ्य

जैनधर्म के दार्शनिक, वैचारिक एव भेदविज्ञान-मूलक ढाँचे को सरलता तथापि सपूर्णता के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह भी प्रयत्न किया गया है कि जैनधर्म का एक समग्र चित्र सामने आ जाए। इसमे तीर्थंकरो के प्रतीको/पहचान-चिह्नो और णमोकार महामन्त्र को भी सयोजित किया गया है। इसमे जैन धर्म, दर्शन, विज्ञान की लगभग सभी ध्वनियाँ आ गयी है। इतिहास को जान-बूझ कर टाल दिया गया है। कर्मकाण्ड को भी एक अलग आले मे छोड दिया गया है।

लेखक ने विश्वास व्यक्त किया है कि प्रस्तुत पुस्तक जैनधर्म के लिए सही समझ विकसित करेगी और इस क्षेत्र मे मील का पत्थर साबित होगी।

फरवरी, १९९६ मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य सात रुपये है।

जैनधर्म : इक्कीसवीं शताब्दी

सकलित/सपादित लेखो मे-से अखिल जैन समाज को नवागत सामाजिक, साभ्यतिक, धार्मिक, नैतिक और वैज्ञानिक सदर्भो से परिचित कराया गया है, जिससे आगामी शताब्दी मे हम क्या होगे या हमे होना चाहिये - इन दोनो गहन/अटल प्रश्नो का उत्तर खोज़ने के लिए प्रेरित किया गया है।

इन मे लेखक ने कई जटिल समस्याओ की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया है और आशा व्यक्त की है कि इन सारे सदर्भो को टाले नहीं, बल्कि इनका साहसपूर्वक मुकाबला करे। यह विश्वास भी व्यक्त किया है कि इस छोटी-सी किताब को पूरी ईमानदारी और तटस्थता से पढा जाएगा तथा हमारा धार्मिक, सामाजिक नेतृत्व (साधु/श्रावक) खडे सवालो का समाचीन उत्तर ढूँढ़ेगा या जवाब तलाशेगा।

सितम्बर १९९४ (तृतीय सस्करण) मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

जीवन-पीयूष

आचार्यश्री अमितगति के सामाजिक पाठ का भावानुवाद है। सन् १९४८ मे पद्यानुवादित कृति मे आज भी वही सरलता, सुगमता, समरसता और सहजता है। वैसी ही ताज़गी इसके पाठ से अनुभव की जा सकती है। लेखक की जैन दर्शन/धर्म पर आधारित रचनाओ का पुस्तिका के रूप मे यह प्रकाशन है। उनकी प्रारभिक कृतियो मे यह प्रथम कृति है।

लेखक के शब्दो मे सामायिक मूलत समत्व की साधना है। वह सफल जीवन मे जीने का एक महत्त्वपूर्ण आधार-सूत्र है। वह आत्मानुसधान, आत्मशुद्धि और आत्मानुशासन की एक स्वस्थ प्रक्रिया है। सक्षेप मे, सामायिक आज न सिर्फ हमारी

समकालीन विपत्तियो का एक सटीक/अचूक समाधान है, वरन् वह हमारे व्यक्तित्व-निर्माण का एक मूलभूत साधन भी है।

मार्च १९९६ (चौथी बार, परिवर्द्धित) मे प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य दो रुपये है।



स्व जुगलकिशोर मुख्तार-कृत 'मेरी भावना' को डॉ नेमीचन्द जैन ने 'गहरे उतारे इसे चित्त मे' भूमिका मे लघु सामायिक/लोक सामायिक निरूपित करते हुए लिखा है कि यह हमे एक अच्छा नागरिक ही नहीं, सतुलित साधक भी बनाती है, क्योकि यह समुदाय मे हो कर भी व्यक्ति के भीतर समा कर उसे बदलने की अपूर्व क्षमता रखती है। यह न सिर्फ जैनाचार का सार है, बल्कि ससार के तमाम धर्मों का नवनीत है। समता-का-जो सगीत हमे 'मेरी भावना' मे सुनायी देता है, वह अन्यत्र सुनने को नहीं मिलता।

सतोष जड़िया ने जुगलकिशोर मुख्तार की वाणी को रेखाओ मे जीवन्त किया है। इसे उसने आकृति दी है। अन्त मे 'जैन किसे कहा जाए' नामक लेख मननीय है।

जून१९९६ (चौथी बार) प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तिक मूल्य तीन रुपये है।

भक्तामर-स्तोत्र

आचार्यश्री मानतुग के कालजयी स्तोत्र को इस पुस्तक मे प्रतीक चित्र, मूल श्लोक, अन्वय-अर्थ के साथ प्रस्तुत किया गया है। डॉ नेमीचन्द जैन ने विशद/ विशिष्ट प्राक्कथन मे और विशेषत 'तीर्थंकर' के भक्तामर-स्तोत्र विशेषाक के सपादीय मे रेखाकित किया है कि यदि भक्तामर-स्तोत्र के अखण्ड पाठ के क्षणो मे हमारा ध्यान स्तोत्र मे अनुगुँजित अर्थ पर जाता है तो ही हम ऐसे पाठ को अखण्ड कह सकते है, अन्यथा उसे खण्डित ही मानिये। यदि सही/सम्यक् दिशा मे प्रयत्न करे तो हम 'भक्तामर' ही सतहे भेद कर उसकी तहो मे छुपे परमार्थ को जान कर उससे कृतकृत्य हो सकते है। कालजयी स्तोत्र के माध्यम से स्वय भी कालजयी हो सकते है।

मार्च १९९६ (परिवर्तित/परिवर्द्धित चौथा सस्करण) मे प्रकाशित ५४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य दस रुपये है।

पर्युषण : उष:पान जीवन का

सकलित नौ लेखो मे पर्युषण की विशिष्टता, उपयोगिता, अवदान तथा सदेश पर विचार किया गया है। यद्यपि पुस्तक का स्वरूप चिन्तनात्मक है, तथापि वह विषमताओ-से-घिरे जीवन मे निर्भीयतापूर्वक उतर कर जीने की प्रेरणा देने मे पूर्णत समर्थ है।

लेखक ने रेखाकित किया है कि क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, सयम, तप, त्याग, आकिचन्य एव ब्रह्मचर्य उज्ज्वलता की ओर ले जाने वाले तत्त्व है। पर्युषण इन्हीं का विशदीकरण है।

जुलाई १९९६ (द्वितीय परिवर्धित आवृत्ति) मे प्रकाशित ४८ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

पर्युषण का मर्मस्थल है क्षमा

पर्युषण के सिहद्वार पर क्षमा खडी है। यह ऐसा भाग्यशाली पर्व है, जिसके दोनो सिरो पर क्षमा उपस्थित है, इसलिए पर्युषण के मध्यप्रदेश/मर्मस्थल मे कहीं क्रोध या उत्तेजना हो, इसकी आशका नहीं है, वहाँ तो क्षमा ही है।' इस कथन की अभिव्यक्ति प्रस्तुत पुस्तिका मे है। इसमे चरित्र के परिमार्जक/पारदर्शक तत्त्व क्षमा की समग्रतापूर्वक विवेचना की गयी है।

अगस्त १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तिका का मूल्य चार रुपये है।

एकान्त अपना-अपना : अनेकान्त सबका

छह लेख सपादित है, जिनसे स्पष्ट होता है कि स्याद्वाद विज्ञान और अनेकान्त कला है। जैन दर्शन के हार्द है। स्याद्वाद और अनेकान्तवाद -इन दोनो के अभाव मे जैन दर्शन की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

लेखक ने आगे स्पष्ट किया है कि प्राय लोग 'अनेकान्त' और 'स्याद्वाद' को एक ही मान बैठते है। यह भूल है। ये दोनो एकार्थक शब्द नहीं है। जुडे हुए हैं, किन्तु पर्याय नहीं है। अनेकान्त पूर्वार्ध है, स्याद्वाद उत्तरार्द्ध। अनेकान्त वस्तु के व्यक्तित्व को ले कर की जाने वाली 'इक्वायरी' अर्थात् भाषित खोज़बीन है। स्याद्वाद सपूर्ण चिंतन की पद्धति है।

जुलाई १९९६ (द्वितीय परिवर्धित आवृत्ति) मे प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

हम अन्धे : पाँच अन्धे

लेखो मे नेता कैसा हो, क्या करे, उसका दायित्व क्या है, इत्यादि कई गहन प्रश्नो पर विचार किया गया है। हमारा नेतृत्व यदि कोई है तो बच्चो, नीम और पाँच परम्परित अन्धो से वह सब सीख सकता है, जो उसे आत्मावलोकन की प्रक्रिया मे उतार सके। लेखक का यह भी कथन है कि यदि आज हमारा सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक नेतृत्व विकृति-मुक्त होता है तो देश की सोयी हुई किस्मत फिर जाग सकती है और फिर एक बार हमारे कदम खुशहाली की दिशा मे उठ सकते है।

'परस्परोपग्रहो जैनानाम्' मे जैनो को परस्पर उपकार-भावना से जीने की प्रेरणा दी गई है।

जुलाई १९९८ (द्वितीय परिवर्द्धित आवृत्ति) मे प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

अहिंसा है हमारी माँ

सपादित लेखो का एक ही स्वर है कि अहिसा हमारी जननी है, जो हमे वात्सल्य, स्नेह, मातृत्व, करुणा, परस्पर-विश्वास, शान्ति, सुख और समृद्धि प्रदान कर सकती है। जहाँ अहिसा शत-प्रतिशत सृजनधर्मा है, वहाँ हिसा सौ फीसदी विनाशधर्मा। इस तथ्य को लेखक ने अकाट्य दलीलो और उदाहरणो से उजागर किया है। अपने आमुख के अन्त मे लिखा है कि असल मे हमे चुनना है कि हम निर्माण की ओर जाना चाहते है अथवा विनाश की ओर। वस्तुत हमें अपनी पूरी ताकत से अहिसा की शक्ति को समृद्ध और हिसा को हर मोर्चे पर परास्त करना चाहिये।

जुलाई १९९८ (द्वितीय परिवर्द्धित आवृत्ति) मे प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

अहिंसा का अर्थशास्त्र

सात लेखो मे उन तमाम परिस्थितियो को रेखाकित करने का प्रयास किया गया है, जिनसे हमे कदम-दर-कदम पूरे साहस के साथ जूझना है, ताकि मरणासन्न जीवन-मूल्यो को जीवन्त किया जा सके और देश का एक सतुलित सास्कृतिक/आर्थिक मानचित्र उभर कर सामने आये।

यदि हम हिसा-नियन्त्रित/प्रेरित अर्थतन्त्र की दिशा मे बढते है तो देश की सामाजिक सरचना बिखर जाएगी और विलम्ब से ही सही यदि हम अपनी परम्परित अहिसामूलक अर्थव्यवस्था की ओर लौटते है तो देखेगे कि देश आत्मनिर्भर हुआ है, उसका सार्वजनिक चरित्र ऊँचा उठा है और उसकी खुशहाली वापिस हुई है। तय है, भारत के हिसा-की-ओर उठते कदम उसे सुख-सुविधाओ की ओर ले जाने की अपेक्षा दु ख-दुविधाओ की ओर ले जाएँगे।

जुलाई १९९८ मे (पहली बार) प्रकाशित ४० पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

जैन आहार: विज्ञान और कला

जैन आहार की उपयोगिता और युक्तियुक्तता पर विचार किया गया है। जैन 'किचन' के सोलह श्रृगार को अब दो बड़े-बडे पोस्टरो मे सचित्र प्रकाशित किया गया है। यह 'तीर्थंकर' के पूर्व प्रकाशित दुर्लभ 'जैन आहार-विज्ञान-विशेषाक' का लघु सस्करण है। इसमे जैन गृहस्थ को उन खाइयो से बचने, जो उसके आधारतन्त्र को चकनाचूर करने के लिए उनके इर्द-गिर्द लगातार खोदी जा रही है, से आगाह किया गया है।

जुलाई १९९८ (दूसरी बार) प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

वरक़ मांसाहार है

प्रतिपादित किया गया है कि वरक क्रूर, हिसक, बर्बर और घृणित है, अत किसी भी परिस्थिति मे खानपान तथा धार्मिक अनुष्ठान मे इसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिये। प्रस्तुत पुस्तक 'तीर्थंकर' के दुर्लभ 'वरक विशेषाक' का सक्षिप्त रूपान्तरण है। इसमे चित्र रगीन है, अत सहज ही सब कुछ अधिक प्रभावी और आकर्षक बन गया है। लेखक का यह कथन स्पष्ट शब्दो मे 'जानिये कि वरक का मतलब है- रसोईघरो, बैठकखानो और देवस्थलो मे कत्लखानो का प्रवेश' गभीरतापूर्वक विचारणीय है।

नवम्बर, १९९७ (तीसरी बार) प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

शाकाहार

शाकाहार-विज्ञान

लेखक का सकल्प 'शाकाहार-विज्ञान' पर एक पाठ्यपुस्तक तैयार की जाए, जिसमे सभी सबन्धित पहलुओ का समावेश हो, शाकाहार पर सर्वांगपूर्ण सामग्री हो उसकी पूर्ति है यह पुस्तक। इसे इस तरह शिल्पित और सयोजित किया गया है कि शाकाहार से सबन्धित विषयो के बहुमुखीन/बहुआयामी प्रामाणित तथ्य इसमे आ जाएँ। समन्वित/सन्निहित सामग्री ने इसे एक सदर्भ ग्रन्थ का व्यक्तित्व प्रदान कर दिया है। वैज्ञानिक दृष्टि से शाकाहार का विवेचन करने वाली यह हिन्दी मे सर्वप्रथम सदर्भ पुस्तक है।

नवम्बर १९९४ (दूसरी बार) मे ३००० प्रतियो मे प्रकाशित ८४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पन्द्रह रुपये है।

शाकाहार : सर्वोत्तम जीवन-पद्धति

सारी दुनिया इस सचाई को जानने लगी है कि शाकाहार एक अहिसक/सहअस्तित्व-मूलक जीवन-शैली है, जिसे अपनाकर विश्व को बर्बादी से बचाया जा सकता है। अब इतने सारे वैज्ञानिक तथ्य सामने आ गये है कि यह सिद्ध करना जरूरी नहीं रहा है कि शाकाहार अत्यन्त मानवीय, सपूर्णता आर्थिक, निरापद, सात्विक और स्वास्थ्यप्रद आहार है। प्रस्तुत पुस्तक मे ५ निबन्ध है, जो शाकाहार के जीवन-दर्शन को प्रतिपादित करते है। इसमे 'अहिसक जीवन-शैली मे शाकाहार सर्वश्रेष्ठ/सर्वोपरि' के तथ्य का सप्रमाण विवेचन है।

अक्टूबर १९९६ से मई १९९७ (चतुर्थ आवृत्ति) तक १०,००० प्रतियो मे प्रकाशित २० पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य दो रुपये है।

शाकाहार : १०० तथ्य

इसमे शाकाहार के सकारात्मक/विधायक पक्ष को उभारा गया है और प्रतिपादित किया गया है कि अध्यात्म, स्वास्थ्य, चिकित्सा, सस्कृति, नृतत्व-विज्ञान, अर्थशास्त्र, धर्म,योगविद्या, कला, सौदर्य -शास्त्र, प्रकृति, परिस्थिति,पर्यावरण इत्यादि की कसौटियो पर शाकाहार से श्रेष्ठ और कोई आहार नहीं है।

सितम्बर १९९५ से नवम्बर '९७ (तीसरी बार) तक१०,००० प्रतियो मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य तीन रुपये है।

बेकसूर प्राणियों के खून-में-सने हमारे ये बर्बर शौक

इसमे हमारे खान-पान, रहन-सहन, शौक-शैब के लिए वस्तुओ का उत्पादन होता है, उन्हे तैयार करने मे पशु-पक्षियो पर कितने जुल्म ढाये जाते है, इसकी रोमाचक दास्तान है। इस किताब ने भारतीय जीवन-शैली को पश्चिम की रक्त-रजित कृत्रिम जीवन-शैली के पँजो से एक हद तक बचाने की कोशिश की है। जीभ-के-चटकारो/शरीर-के-श्रृंगार के लिए पशु-पक्षियो पर बेहिसाब/बेशुमार जुल्म कीदर्दनाक दास्तान देने वाली यह तीर्थंकर शाकाहार प्रकोष्ठ की सर्वप्रथम पुस्तक है।

दिसम्बर १९८६ से नवम्बर १९९७ (चौबीसवीं बार) तक ७० ,००० प्रतियो मे प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य तीन रुपये है।

ना बाबा ना

देखने मे यह एक छोटी पुस्तक है, किन्तु छोटे-छोटे सबके मन मे पशु-पक्षियो के प्रति सदय व्यवहार के बीज बोती है और उनके मन मे गहरे उतर कर 'जियो और जीने दो' सूत्र का बिगुल बजाती है। इस सचित्र पुस्तक मे पशुओ से सबन्धित कानूनो को भी सरल-रोचक भाषा मे प्रस्तुत किया जाता है। यह आबाल-वृद्ध को करुणा का अमर/प्रेरक सदेश देने वाली पुस्तक है।

नवम्बर १९९२ से फरवरी १९९७ (छठी बार) तक २६, ००० प्रतियो मे प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य तीन रुपये है।

अण्डे के बारे में १०० तथ्य

यह सर्वाधिक लोकप्रिय किताब है, जिसकी बाँगला, तेलुगु, तमिल, गुजराती और मराठी मे अनेक आवृत्तियाँ प्रकाशित हुई है। यह मूलत हिन्दी तदनन्तर अग्रेजी, उर्दू, गुजराती, मराठी, असमी, सिन्धी, मलयालम इत्यादि मे छपी है। इसमे अण्डे के बारे मे १०० ऐसे अकाट्स तथ्य दिये गये है, जिनके बारे मे उत्तर देने के लिए प्रतिबद्ध हो कर भी केन्द्रीय सरकार का कृषि मत्रालय आज तक कोई प्रतिक्रिया नहीं दे सका है, लम्बी चुप्पी साधे बैठा है। इसे पढ़ कर लाखो

लोगो ने अण्डा खाना छोडा है। इसका अंग्रेजी मे 'हण्ड्रेड फैक्ट्स अबाउट एग' शीर्षक से अनुवाद १९९३ मे प्रकाशित हुआ है, जिसका मूल्य तीन रुपये है।

जुलाई १९९१ से मई १९९७ (छब्बीसवीं बार) तक ३,२७,००० प्रतियो मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य तीन रुपये है।

अण्डा : जहर ही जहर

इसमे अण्डे पर लगे कई प्रश्न-चिह्नो का तर्कसगत उत्तर दिया गया है। इस भ्रामक प्रचार का कि 'अण्डा शाकाहार है' प्रस्तुत पुस्तक मे पहली बार ठोस और अकाट्य खण्डन किया गया है। इसमे कई ऐसे लेख सकलित है जो अण्डे की साघातिकता पर सवालिया निशान लगाते है और प्रवर्तित करते है कि अण्डा अप्राकृतिक आहार है और इससे कई असाध्य बीमारियाँ हो सकती है। इसका गुजराती अनुवाद भी हुआ है।

जून १९८८ से नवम्बर १९९७ (बारहवीं बार) तक ३५,००० प्रतियो मे प्रकाशित ४० पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

क्या
आप अण्डा खा रहे हैं ?
नहीं
बल्कि
असलियत यह है
कि
अण्डा
आपको
खा रहा
है

यह लघुपुस्तिका है, जिसमे व्यग्य चित्रो के जरिये अण्डे से होने वाले रोगो की प्रभावशाली विवेचना की गयी है। इसका तेलुगु-अनुवाद भी छपा है।

जनवरी १९८१ से मार्च १९९७ (सोलहवीं बार) तक १,०६,००० प्रतियाँ मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य एक रुपया है।

माँसाहार : सौ तथ्य

इसमे माँसाहार से होने वाली हानियो को अकाट्य प्रमाणो के साथ प्रस्तुत किया गया है उसे पढ कर हजारो-हजार लोगो ने माँसाहार का त्याग किया है। यह एक वितरण-योग्य प्रभावशाली पुस्तक

है। इसमे माँसाहार के निषेधात्मक पक्ष को उजागर किया गया है। अंग्रेजी मे 'मीट ईटिंग १०० फैक्ट्स' के नाम से प्रकाशित इस पुस्तक का मूल्य भी तीन रुपये है। यह मराठी, तेलुगु और असमिया मे भी भाषान्तरित है।

मई १९९७ (तेरहवीं बार) तक ८०,००० प्रतियो मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य तीन रुपये है।

मांस-निर्यात : १०० तथ्य

माँस-निर्यात भारतीय अर्थ-व्यवस्था / तन्त्र को कमजोर करता है, वह हमारी सस्कृति पर क्रूर, बर्बर, निर्मम, बदहवास हमला है- ऐसे तथ्यो की सप्रमाण जानकारी देने वाली प्रस्तुत पुस्तक 'माँस निर्यात बन्द हो' का नारा बुलन्द करती है और प्रेरित करती है कि हम सब एक स्वर मे, एक साथ माँस-निर्यात का जबर्दस्त विरोध करे। स्वतन्त्रता की स्वर्ण जयन्ती-वर्ष मे अहिसा, करुणा, और सहअस्तित्व को पुन प्रतिष्ठित करे। इसमे कत्लखानो के खौफनाक रगीन चित्र भी है।

अप्रैल १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य दस रुपये है

भूकम्प की वजह

क़त्लख़ानें, युद्ध, क्रूरता, हिंसा, हत्या

यह एक ऐसी किताब है, जो भूकम्प-विज्ञान के क्षेत्र मे भूकम्प पैदा करती है और तर्कसगत ढँग से प्रतिपादित करती है कि यदि हमे धरती को सर्वनाश से बचाना है, तो अहिसा, करुणा, सहअस्तित्व का मार्ग अपनाना होगा। वैज्ञानिक तथ्यो से उफनाती यह एक ऐसी कृति है जो भूकम्प की वजह अपने ढँग से किन्तु सपूर्ण प्रखरता से रेखाकित करती है।

जून, १९९७ (प्रथम बार) ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

क़त्लख़ाने : १०० तथ्य

यह एक ऐसी लोकप्रिय किताब है, जिसने अनगिनत लोगो के गले इस सचाई को उतारा है कि कत्लखाने भारतीय सस्कृति के कलक है, जिन्होने सदियो से चली आ रही करुणा-समृद्ध भारतीय

जीवन-शैली को दूषित किया है भारतीय अर्थतन्त्र की रीढ को ध्वस्त किया है और देश की कृषि-व्यवस्था को जो नुकसान पहुँचाता है उसकी पूर्ति कई शताब्दियो तक नहीं हो पायेगी। इस पुस्तक ने भारतीय जनमानस को माँसाहार के बारे मे चिन्तित होने के मनोवैज्ञानिक क्षण दिये हे। इसने कत्लखानो के दिल दहलाने वाले रगीन चित्र दिये गये हैं। इसका गुजराती और तेलुगु मे अनुवाद भी हुआ है।

२१ अप्रैल १९९४ से मई १९९७ (नवीं बार) तक [illegible] ७२ ००० प्रतियो मे प्रकाशित ४४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य आठ रुपये हैं।

कत्लखानों का नर्क

'पशुओ का कत्ल भारत के अर्थतन्त्र का कत्ल' को प्रतिपादित करने वाली पुस्तिका 'कत्लखाने १०० तथ्य' की पूरक है।

मई १९९४ से मार्च १९९६ (छठी बार) तक २५,००० प्रतियो मे प्रकाशित २० पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य दो रुपये हैं।

हिंसा : क़त्ल : क्रूरता

शाकाहार प्रदर्शनी-१ मे किसी भी इन्सान के सिर-से-पैर तक कँपाने की अभूतपूर्व क्षमता है। प्रदर्शनी के पटलो/फलको को पृष्ठाकन कर पुस्तकाकार किया गया है। इसमे चित्रो का हिन्दी और अग्रेजी मे विवरण दिया गया है। प्रदर्शनी मे एक साथ जो देखना रह जाता है, उसकी सहज पूर्ति इस पुस्तक से हो सकती है।

जुलाई १९९४ से जुलाई १९९५ (तीसरी बार) तक ११ ००० प्रतियो मे प्रकाशित ४४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये हे।

विवेक : क्या ग्राह्य : क्या अग्राह्य

प्रस्तुत पुस्तिका क्या न खाये, क्या न पहिने, क्या काम मे न ले, विकल्प हैं, काम मे ले, खोजे, कम-से-कम इतना तो अविलम्ब और अवश्य करे- ध्यान आकर्षित कर सावधान बनाती है। इसमे अग्राह्य वस्तुओ की सूची भी दी गयी है।

नवम्बर १९९७ (प्रथम बार) प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तिक का मूल्य चार रुपये हैं।

१०० अच्छे काम

इसमे १०० अच्छे कामो का उल्लेख करते हुए निवेदन किया गया है कि हम अच्छे कामो की खोज-यात्रा पर निकले और देश के नवनिर्माण मे अपनी ऐतिहासिक भूमिका अदा करे।

अगस्त १९९६ से अगस्त १९९७ (तृतीय आवृत्ति) तक प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य दो रुपये है।

चयनिका

चयनिका
पचास मौलिक कृतियों में-से चयनित अंश

'वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर, बहुआयामी महामन्त्र णमोकार, ॐ १०० तथ्य, जहर अमृत चुनौतियाँ, अपरिचय, जैनधर्म १०० तथ्य, जैनधर्म इक्कीसवीं शताब्दी, जीवन-पीयूष, जिन खोजा तिन पाइयाँ, अ-युद्ध पुरुष, मानव-सस्कृति के आदि-पुरस्कर्ता भगवान् ऋभषनाथ, मेरी भावना, भक्तामर-स्तोत्र, पर्युषण उषा पान जीवन का, एकान्त अपना-अपना अनेकान्त सबका, हम अधे पाँच अधे, अहिसा है हमारी माँ, अहिसा का अर्थशास्त्र, प्रणाम महावीर, जैन आहार विज्ञान और कला, वरक मासाहार है, मुखातिब खुद-ब-खुद, बातचीत स्वय-की-स्वय से, शाकाहार मानव-सभ्यता की सुबह, शाकाहार-विज्ञान, शाकाहार १०० यथ्य, शाकाहार सर्वोत्तम जीवन-पद्धति, बेकसूर प्राणियो के खून-मे-सने हमारे ये बर्बर शौक, ना बाबा ना, माँसाहार सौ तथ्य, अण्डे के बारे मे १०० तथ्य, अण्डा जहर-ही-जहर, अण्डा आपको निगल रहा है, कत्लखाने १०० तथ्य, कत्लखानो का नर्क, हिसा कत्ल क्रूरता, १०० अच्छे काम, शाकाहार-कार्य-योजना (ब्लूप्रिट)-२, शाकाहार की गुणवत्ता, भीली-हिन्दी-कोश, भील भाषा, साहित्य और सस्कृति, भीली का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन, रचना-नवनीत, पैगम्बर मुहम्मद, जैन कोशकार और उनके कोशो का मूल्याकन सदर्भ अभिधान राजेन्द्र, भारतीय सस्कृति को जैन अवदान, परम तपोधन एलाचार्यश्री विद्यानन्द, विचक्षण-कथामृत, आगम पुरुष आचार्यश्री नानालालजी के जीवन का तटस्थ

विहगावलोकन, हाथी ने ली सल्लेखना, प्राची से निकलता है सूरज-बावनगजा-प्रसग' कृतियो मे-से चयनित अशो का समावेश है।

3 दिसम्बर १९९६ को (प्रथम सस्करण) प्रकाशित ४० पृष्ठीय चयनिका का मूल्य सात रुपये है।

चयनिका

(जैन अध्यात्म) समय (जैन अध्यात्म का त्रैमासिक) मे-से उनके लेखो का चयन

स्वाधीनता अपनी-अपनी, भेद-विज्ञान, स-नाम महावीर, अ-नाम महावीर, प्र-णाम महावीर-आलेखो के साथ 'समय' त्रैमासिक के सपादकीय लेखो का प्रस्तुत चयनिका का समावेश किया गया है। उनमे उनका जैनाध्यात्म को मौलिक योगदान है।

१६ दिसम्बर १९९६ को (प्रथम सस्करण) प्रकाथित ४० पृष्ठीय चयनिका का मूल्य सात रुपये है।

चयनिका

(जैन विद्या) पत्राचार पाठ्यक्रम मे-से चयनित अश

जैन विद्या पत्राकार पाठ्यक्रम की ९ इकाइयो के ५६ पाठो मे-से चयनित अश जैन विद्या पत्राचार पाठ्यक्रम अखिल जैन समाज मे बिना किसी पूर्वाग्रह और भेदभाव के विज्ञान को धर्म की दृष्टि से देखने का एक सतुलित और स्वस्थ प्रयास है। पाठ्यक्रम की ९ इकाइयो के ५६ पाठो का आलेख डॉ नेमीचन्द जैन ने अपनी मौलिकता, समग्रता और दूरदर्शिता के साथ इस प्रकार किया है, जहाँ एक ओर यह समाज के विशिष्ट वर्ग (चिकित्सक/इजीनियर/प्राध्यापक/अभिभाषक/पत्रकार/लेखक/प्रशासक इत्यादि) के लिए है, वहीं दूसरी ओर प्रबुद्ध, विद्यार्थी वर्ग भी लाभान्वित हो सकता है। 'चयनिका' मे सपूर्ण पाठ्यक्रम के चयनित अश सक्षिप्तीकरण के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किये गये है जिससे जैनधर्म/दर्शन/सस्कृति/समाज से सबन्धित जिज्ञासा/उत्सुकता की तृप्ति/सतुष्टि होने के साथ-ही-साथ स्वाध्याय की प्रेरणा स्वत स्वयस्फूर्त हो सकती है।

१६ दिसम्बर १९९६ को (प्रथम सस्करण) प्रकाशित ४८ पृष्ठीय चयनिका का मूल्य दस रुपये है।

च
य
नि
का
(विशेषाक-सपादकीय)

'तीर्थकर' के ५० विशेषाको (अक-विशेष सहित) के सपादकीय लेखो मे-से चयनित अश विगत २५ वर्षो मे प्रकाशित जैनधर्म/दर्शन/सस्कृति/समाज/साहित्य की स्वस्थ/समन्वित चिन्तनधारा की सप्रदायातीत उज्ज्वलता को अग्रसर होने के लिए पुनीत-विनीत आलेख है। आत्मोन्नयन के लिए 'नयन' है । वैज्ञानिकता, आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य को रेखाकित करते हुए सपूर्णता/समग्रता को उजागर करने वाले है । विशेषाको की अक्षय/अखूट निधि-सपादकीय लेखो के सान्निध्य मे स्वाध्याय-मूलक बन कर जीवन पाथेय के रूप मे सार्थक हो सकती है।

१६ दिसम्बर १९९७ को (प्रथम सस्करण) प्रकाशित ५६ पृष्ठीय चयनिका का मूल्य दस रुपये है।

चयनिका
(तीर्थंकर-संपादकीय)

'तीर्थकर' (मई १९७१ से जनवरी १९९७) के २७१ सपादकीय लेखो मे-से चयनित अश चयनिका मे ९०० पृष्ठीय २७१ सपादकीय लेखो मे-से केन्द्रीय/मुख्याश का समावेश किया गया है।, 'चयनिका' के प्रारम्भ मे 'तीर्थकर' सकल्प से सिद्धि की ओर' मे 'तीर्थकर' के जन्म, सघर्ष, विकास-कथा के साथ उसकी उपलब्धियो को रेखाकित किया गया है और अत मे सपादकीय लेखो की सपूर्ण अनुक्रमणिका भी सलग्न की गयी है। इन्हे सास्कृतिक आलेख के साथ ही ऐतिहासिक दस्तावेज भी माना जा सकता है, क्योकि विगत २५ वर्षो का इनमे सिहावलोकन है, आधुनिकता-बोध है, विज्ञान और अध्यात्म की समन्वयशील भूमिका का समर्थन है। ये चेतावनी और चुनौती के मध्य सुदृढ स्थिर है वहीं इक्कीसवीं शताब्दी की अगवानी/स्वागत के लिए तत्पर तैयार है।

१६ दिसम्बर १९९६ को (प्रथम सस्करण) प्रकाशित ११२ पृष्ठीय चयनिका का मूल्य पन्द्रह रुपये है।

चयनिका

शाकाहार

(१०१ शाकाहार-संपादकीय)

इसमे 'शाकाहार-क्रान्ति' और 'तीर्थंकर' (मासिक) के १०१ सपादकीय लेखो मे-से चयनित अश है। विषय की गभीरता को ध्यान मे रखते हुए कहीं-कहीं उनका सपूर्ण रूप मे भी समावेश किया गया है। विगत पन्द्रह वर्षों मे शाकाहार की दिशा मे जो प्रगति हुई है, इसके अभियान मे जो उतार-चढाव आये है, जिन चुनौतियो का सामना करना पड रहा है, इनमे उन सभी विषयो का विशद विवेचन है। ये उन सबका लेखा-जोखा है। इनमे जहाँ सिहगर्जना है, तो सिहावलोकन भी है। ये शाकाहार के इतिहास के दस्तावेजी पृष्ठ है।

शाकाहार-सपादकीय लेखो की प्रस्तुत चयनिका मे दिशाबोध देने के साथ ही शाकाहार-साहित्य की आधारभूत सामग्री भी है। इसमे शाकाहार के उन सभी आयामो/पहलुओ का समावेश हो गया है, जो उसकी आधुनिक युग मे अनिवार्यता स्पष्ट करते है। इस दृष्टि से चयनिका पर्याप्त प्रचुर सामग्री से सपन्न/समृद्ध है।

ज्ञातव्य है, डॉ नेमीचन्द जैन की सर्वप्रथम बड़ी पुस्तक 'शाकाहार मानव-सभ्यता की सुबह' का प्रकाशन सन् १९९३ मे हुआ था, जिसमे ३६ लेख थे। प्रस्तुत 'चयनिका' मे ३६ अब १०१ तक पहुँच गये है। यह उसका परिवर्द्धित सस्करण है। शाकाहार-विषयक यह उनकी सबसे बड़ी प्रमुख/प्रतिनिधि पुस्तक तो है ही।

कुल मिलाकर प्रस्तुत 'चयनिका' मे शाकाहार की सास्कृतिकता/ऐतिहासिकता की झलक देखी जा सकती है। इसमे 'अहिंसा का शाकाहार' किस प्रकार सशक्त विकल्प/अभिव्यक्ति है, इसका शखवाद शखघोष है।

१६ मार्च, १९९७ को (प्रथम सस्करण) प्रकाशित १९२ पृष्ठीय चयनिका का मूल्य पच्चीस रुपये है।

स्वाध्याय

जिन खोजा तिन पाइयाँ

प्रस्तुत द्वितीय सस्करण मे स्वाध्याय के गहरे पानी मे पैठने के साहस के साथ क्षमता और दक्षता का उत्साह भी है। विवेक/विनयपूर्वक भेद-विज्ञान के माध्यम से सम्यक्त्व मे अवगाहन करते हुए हमे विचार के मणि-मुक्ता सुलभ है जो जीवन का पाथेय बन सकते है। इसके अध्ययन-मनन से स्वाध्याय के किनारे बैठने की निष्क्रियता दूर हो कर सम्यक्त्व मे पैठने की सक्रियता स्वय-स्फूर्त होती है। इसमे स्वाध्यायपूर्वक सम्यक्त्व हेतु स्व-पर-विज्ञानको अपनानेका

दिशा-निर्देश भी है। इसमे जीवनको समृद्ध बनाने के लिए पर्याप्त सामग्री है।

अक्टूबर, १९९६ (परिवर्द्धित सस्करण) मे प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तक मूल्य पाँच रुपये है।

स्वाध्याय : मैं इस तरह करता हूँ

इसमे स्वाध्याय को प्रखर साधना, तप/विज्ञान, एक मशाल, समुद्र-मथन के रूप मे प्रतिपादित करते हुए उसकी प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है। स्वाध्याय का गणित और स्वाध्याय के सोपान भी पठनीय है।

अगस्त १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तिका का मूल्य चार रुपये है।

डायरी : मै ऐसे लिखता हूँ

'डायरी क्यो, किसलिए ? आइये डायरी लिखे' पर प्रकाश डालते हुए लेखक की अपनी डायरी (८ जनवरी १९८४ से २१ मार्च १९८४) के पृष्ठो को दिया गया है।

अगस्त १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तिका का मूल्य पाँच रुपये है।

जीवन-व्रत : सदाचार-सूत्र

इसमे पच महा/अणु व्रतो-अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की क्रमबद्धता तथा परस्पर-पूरकता को स्पष्ट करते हुए फलश्रुति भी बतायी है।

अगस्त १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित २० पृष्ठीय पुस्तिका का मूल्य चार रुपये है।

सार्थक पद

प्रस्तुत पुस्तक मे जिन आध्यात्मिक पदो को सार्थक (अर्थ-सहित) दिया गया है, वे इतने महत्त्व के और दिशा-दृष्टि देने वाले है कि यदि हम इन्हे अपने सूने क्षणो मे स्वाध्याय के समय मे भी गुनगुनाये या अपने एकान्त का साथी बनाये तो ये हमे बहुत बडी ताकत, अभूतपूर्व बल प्रदान कर सकते है। इसमे जिन पदो को चुना गया है, वे जैन अध्यात्म और दर्शन की एक प्रखर/परिचयात्मक झलक देते है। एक-एक पद एक-एक ग्रन्थ है- ऐसा ग्रन्थ जो निर्ग्रन्थता का मार्ग प्रशस्त करता है।

अगस्त १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य छह रुपये है।

शब्दावलोकन

इसमे दर्शन, विज्ञान, शास्त्र, भाषण, व्याख्यान, प्रवचन, परम, उत्तम, सम्यक्, माध्यस्थ, स्यात्, नय निश्चय, व्यवहार, उपयोग, समिति, धर्म, यम-नियम, देश-प्रदेश, परिणाम, चरित, चरित्र, चारित्र, चारित्र्य, जगत्, भव, विश्व, ससार, सृष्टि, योग, अनुयोग, उपयोग, आवश्यक यानी मोक्षमार्ग और समय-जैसे विशिष्ट शब्दो की मौलिक विवेचना की गयी है।

अगस्त १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य छह रुपये है।

ज़हर अमृत चुनौतियाँ

मन की शान्ति, निराकुलता, अविचलता की ओर उन्मुख करने वाले चालीस लघु निबन्धो का यह सकलन है। इसमे चारित्रिक अन्तर्विरोध से जूझने और एक नैतिक/सामाजिक क्रान्ति का समर्थ आधार बनने की क्षमता है। ये सारे निबन्ध जीवन को उठाने वाले है, उसमे-से अँधेरे को ऋण करते है और उसे रोशनी से जोड़ते है।

सकलित निबन्धो की तह मे एक स्वस्थ रचनात्मक और मानवीय जीवन-दर्शन धडक रहा है, एक ऐसा जीवन-दर्शन जो उष काल की लालिमा और सुबह की ताज़गी समेटे हुए है और कमर कसे हुए है जीवन के हर कोने को जगमगाने के लिए।

अगस्त, १९९३ मे (चौथी बार) प्रकाशित १४८ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य मात्र दस रुपये है।

अपरिचय

मन की आँखें खोलने वाले बारह निबन्ध है। पूर्व प्रकाशित 'जहर अमृत चुनौतियाँ' नामक पुस्तक की यह अगली कडी है। इस प्रकार दोनो मे कुल मिलाकर ५२ लघु/बोधप्रद निबन्धो से जीवन का वैविध्य प्रकट होता है।

लेखक के शब्दो मे इन लेखो के विषय ऐसे है जिनसे हमारी मुलाकात रोज-ब-रोज होती है तथापि ये हमारे लिए अजनबी-से बने रहते है। इन बारह लेखो का अपना अन्दाज और वज़न है, जिसे ठीक से झेलने या हजम करने पर तय है कि जिजीविषा की मुखछवि तेजोमय हो सकती है और अनावश्यक रूप से चिपका अन्धकार टूट-खिर सकता है।

फरवरी १९९६ मे (प्रथम सस्करण) प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

चिन्तन-पाथेय

स्वाध्याय, साहस द्वेष, निन्दा, लोभ, बुनियाद, सतोष, मद, गलतफहमी, अपेक्षाएँ, धीरज का धन, अन्तरात्मा की आवाज़, जलन, जल्दबाजी, अनुपात/सतुलन, ऊँच-नीच, असावधानी, तृष्णा, पेट और जीभ, तनाव, धन, आरम्भ, ज्ञान, अपरिचय, होड, प्रेत/अभिप्रेत-दिशाबोधक वार्ताएँ है । जक-फूड यानी कचरा-खाद्य लेख भी सम्मिलित किया गया है । इसमे 'चिन्तनिका' शीर्षक से चार पृष्ठीय विचार-सूत्र भी दिये गये है । प्रस्तुत पुस्तक 'जहर अमृत चुनौतियाँ' और 'अपरिचय' की पूरक है।

अगस्त १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य छह रुपये है।

तीर्थंकर महावीर

वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर

तीर्थंकर महावीर के भव्य एव विराट् व्यक्तित्व को उद्घाटित करने वाली यह ऐसी मौलिक कृति है, जिसमे उनके जीवन, प्रसग और देशना को इस प्रकार सयोजित किया गया है कि तीर्थंकर-परम्परा, जैनधर्म की प्राचीनता, दार्शनिकता तथा उपादेयता स्वत स्पष्ट होती गयी है। इसमे पाठक की जिज्ञासा, उत्सुकता, सरसता और रोचकता आदि से अन्त तक बनी रहती है।

लेखक की अपनी विशिष्ट मौलिक शैली का चमत्कार है कि इसमे इतिहास, धर्मग्रथ की क्षमता होते हुए भी उपन्यास की रोचकता समायी हुई है। इसमे सर्वत्र भगवान् महावीर के अकृत्रिम व्यक्तित्व की अनुगूँज है। तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के जीवन-सदेश पर लिखी गयी पुस्तको मे इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

अक्टूबर १९९८ (चौथा परिवर्द्धित सस्करण) मे प्रकाशित ११२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पन्द्रह रुपये है।

प्रणाम महावीर

पाँच निबन्धो मे भगवान् महावीर को विभिन्न सदर्भों मे तराशा गया है। इसका एक-एक शब्द महावीर के जीवन की एक नयी व्याख्या प्रकट करने वाला है। लेखक के शब्दो मे यदि जैन दर्शन, धर्म और आचार को समवेत् एक ही थल पर देखना है, तो वह यह किताब हो सकती है। 'स-नाम महावीर, अ-नाम महावीर, प्रणाम महावीर' नामक निबन्ध तो अद्वितीय/अद्भुत है ही।

अक्टूबर,१९९६ मे (दूसरी बार) प्रकाशित ४४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।

वर्द्धमान महावीर

शत-प्रतिशत वर्तमान

प्रस्तुत पुस्तक मे शीर्षक वाले लेख को सर्वप्रथम देते हुए महावीर-जयन्ती की तटस्थ समीक्षा आवश्यक, महावीर-जयन्ती की सास्कृतिक महत्ता, महावीरत्व की जीवन मे चरितार्थता/सार्थकता, भगवान् महावीर आज और ज्यादा प्रासगिक, जीवन-स्पर्शी प्रकाश भगवान् महावीर का भी समावेश किया गया है। दो पृष्ठो मे 'महावीर-वाणी' भी दी गयी है।

अक्टूबर १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य छह रुपये है।

लोकनायक महावीर

प्रस्तुत पुस्तक मे महावीर का जीवन उत्तराधिकारो का महायोग, महावीर के पाँचो नामो मे णमोकार महामन्त्र, महावीर का व्यक्तित्व स्वीकृतियो का उज्ज्वल पुँज, महावीर द्वारा आध्यात्मिक निर्मलता के त्रिभुज का उद्घाटन, महावीर का जीवन-सदेश 'जियो, जीने दो', वर्द्धमान महावीर और हम, महावीर अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य, महावीर की जय अन्तिम आदमी की जय, महावीर का राजमार्ग सपन्नता/समृद्धि के लिए निबन्धो के साथ 'महावीर-वाणी' को भी सम्मिलित किया गया है।

अक्टूबर १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य छह रुपये है।

युग-प्रवर्तक महावीर

प्रस्तुत पुस्तक मे 'वीर-परिनिर्वाण-पर्व के वर्ष का आदर्श के अनुक्रम मे 'निर्वाणोत्सव से आधुनिकता-बोध का मगलाचरण' तक १८ लेखो का समावेश किया गया है, जो २५०० वे वीर परिनिर्वाण-वर्ष के समारभ से समापन तक सदर्भित दृष्टिप्रधान निबध है। 'समणसुत्त' महावीर-वाणी के सर्वोत्तम ग्रन्थ की समीक्षा भी दी गयी है। दो पृष्ठीय 'महावीर-वाणी' भी सम्मिलित है।

अक्टूबर १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य छह रुपये है।

महामानव महावीर

प्रस्तुत पुस्तक मे महावीर द्वारा विराट् रचनात्मक क्रान्ति का सूत्रपात, मै 'महावीर की पावा हूँ' श्रीमहावीरजी की अद्भुत मूर्ति, महामानव महावीर से सबन्धित स्फुट विचार, महावीर के प्रति गीताजलि और महावीर-वाणी का समावेश किया गया है, जो भगवान् महावीर के विभिन्न पक्षो पहलुओ को उजागर करने वाले है।

अक्टूबर १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य छह रुपये है।

भगवान् महावीर ने कहा था

प्रस्तुत पुस्तक मे भगवान् महावीर की देशना, उद्बोधन, दिव्य वाणी को सयोजित किया गया है। विविध शीर्षको मे जैसे अनेकान्त, आत्मार्थी, वीतरागता, शील ही ज्ञान, शील ही तप, चार बाते दुर्लभ, सरलता की सुई, अविनीत विनीत, दो सहयात्री लाभ और लोभ, क्रोध, शरीर भगुर है, मृत्यु एक विकराल रहँट, सदैव सावधान, जिनवाणी का सार-आचार, विश्वास परम सखा, सतुष्टि पर सपदा इत्यादि।

अक्टूबर १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य छह रुपये है।

जीवन-प्रसंग/बोध

अ-युद्ध पुरुष

अजितवीर्य बाहुबली के जीवन-सबन्धी ग्यारह प्रसगो को लेखनी की तूलिका से चित्रित किया गया है। लेखक ने इस कृति मे तीन बातो पर जोर दिया है। एक, बाहुबल अन्तिम नहीं है, अन्तिम है आत्मबल, दो, पैसा अन्तिम नहीं है अन्तिम है श्रम, तीन, मातृत्व चाहे जहाँ का हो, जिसका हो, सदैव निष्काम और मानव-पीढी का रचयिता है।

भेद-विज्ञान के सूर्य-पुरुष को प्रणाम करते हुए लेखक का यह कथन मार्मिक है कि अजितवीर्य बाहुबली की विजय-कथा कषाय पर दिग्विजय की परम गौरवमयी गाथा है। उनकी तपश्चर्या अमोघ-अमर थी, कौन छू सकता है उन ऊँचाइयो को ? इसलिए भेद-विज्ञान का यह अदम्य आलोक-सपन्न परम पुरुष प्रणम्य है, जिसके चरणो पर कषाये स्वय नतशीश हो गयीं, उसके आगे नमन-प्रणमन के लिए भला अब क्या शेष रह गया है। आवरण पर श्रमणबेलगोला की मनोज्ञ/विराट् रगीन मूर्ति का चित्र है।

अक्टूबर १९९६ (द्वितीय आवृत्ति) मे प्रकाशित ३२ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य सात रुपये है।

जीवन-प्रसंग
आचार्यश्री विद्यानन्दजी के

रोचक और प्रेरक होने के साथ-ही-साथ उनके व्यक्तित्व को उद्घाटित करने वाले भी है। मेरा अपना समय, मै विश्व, अब नहीं चढूँगा, लगता है आप जैन है, जमाना मेरे साथ चलेगा ऐसे ही प्रसग हैं। इसमे उनके बीस प्रसगो का समावेश किया गया है। इन्हे लेखक की 'परम तपोधन एलाचार्यश्री विद्यानन्द' पुस्तक से लिया गया है।

अक्टूबर १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य चार रुपये है।

जीवन-प्रसंग
साध्वीश्री विचक्षणजी के

'विचक्षण-कथामृत' मे-से ऐसे ग्यारह प्रसगो को चुना गया है जो साध्वीजी के व्यक्तित्व को सही ढंग से प्रस्तुत कर सके। अन्तिम प्रसग मे केसर-व्याधि के साघातिक मोड पर भी

साध्वीश्री सुदृढ है, इसमे उनके समाधिमरण का मार्मिक चित्रण है।

अक्टूबर, १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य चार रुपये है।

जीवन–प्रसंग
आचार्यश्री नानालालजी के

'आगम पुरुष' नामक पुस्तक के 'प्रसग' खण्ड मे जो नौ घटनाओ का समावेश किया गया है, उन्हे प्रस्तुत पुस्तिक मे लिया गया है, जो प्रतीक चित्रो के साथ है, आचार्यश्री की सूक्तियाँ भी प्रसगो के अन्त मे दी गयी है।

अक्टूबर, १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य चार रुपये है।

बोधकथाएँ
आचार्यश्री विद्यानन्दजी की

बोधकथाएँ प्रवचनो का सार-सर्वस्व है। 'परम तपोधन एलाचार्यश्री विद्यानन्द' शीर्षक से लेखक ने आचार्यश्री की जीवनी लिखी थी। उसमे जो बोधकथाएँ सम्मिलित की गयी थी, उनका समावेश प्रस्तुत पुस्तिका मे किया गया है।

अक्टूबर, १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य चार रुपये है।

घटनाएँ : भूलूँ कैसे ?

प्रस्तुत पुस्तिका मे लेखक ने आपबीती घटनाओ का मार्मिक चित्रण किया है। घटना-क्रम है 'मेरी ममता की एक ही किस्म है', 'सीना मेरी आदत है', 'उसके पास सिर्फ एक ही ओढनी है, 'घोडी प्यासी है', औचित्य का औचित्य, चाबी/चुनौती/समाधान, मैने कथनी-करनी की एकता की चरण वन्दना की है, बदी का बदला नेकी से इत्यादि।

अक्टूबर, १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य चार रुपये है।

फरिश्ते से बढ़ कर है इन्सान बनना

इसमे मर्मस्पर्शी बोधकथाएँ 'फरिश्ते से बढ़ कर है इन्सान बनना', 'खुदा मेरे साथ था', 'आप डाकू है।', चार गधे और किताबे, चाँद, चन्दन, साँप, गाँव बीमार है के साथ 'प्रतिशोध' और 'अभिसार' कहानियो का भी समावेश किया गया है।

अक्टूबर, १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य चार रुपये है।

चुभते शूल खिलते फूल

इसमे २९ पावन/प्रेरक प्रसग बोधकथाओ के रूप मे सम्मिलित किये गये है। लेखक के शब्दो मे 'इन प्रसगो के माध्यम से हम खण्डो मे अखण्ड का अनुभव कर सकते है। ये ऐसे प्रसग हैं, जिनसे प्रेरणा की झिरियाँ / झरने हमारे हृदय मे खुल सकते है।'

अक्टूबर, १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य चार रुपये है।

संवेदना के ये प्रसंग

जो बन रह सकते है, जीवनभर का सग। पशु-पक्षियो के प्रति हमारे हृदय मे जो करुणा/प्रेम की भावना समायी हुई है, उसका स्पर्श इन प्रसगो मे है। शाकाहार से सबन्धित प्रसग भी है। इसमे 'क्रूरता, बर्बरता, करुणा' को उजागर करने वाले लघु लेखो का भी समावेश किया गया है।

अक्टूबर १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य चार रुपये है।

विविधा

इसमे सात ज्योतियाँ ज्ञान, आत्मा, धर्म, कर्म, कुटुम्ब, राष्ट्र, विश्व-नामक ज्योतिपूर्ण लेख के साथ बोधकथा जब चींटियो ने इम्तहान लिया-का समावेश किया गया है। तीन आध्यात्मिक पद अर्थ-सहित है। इस पुस्तिक की विशिष्टता यह भी है कि इसमे लेखक की कविताओ और क्षणिकाओ को भी सम्मिलित किया गया है।

अक्टूबर, १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य चार रुपये है।

विभूति / व्यक्तित्व दर्शन

मानव–सस्कृति के आदि–पुरस्कर्ता

भगवान् ऋषभनाथ

महान्–त्रयी (भगवान् ऋषभनाथ, भरत और बाहुबली) के अतरग मे अवलोकन करवाने वाली प्रस्तुत पुस्तक उनके मानव–सस्कृति/भारतीय सस्कृति/श्रमण सस्कृति के अवदान को रेखाकित करती है। इसमे भगवान् ऋषभनाथ को पर्यावरणिक नैतिकता के जनक, प्रथम शलाका पुरुष, ज्येष्ठ/श्रेष्ठ प्रजापति के रूप मे निरूपित किया गया है।

लेखक ने जागरूक किया है कि आज जब कि पूरे विश्व की कृषि–सस्कृति खतरे मे है प्रजापति आदिनाथ–ऋषभनाथ का जीवन–दर्शन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने के साथ–ही–साथ प्रासगिक है। हमारा दायित्व है कि हम प्रजापति ऋषभनाथ के भारतीय सस्कृति को प्रदत्त योगदान को पूरी शक्ति के साथ उजागर करे और क्रूरताओ तथा विकृतियो के बढते कदमो को रोके।

अक्टूबर, १९९६ मे (प्रथम सस्करण) प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पॉच रुपये है।

समग्र सामाजिक क्रान्ति के प्रणेता

तीर्थंकर पार्श्वनाथ

इसमे तीर्थंकर–परम्परा और पार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ भारतीय इतिहास की विमल विभूति से सबन्धित लेखो के साथ 'पार्श्वपुराण का सूक्ति वैभव' का भी समावेश किया गया है। भगवान् पार्श्वनाथ से सम्बद्ध पुस्तको मे लघुत्तम होने पर भी यह महत्तम और अद्वितीय है।

अक्टूबर, १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य चार रुपये है।

पारस–पुरुष

इसमे श्रीमद् राजचन्द्र, पण्डित–प्रवरश्री टोडरमल और आचार्य–प्रवरश्री शान्तिसागर के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर विहगम दृष्टि डालते हुए उनके योगदान को स्पष्ट किया गया है। तीनो के रेखाचित्र भी दिये गये हैं।

नवम्बर, १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तिका का मूल्य चार रुपये है।

तीन वर्णी

इसमे क्षुल्लक-प्रवरश्री गणेशप्रसाद वर्णी, क्षु श्री मनोहर वर्णी 'सहजानन्द' और क्षु श्री जिनेन्द्र वर्णी के सास्कृतिक एव साहित्यिक अवदान पर प्रकाश डाला गया है। 'वर्णी-त्रय' दिवगत होने पर भी प्रेरणा के अजस्र स्रोत हैं।

नवम्बर, १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तिका का मूल्य चार रुपये है।

महात्मा गांधी और संत विनोबा

प्रस्तुत पुस्तक मे गाधी जन्म-शताब्दी के सदर्भ मे 'आगामी सौ साल' के लेख के साथ 'स्फुट विचार' के अन्तर्गत श्रीमद् राजचन्द्र और गाँधीजी, आत्मकथा, अहिसा, सत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-जैसे व्रतो पर गाँधीजी के मौलिक विचारो पर प्रकाश डाला गया है। गाँधीजी और राष्ट्रभाषा हिन्दी और 'गाँधीजी इन्दौर मे' (पुस्तिका) का उल्लेख किया गया है। अण्डो के प्रचार मे राष्ट्रपिता गाँधीजी का दुरुपयोग पर ध्यान आकर्षित किया गया है।

'शब्द-शिल्पी विनोबा', 'विनोबा एक मृत्युजयी व्यक्तित्व', देह विसर्जित करना विनोबा का (बातचीत) के साथ विनोबा द्वारा प्रस्तुत 'ॐ का रासायनिक समीकरण' का भी समावेश किया गया है।

यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे महात्मा गाँधी और सत विनोबा की जन्म-शताब्दी-वर्ष मे प्रकाशित होना चाहिये था।

नवम्बर, १९९७ (प्रथम सस्करण) मे प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पाँच रुपये है।



इसका प्रमुख उद्देश्य हज़रत मुहम्मद के जीवन के उज्ज्वल/शुभ पक्ष को उजागर करते हुए उन्होने अपने जमाने मे जुल्मो, अन्धविश्वासो और अज्ञानताओ का किस प्रकार मुकाबला किया, इसे स्पष्ट किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तिका का प्रथम सस्करण सन् १९५० मे और द्वितीय सस्करण १९८० मे प्रकाशित हुआ था।

नवम्बर १९९७ (तृतीय सस्करण) मे प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तिक का मूल्य चार रुपये है।

मुख़ातिब : ख़ुद-ब-ख़ुद

(बातचीत . स्वयं की स्वयं से)

इसमे बीस वार्तालाप (इटरव्यू) सकलित किये गये हैं, जिनमे लेखक की विशिष्ट शैली ने अपने जीवन के शील को उद्घाटित किया है। लेखक के शब्दो मे 'मै जानता हूँ खुद से मुखातिब होना कोई आसान काम नहीं है। प्राय हम दूसरो से तो ऑखे मिलाते है, किन्तु खुद से नहीं मिला पाते। मानिये, इत्तफाकन जब भी हम ऐसा करते है, कहीं से कोई किरण हमारे जन्म-जन्मान्तर के ॲधेरो को चीर कर हमे राह दिखाने आती है। यह किताब ऐसी ही किरणो का एक रचनात्मक समुच्चय है।' आधुनिक सदर्भ मे यह सर्वप्रथम प्रयोग है, जिसमे लेखक के साथ-ही-साथ जीवन, धर्म, सस्कृति और समाज को समझने के लिए पर्याप्त सामग्री है।

जुलाई, १९९६ मे (पहली बार) प्रकाशित ६८ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य मात्र दस रुपये है।

तीर्थंकर

मेरा जीवन-मिशन

'तीर्थंकर सकल्प से सिद्धि की ओर', 'तीर्थंकर मै जाता कल, आता कल' ऐसे लेख है, जो लेखक के जीवन-मिशन पर रोशनी डालते है। लेखक के विचारो /भावनाओ को समझने के लिए १६ पृष्ठीय पुस्तिका मुखातिब खुद-ब-खुद' की एक तरह से पूरक मानी जा सकती है।

अप्रैल, १९९७ मे (पहली बार) प्रकाशित १६ पृष्ठीय पुस्तिका का मूल्य दो रुपये है।

साहित्य-चयनिका

इसमे लेखक की सपूर्ण कृतियो मे-से चयनित अश है। पूर्व प्रकाशित चयनिका 'मौलिक पचास कृतियो मे-से चयनित अश की यह पूरक है, लेकिन इसमे सभी चयनित अश नये है।

नवम्बर, १९९७ मे (पहली बार) प्रकाशित २४ पृष्ठीय पुस्तक का मूल्य पॉच रुपये है।

डॉ. नेमीचन्द जैन की साहित्य-संचयनिका की संदर्शिका ; सपादन **प्रेमचन्द जैन** © **हीरा भैया प्रकाशन**; प्रकाशन **हीरा भैया प्रकाशन, ६५ , पत्रकार कॉलोनी, कनाड़िया मार्ग, इन्दौर-४५२००१ (म.प्र.)**; मुद्रण **नई दुनिया प्रिन्टरी, इन्दौर-९** ; टाइप सैटिंग **प्रतीति टाइपोग्राफिक्स, इन्दौर-१ फोन-५५६४४५**, प्रथम सस्करण **नवम्बर, १९९७** ; मूल्य **चार रुपये।**

प्रणाम उन्हें, केवल उन्हें ही



अहंकार जितना गहन होगा
निष्फल होगा
वह उतना ही।
निष्काम नमन की पृष्ठभूमि पर क्षमा, आकिंचन्य, परस्पर
सम्मान होते हैं।
ऐसा नमन पुलकित करता है रोम-रोम, मन प्राण।
नमन सिद्धि को, संभावना को,
अद्वितीय संयोजक है आत्मा की अपराजिता शक्तियों का,
नमन यह
कभी निर्वंश/निर्बीज नहीं होगा।
ऑजुरी का जल ॲगुरियो की संधियो के जैसे चुकता है/चुकता जाता है
ठीक वैसे ही उम्र बूँद-बूँद बिदा होती है शरीर-रन्ध्रो मे-से
इसीलिए
नमन,
शमन है अहं का-निजता का नहीं,
दमन है फन-उठाती विकृतियों का, और
रमण स्वयं का स्वयं में।
नमन अर्थात् प्रणति उन सबको, जो आत्मा की प्रभुसत्ता को उघाडने के लिए
तिल-तिल गले है/गलते हैं/गल रहे हैं।
प्रणाम उन्हें, जो क्षमा की धरती पर अभीत खडे हैं,
वाष्प-से उठते।
प्रणाम उन्हे, केवल उन्हें ही
जो ज्ञान हैं, केवलज्ञान है,
ज्ञान के अलावा जो कुछ और नहीं हैं।
प्रणाम उन्हें
जिन्होंने ज्ञान के अतिरिक्त
बाकी सब गला डाला है/भस्म कर दिया है,
शेष जो बच रहा है वह शुभ्रता है, यथार्थ है।
कभी न लौटने के लिए जो लोकाग्र तक पहुँचे, पहुँचने को हैं,
पहुँचने की तत्परता में है,
प्रणाम उन्हें, नमस्कार उन्हें!

– डॉ नेमीचन्द जैन